पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला
: १४ :

पं० दलसुख मालवणिया
डा० मोहनलाल मेहता

जैन साहित्य
का
बृहद् इतिहास

भाग ५

लाक्षणिक साहित्य

लेखक :
पं० अंबालाल प्रे० शाह

सच्चं लोगम्मि सारभूयं
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
जैनाश्रम
हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी-५

प्रकाशकीय

जैन साहित्य-निर्माण योजना के अन्तर्गत जैन साहित्य के बृहद् इतिहास का यह पाचवां भाग है। जैनो द्वारा प्राचीन काल से लिखा गया लाक्षणिक (Technical) साहित्य इसका विषय है। इसे प्रस्तुत करते हमे बड़ी खुशी और संतोष हो रहा है।

सदैव से जैन विचारक और विद्वान् इस क्षेत्र मे भी भारतीय दाय को समृद्ध करते आए है। वे अपने लेख अपने-अपने समय मे प्रसिद्ध और बोली जानेवाली भाषाओ मे सर्वहितार्थ लिखते रहे हैं। यह सब ज्ञातव्य था। साधारण जैन जिनमे अक्सर साधुवर्ग भी शामिल है, इस ऐतिहासिक परिचय से अपरिचित-सा है। जब हम जानते ही नहीं कि पूर्व या भूत काल मे हमारी जड़ें हैं और वर्तमान मे हम तब से चले आ रहे हैं तो हमारा मन किस सिद्धि पर आश्चर्य अनुभव करे। गर्व का कारण ही कैसे प्रेरित हो।

यह पांचवां भाग उपर्युक्त आन्तरिक आन्दोलन का उत्तर है। हम यह नही कहते कि लाक्षणिक विद्याओ (Technical Sciences) के सम्बन्ध मे यह परिश्रम जैन योगदान की पूरी कथा प्रस्तुत करता है। यह तो पहली ही कोशिश है जो आज तक किसी दिशा से हुई थी। तो भी लेखक ने बड़ी रुचि, मेहनत और अध्ययन से इस ग्रन्थ को रचा है। इसके लिये हम उन्हे बधाई देते है। ग्रन्थ मे जगह-जगह पर लेखक ने निर्देश किया है कि अमुक-ग्रन्थ, मिलता नहीं है या प्रकाशित नहीं हुआ है, इत्यादि। अब अन्य जैन विद्वानो और शोध या खोज-कर्ताओ पर यह उत्तरदायित्व है कि वे अनुपलब्ध या अप्रकाशित सामग्री को प्रकाश मे लाएं। साधारण जैन भी समझे कि उसके धन के उपयोग के लिये एक बेहतर या बेहतरीन क्षेत्र उपस्थित हो गया है।

इसी प्रकार के निर्देश या संकेत इस इतिहास के पूर्व के चार भागो मे भी कई स्थलो पर उनके लेखको ने प्रकट किये हैं। जब समाज अपने उपलब्ध साधनों को इस ओर प्रेरित करेगा तो सम्पूर्णता-प्राप्ति कठिन न

रह जाएगी। हम अपने लिये भी अपने बुजुर्गों का गौरव अनुभव कर सकेंगे। वह दिन खुशी का होगा।

इस ग्रन्थ मे लेखक ने २७ लाक्षणिक विषयो के साहित्य का वृत्तांत प्रस्तुत किया है। पूर्वजो के युग-युगादि मे ये सब विषय प्रचलित थे। उन लोगो के अध्ययन के भी विपय थे। उन समयो मे शिक्षा-दीक्षा के ये भी साधन थे। काल-परिवर्तन मे पुराने माध्यम और ढंग बिलकुल बदल गए है, यद्यपि विपय लुप्त नही हो गए है। वे तो विद्याएँ थी। अब भी नए जमाने मे नए नामो से वे विषय समझे जाते है। पुराने नामो और तौर-तरीके से उनका साधारण परिचय कराना भी असम्भव-सा है। वर्तमान सदा बलवान् है। उसके साथ चलना श्रेष्ठ है। उसके विपरीत चलने का प्रयत्न करना हेय है।

इस वर्तमान युग मे सारे संसार मे इतिहास का मान किसी अन्य विषय से कम नही है। इसकी जरूरत सब विद्वज्जगत् और उसके अधिकारी मानते हैं। पुराने निशानो और शृंखलाओ की तलाश चारो दिशाओ मे हो रही है। सभी को इतिहास जानने की कामना निरन्तर बनी है।

इस इतिहास मे पाठक गणित आदि विषयो के सम्बन्ध मे संक्षिप्त परिचय से ही चकित होगे कि ~~ महानुभावो के ज्ञान और अनुभव मे बड़े गहरे प्रश्न आ चुके थे।

इस ग्रन्थ के विद्वान् लेखक पंडित अंबालाल प्रे० शाह अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर मे कार्य करते हैं। सम्पादन पं० श्री दलसुखभाई मालवणिया और डा० मोहनलाल मेहता ने किया है। पं० श्री मालवणिया कई वर्षो तक बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी मे जैन दर्शन पढ़ाते रहे हैं। हाल मे ही आप कैनेडा मे टोरन्टो यूनिवर्सिटी मे १६ मास तक कार्य करके लौटे है। डा० मेहता पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी के अध्यक्ष और बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी मे जैन-अध्ययन के सम्मान्य प्राध्यापक है। इनकी रचना 'जैन साहित्य का बृहद् इतिहास' के तीसरे भाग के लिये इन्हे उत्तर-प्रदेश सरकार से १५००) रुपये का रवींद्र पुरस्कार मिला है। इससे पहले भी ये राजस्थान सरकार से पुरस्कृत हुए थे। तब 'जैन दर्शन' ग्रन्थ पर १०००) रुपये और स्वर्ण-पदक इन्हे मिला था।

हम उपर्युक्त सब सज्जनो के आभारी हैं। उनकी सहायता हमे सदैव प्राप्त होती रहती है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का खर्च स्व० श्रीमती लाभदेवी हरजसराय जैन की वसीयत के निष्पादक (Executor) श्री अमरचंद्र जैन, राजहंस प्रेस, दिल्ली ने वहन किया है। स्व० महिला का निधन १९६० मे मई १९ को ठीक विवाह-तिथि वाले दिन हो गया था। वे साधारणतया किसी पाठशाला या स्कूल से शिक्षित नही थी। उनके कथनानुसार उनकी माता की भरसक कामना रही कि वे अपनी सन्तान मे किसी को पुस्तकें बगल मे दबाए स्कूल जाते देखे परन्तु ऐसा हुआ नहीं। स्वर्गीया ने हिन्दी अक्षर-ज्ञान बाद मे संचित किया, इच्छा उर्दू और अंग्रेजी पढ़ने की भी रही पर लिखने का अभ्यास उनके लिये अशक्य था। नहीं किया तो वह ज्ञान भी नही हुआ। प्रतिदिन सामायिक के समय वे अपने ढग और रुचि की धर्म-पुस्तके और भजन आदि पढती रहीं। चिन्तन करते-करते उन्हे यह प्रश्न प्रत्यक्ष हुआ कि क्या स्थानकवासी जैन ही मुक्ति पाएंगे ? फिर कभी यह जानने की उत्कण्ठा हुई कि 'हम' में और 'दिगम्बर-विचार' में भेद क्या है ? उन्हे समझाया जाए। स्वयं वे दृढ़ साधुमार्गी स्थानकवासी जैन-श्रद्धा की थीं। धर्मार्थ काम के लिये उन्होंने वसीयत मे प्रबन्ध किया था। उनके परिवार ने उस राशि का विस्तार कर दिया था। प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन का खर्च श्रीमती लाभदेवी धर्मार्थ खाते से हुआ है। इस सहायता के लिये प्रकाशक अनेकशः धन्यवाद प्रकट करते हैं।

रूपमहल
फरीदाबाद
२१ १२ ६९

हरजसराय जैन
मन्त्री,
श्री सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति
अमृतसर

प्राचीन भारत की विमान-विद्या

प्राचीन भारत की आत्म विद्या, इसका दार्शनिक विवेक और विचारों की महिमा तथा गरिमा तो सर्व स्वीकृत ही है। पश्चिम देशों के दार्शनिक विचारकों ने इसकी भूरि भूरि प्रशसा के रूप मे छोटे-बड़े अनेकों ग्रथ लिखे हैं। जहाँ भारत अपनी अध्यात्मशिक्षा मे जगद्गुरु रहा वहाँ अपनी वैज्ञानिक विद्या, वैभव और समृद्धि मे भी अद्वितीय था, यह इतिहाससिद्ध बात है। नालन्दा तथा तक्षशिला विश्वविद्यालय इस बात के ज्वलन्त साक्षी हैं। प्राचीन भारत के व्यापारी जब चहुँ ओर देश-देशान्तरों मे अपने विकसित विज्ञान से उत्पादित अनेक प्रकार की सामग्री लेकर जाते थे तो उन देशों के निवासी भारत को एक अति विकसित तथा समृद्ध देश स्वीकारते थे और इस देश की ओर खिंचे आते थे। कोलम्बस इसी भारत की खोज मे निकला था परन्तु दिशा भूलने के कारण ही उसे अमरीका देश मिला और उसके समीपवर्ती द्वीपों को वह भारत समझा तथा वहाँ के लोगों को 'इण्डियन' और द्वीपो को बाद मे पश्चिम भारत (West Indies) पुकारा जाने लगा। उसे अपनी भूल का पता बाद में लगा। इसी भारत को प्राप्त करने किंवा उसके वैभव को लूटने के निमित्त से ही एलेग्जैण्डर और मुहम्मद गोरी तथा गजनी इस ओर आकृष्ट हुए थे। कहने का भाव यह है कि प्राचीन भारत विज्ञान-विद्या तथा कला कौशल मे भी प्रवीणता और पराकाष्ठा को पहुँचा हुआ था। इसकी वस्त्र-कलाएँ अदृश्य वस्त्र उत्पन्न करती थीं यानी विश्व मे अनुपमेय वस्त्र तैयार करती थीं ये भी ऐतिहासिक बातें है। महाराज भोज के काल मे भी अनेको प्रकार की कलाओं, यन्त्रो तथा वाहनो का वर्णन प्राप्त होता है। सौ योजन प्रतिघटा भागने वाला 'अश्व', स्वय चलने वाला 'पखा' आदि का भी वर्णन मिलता है। उस समय के उपलब्ध ग्रथो मे यह भी लिखा है कि राजे-महाराजो के पास निजी विमान होते थे।

ऋग्वेद (८ ९१ ७ तथा १. ११८. १, ४) मे खेरथ, खेऽनसः अर्थात् आकाशगामी रथ, या श्येन बाज पक्षी आदि की गतिवाले आकाशगामी यान बनाने का विधान कई स्थलों मे मिलता है। वाल्मीकीय रामायण मे लिखा है कि श्रीरामचन्द्र जी रावण पर विजय पाकर, उसके भाई विभीषण तथा अन्य अनेको मित्रो के साथ मे एक ही विशालकाय 'पुष्पक' विमान में बैठकर अयोध्या लौटे थे। रामायण मे उक्त घटना निम्नोक्त शब्दों मे वर्णित है :—

अभिषिच्य च लंकायां राक्षसेन्द्रं विभीषणं ··
········ अयोध्यां प्रस्थितो रामः पुष्पकेण सुहृद्‌वृतः ॥
(बालकांड १. ८६)

इसी प्रकार अयोध्या नगरी के वर्णन के प्रसग में कवि कहता है कि यह नगरी विचित्र आठ भागों में विभक्त है, उत्तम व श्रेष्ठ गुणों से युक्त नर-नारियों से अधिवासित है तथा अनेक प्रकार के रत्नों से सुसज्जित और विमान गृहों से सुशोभित है (चित्रामष्टापदाकारां वरनारीगणायुताम्। सर्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम्—बाल० ५. १६)। श्लोक मे निर्दिष्ट 'विमानगृह' शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं। एक वास्तुविद्या (Architecture) के अर्थ में वह गृह जो उड़ते हुए विमानों के समान अत्यन्त ऊँचे तथा अनेक भूमियों (मजिलों) वाले गगनचुम्बी भवन जिनके ऊपर बैठे हुए लोगों को पृथिवीस्थ वस्तुएँ बहुत ही छोटी छोटी दीखें जैसे विमान में बैठने वालों को प्रायः दीखती हैं। अर्थात् उस समय लोगों ने विमान में बैठकर ऊपर से ऐसे ही दृश्य देखे होंगे। दूसरा अर्थ 'विमान-गृह' से यह हो सकता है कि जिन्हें आज हम Hangers कहते हैं अर्थात् जहाँ विमान रखे जाते हैं। उस समय मे विमान थे तथा रखे जाते थे और उनको बनाया जाता था यह इसी सर्ग के १९ वें श्लोक से प्रमाणित होता है —

'विमानमिव सिद्धाना तपसाधिगतं दिवि'।

अयोध्या नगरी की नगर-रचना (Town Planning) के विषय में वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वह नगरी ऐसी बसी या विकसित नहीं थी कि कहीं भूमि रिक्त पड़ी हो, न कहीं अति घनी बसी थी, वरञ्च वह इतनी सन्तुलित व सुसज्जित रूप में बनी हुई थी जैसे—'तपसा सिद्धानां दिवि अधिगतं विमानम् इव।' अर्थात् विमान-निर्माण विद्या में तपे हुए सिद्धशिल्पियों द्वारा आकाश में उड़ता विमान हो। पतग उड़ाने वाला एक बालक भी यह जानता है कि यदि पतग का एक पक्ष (पासा) दूसरे पक्ष की अपेक्षा भारी हुआ या सतुलित दोनों पक्ष न हुए तो उसकी पतग ऊँची न उड़कर एक ओर को झुककर नीचे गिर पड़ेगी। इसी भाव को अभिव्यक्त करने के लिए विमान के दोनों पक्ष सिद्ध हों ऐसा दृष्टात देकर नगरी के दोनों पक्षों को समविकसित दर्शाने के लिए विमान की उपमा दी गई है। प्राचीन भारत में वास्तुविद्या में प्रवीण शिल्पी (Expert Architects) नगरों को जलाशयों, नदियों या समुद्रतटों के साथ-साथ निर्माण करते थे। पाटलीपुत्र (पटना) नदी के किनारे १८

योजन लम्बा नगर बना हुआ था। अयोध्या भी सरयू-तट पर १२ योजन लंबी बनी लिखी है। नगर के मध्यभाग में राजगृह, सभागृहादि होते और दोनों पक्षों मे अन्य भवन, गृहादि बनाये जाते थे। नगर का आकार, पखों को फैलाकर उड़ते श्येन (बाज पक्षी) या गीध पक्षी के समान होता था।

महाराजा भोज के काल मे भी वायुयान या विमान उड़ते थे। उनके काल मे रचित एक ग्रथ 'समराङ्गणसूत्रधार' मे पारे से उड़ाये जानेवाले विमान का उल्लेख आता है :—

लघुदारुमयं महाविहङ्गं दृढसुश्लिष्टतनुं विधाय तस्य।
उदरे रसयन्त्रमादधीत ज्वलनाधारमधोऽस्य चाति (ग्नि) पूर्णम् ॥
(समरा० यन्त्रविधान ३१. ९५)

अर्थात् उसका शरीर अच्छी तरह जुड़ा हुआ और अतिदृढ होना चाहिए, उस विमान के उदर (Belly) में पारायन्त्र स्थित हो और उसे गर्म करने का आधार और अग्निपूर्ण (बारूद, Combustible Powder) का प्रबन्ध उसमें हो।

'युक्तिकल्पतरु' मे भी इसी प्रकार वर्णन है :—

'व्योमयान विमान वा पूर्वमासीन्महीभुजाम्' (युक्तियान० ५०)

इससे स्पष्ट होता है कि उस समय के राजाओं के पास व्योमयान तथा विमान होते थे। हमारी समझ मे व्योमयान तथा विमान शब्दों से विमानों मे भिन्नता प्रदर्शित की गई है। व्योमयान से विमान कहीं अधिक गति तथा वेगवान् थे।

जिस प्रकार काल की विकराल गाल मे देशों के विकसित नगर तथा अपरिमित विभूतियाँ भूमि मे दब कर नष्ट हो जाती है उसी प्रकार भारत की समृद्धि तथा उसका संवृद्ध साहित्य भी विदेशी आततायियों के विप्लवी आक्रमणों और उनकी बरबरता के कारण, उसके असख्यो ग्रन्थो का लोप और विध्वस हो गया। जिस प्रकार आजकल भारतीय राजकीय पुरातत्त्व विभाग भारत की दबी हुई भूमिगत सभ्यता को खोद-खोद कर प्रदर्शित कर रहा है, खेद है उतना ध्यान भारत के दबे हुए साहित्य को खोजने में नहीं देता। हमारी धारणा है अभी भी बहुत साहित्य लुप्त पड़ा है। कुछ काल पूर्व ही श्री वामनराय डा० कोकटनूर ने अमेरिकन केमिकल सोसाइटी के अधिवेशन मे पढे एक निबन्ध मे हस्तलिखित "अगस्त्य-संहिता" का नाम दिया और उसमे विमान के उड़ाने का वर्णन

किया तथा यह भी कहा कि 'पुष्पक विमान' के आविष्कारक महर्षि अगस्त्य थे। इस विषय में कुछ लेख पुनः विश्ववाणी में भी प्रकाशित हुए थे।

प्राचीन भारत के लुप्त तथा अज्ञात साहित्य की खोज के लिए ब्रह्ममुनि जी ने निश्चय किया कि अगस्त्य-संहिता ढूँढी जाय। इसी खोज में वे बड़ौदा के राजकीय पुस्तकालय में पहुँचे। वहाँ उन्हें अगस्त्य-संहिता तो नहीं मिली पर महर्षि भरद्वाज के 'यन्त्रसर्वस्व' नामक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का बोधानन्द यति की वृत्ति-सहित "वैमानिक प्रकरण" अपूर्ण भाग प्राप्त हुआ। उस भाग की उन्होंने प्रतिलिपि की। उक्त पुस्तकालय में बोधानन्द वृत्तिकार के अपने हाथ की लिखी नहीं वरन् पश्चात् की प्रतिलिपि है। बोधानन्द ने यहाँ विद्वत्तापूर्ण श्लोकबद्ध वृत्ति लिखी है परन्तु प्रतिलिपिकार ने लिखने में कुछ अशुद्धियाँ तथा त्रुटियाँ की हैं। ब्रह्ममुनि जी ने उसका हिन्दी में अनुवाद कर सन् १९४३ में छपवाया और लेखक को भी एक प्रति उपहारस्वरूप भेजी। चूँकि यह 'विमान शास्त्र' एक अति वैज्ञानिक पुस्तिका थी अतः हमने इसे हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस में अपने एक परिचित प्राध्यापक के पास, इस ग्रन्थ में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों, कलाओं को अपने वैज्ञानिक मित्रों की सहायता लेकर कुछ नई खोज करने को भेजा। परन्तु हमारी एक वर्ष की लम्बी प्रतीक्षा के उपरान्त यह ग्रन्थ हमारे पास यह उपाधि देकर लौटा दिया गया कि इस पर परिश्रम करना व्यर्थ है। हमने इसे पुनः अलीगढ़ विश्वविद्यालय में भी उक्त बात के लिये विज्ञानकोविदों के पास रखा। पर उन्होंने भी कोई रुचि न दिखाई। इस प्रकार यह लुप्त साहित्य हमारे पास लगभग ९ वर्ष पड़ा रहा।

१९५२ की ग्रीष्मऋतु में एक अंग्रेज विमानशास्त्री (Aeronautic Engineer) हमारे सम्पर्क में आये। उनका नाम है श्री हॉले (Wholey)। जब हमने उनके सन्मुख इस पुस्तिका का वर्णन किया तो उन्होंने बड़ी रुचि प्रकट की। साथ जब वह इस ग्रंथ के विषय में जानकारी करने आये तो अपने साथ एक अन्य मित्र श्री वर्गीज को ले आये जो संस्कृत जानने का भी दावा रखते थे। चूँकि यह प्रतिलिपि किसी अर्वाचीन हस्तलिखित प्रतिलिपि की भी प्रतिलिपि थी अतः श्री वर्गीज ने यह व्यंग किया कि "यह तो किसी आधुनिक पंडित ने आजकल के विमानों को देखकर श्लोक व सूत्रबद्ध कर दिया है इत्यादि।" हमने कहा—श्रीमान्! यदि इस तुच्छ ग्रन्थ में वह लिखा हो जो आप के आजकल के विमान भी न कर पायें तो आप की धारणा सर्वथा मिथ्या हो जायेगी। इस पर

उन्होंने कोई उदाहरण देने को कहा। हमने अनायास ही पुस्तिका खोली। जैसा उसमें लिखा था, पढ कर सुनाया। उसमे एक पाठ था :—

संकोचनरहस्यो नाम—यंत्रांगोपसंहाराधिकोक्तरीत्या अंतरिक्षे अति वेगात् पलायमानाना विस्तृतखेटयानानामपाय सम्भवे विमानस्थ सप्तमकीलीचालनद्वारा तदंगोपसंहारक्रिया रहस्यम्।

अर्थात् यदि आकाश मे आपका विमान अनेकों अतिवेग से भागने वाले शत्रु विमानों से घिर जाय और आप के विमान के निकल भागने या नाश से बचने का कोई उपाय न दिखाई दे तो आप अपने विमान मे लगी सात नम्बर की कीली (Lever) को चलाइए। इससे आप के विमान का एक एक अग सिकुड़ कर छोटा हो जायेगा और आप के विमान की गति अति तेज हो जायेगी और आप निकल जायेंगे। इस पाठ को सुन कर श्री हॉले उत्तेजित और चकित होकर कुर्सी से उठ खड़े हुए और बोले—"वर्मा जी, क्या तुमने कभी चील को नीचे झपटते नहीं देखा है, उस समय कैसे वह अपने शरीर तथा पैरों को सिकुड़ कर अति तीव्र गति प्राप्त करती है, यही सिद्धान्त इस यन्त्र द्वारा प्रकट किया है। इस प्रकार के अनेकों स्थल जब उन्हें सुनाये तो वह इस ग्रथिका के साथ मानो चिपट ही गये। उन्होंने हमारे साथ इस ग्रथ के केवल एक सूत्र (दूसरे) ही पर लगभग एक महीना काम किया। विदा होने के समय हमने सदेह प्रकट करते हुए उनसे पूछा—"क्या इस परिश्रम को व्यर्थ भी समझा जा सकता है?" उन्होंने बड़े गभीर भाव से उत्तर दिया—"मेरे विचार मे व्यक्ति के जीवन में ऐसी घटना शायद दस लाख में एक बार आती है (It is a chance one out of a million)"। पाठक इस ग्रथ की उपयोगिता का एक विदेशी विद्वान् के परिश्रम और शब्दों से अनुमान लगा सकते हैं। इसमे से उसे जो नये नये भाव लेने थे, ले गया। हम लोगों के पास तो वे सूखे पन्ने ही पड़े हैं।

विमानप्रकरणम् :

ग्रन्थ परिचय—यह विमानप्रकरण भरद्वाज ऋषि के महाग्रन्थ 'यन्त्रसर्वस्व' का एक भाग है। 'यन्त्रसर्वस्व' महाग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इसके 'विमान-प्रकरण' पर यति बोधानन्द ने व्याख्या वृत्ति के रूप में लिखी, उसका कुछ भाग हस्तलिखित प्राप्त पुस्तिका मे बोधानन्द यूँ लिखते हैं :—

"पूर्वाचार्यकृतान् शास्त्रानवलोक्य यथामति।
सर्वलोकोपकराय सर्वानर्थविनाशकम्॥

त्रयी हृदयसन्दोहसाररूपं सुखप्रदम् ।
सूत्रैः पञ्चशतैर्युक्तं शताधिकरणैस्तथा ॥
अष्टाध्यायसमायुक्तमति गूढ मनोहरम् ।
जगतामतिसंधानकारणं शुभदं नृणाम् ॥
अनायासाद् व्योमयानस्वरूपज्ञानसाधनम् ।
वैमानिकाधिकरणं कथ्यतेऽस्मिन् यथामति ॥
संग्रहाद् वैमानिकाधिकरणस्य यथाविधि ।
लिलेख बोधानन्दवृत्त्याख्यां व्याख्यां मनोहरम् ॥"

अर्थात् अपने से पूर्व आचार्यों के शास्त्रों का पूर्णरूप से अध्ययन कर सबके हित और सौकर्य्य के लिये इस 'वैमानिक अधिकरण' को ८ अध्याय, १०० अधिकरण और ५०० सूत्रों मे विभाजित किया गया है और व्याख्या श्लोकों में निबद्ध की है। आगे लिखते हैं :—

"तस्मिन् चत्वारिंशतिकाधिकारे सम्प्रदर्शितम् ।
नानाविमानवैचित्र्यरचनाक्रमबोधकम् ॥"

भाव है : भरद्वाज ऋषि ने अति परिश्रम कर मनुष्यों के अभीष्ट फलप्रद ४० अधिकारों से युक्त 'यन्त्रसर्वस्व' ग्रथ रचा और उसमें भिन्न-भिन्न विमानों की विचित्रता और रचना का बोध ८ अध्याय, ५०० सूत्रों द्वारा कराया।

इतना विशाल वैमानिक साहित्य ग्रथ था जो लुप्त है और इस समय केवल बड़ौदा पुस्तकालय से एक लघु हस्तलिखित प्रतिलिपि केवल ५ सूत्रों की ही मिली है। शेष सूत्र न मालूम गुम हो गये या किसी दूसरे के हाथ लगे। हमारे एक मित्र एन० बी० गाद्रे ने हमें ताञ्जौर से एकबार लिखा था कि वहाँ एक निर्धन ब्राह्मण के पास इस विमान शास्त्र के १५ सूत्र हैं, परन्तु हमे खेद है कि हम श्री गाद्रे की प्रेरणा के होते हुए भी उन सूत्रों को मोल भी न ले सके। उसने नहीं दिये। कितनी शोचनीय कथा तथा अवस्था है।

इस प्राप्त लघु पुस्तिका में सबसे पहिले प्राचीन विमानसम्बन्धी २५ विज्ञान-ग्रथों की सूची दी हुई है। जैसे :—

शक्तिसूत्र—अगस्त्यकृत, सौदामिनीकला—ईश्वरकृत, अंशुमन्तत्रम्—भरद्वाजकृत; यन्त्रसर्वस्व—भरद्वाजकृत, आकाशशास्त्रम्—भरद्वाजकृत, वाल्मीकिगणित—वाल्मीकिकृत इत्यादि।

इस पुस्तिका के ८ अध्यायों की साथ मे विषयानुक्रमणिका भी प्राप्त हुई है। संक्षेप रूप मे हम कुछ एक का वर्णन करते हैं जिससे पाठक स्वयं देख सकें कि वह कितनी विज्ञानप्रद है :—

प्रथम अध्याय मे १२ अधिकरण हैं, यथा :—

विमानाधिकरण (Air-crafts), वस्त्राधिकरण (Dresses), मार्गाधिकरण (Routes), आवर्ताधिकरण (Spheres in space), जात्यधिकरण (Various types) इत्यादि।

दूसरे अध्याय में भी १२ अधिकरण हैं, यथा :—

लोहाधिकरण (Irons metallurgy),

दर्पणाधिकरण (Mirrors, lenses and optics),

शक्त्यधिकरण (Power mechanics),

तैलाधिकरण (Fuels, lubrication and paints),

वाताधिकरण (Kinetics),

भाराधिकरण (Weights, loads, gravitation),

वेगाधिकरण (Velocities),

चक्राधिकरण (Circuits, gears) इत्यादि।

तीसरे अध्याय मे १३ अधिकरण है, जैसे :—

कालाधिकरण (Chronology),

सस्काराधिकरण (Refinery, repairs),

प्रकाशाधिकरण (Lightening and illuminations),

उष्णाधिकरण (Study of heats),

शैत्याधिकरण (Refrigeration),

आन्दोलनाधिकरण (Study of oscillations),

तिर्यंचाधिकरण (Parobobe conic and angular motions) आदि।

चौथे अध्याय में आकाश (Space) मे विमानो के जो भिन्न-भिन्न मार्ग हैं वे तीसरे सूत्र की शौनकीय वृत्ति या व्याख्या मे वर्णित हैं। उन मार्गों की सीमाऍं तथा रेखाओ का वर्णन है। जैसे—लग, वग, हग, लव. लवहग इत्यादि। इसमें भी १२ अधिकरण हैं।

पॉचवे अध्याय में १३ अधिकरण ये हैं :

तन्त्राधिकरण(Technology), विद्युत्प्रसारणाधिकरण (Electric conduction and dispersion), स्तम्भनाधिकरण (Accumula-

tion, inhibitions and brakes etc), दिङ्निदर्शनाधिकरण (Direction indicators), घण्टारवाधिकरण (Sound and acoustics), चक्रगत्यधिकरण (Wheels, disc motions) इत्यादि ।

छठे अध्याय मे मुख्य अधिकरण है वामनिर्णयाधिकरण (Determination of North) । प्राचीन भारत मे मानचित्र (map) बनाने मे मानचित्र के ऊपर के भाग को उत्तर दिशा (North) नहीं कहते थे । ऊपर की दिशा उनकी पूर्व दिशा होती थी । अत. बाई ओर या वामदिशा उत्तर दिशा कहलाती थी ।

शक्ति उद्गमनाधिकरण (Lifts, power study), धूमयानाधिकरण (Gas driven vehicles and planes), तारमुखाधिकरण (Telescopes etc), अंशुवाहाधिकरण (Ray media or ray beams) इत्यादि । इसमें भी १२ अधिकरण वर्णित है ।

सातवे अध्याय मे ११ अधिकरण है :—

सिंहिकाधिकारण (Trickery), कूर्माधिकरण (Amphibious planes)—कौ=जले उर्म्यः यस्य स कूर्मः ।

अर्थात् कूर्म वह है जा जल में गतिमान हो । पुराने काल के हमारे विमान पृथ्वी और जल में भी चल सकते थे । इस विषय से सम्बन्ध रखने वाला यह अधिकरण है ।

माण्डलिकाधिकरण (Controls and governors),

जलाधिकरण (Reservoirs, cloud signs etc) इत्यादि ।

आठवे अध्याय मे :—

ध्वजाधिकरण (Symbols, ciphers),

कालाधिकरण (Weathers, meteorology),

विस्तृतक्रियाधिकरण (Contraction, flexion systems),

प्राणकुण्डल्यधिकरण (Energy coils system),

शब्दाकर्षणाधिकरण (Sound absorption, listening devices like modern radios),

रूपाकर्षणाधिकरण (Form attraction electromagnetic search),

प्रतिबिम्बाकर्षणाधिकरण (Shadow or image detection),

गमागमाधिकरण (Reciprocation etc)

इस प्रकार १०० अधिकरण इस 'वैमानिक प्रकरण' की हस्तलिखित पुस्तिका मे दिये गये हैं। पाठक इस पर तनिक भी ध्यान देंगे तो देखेंगे कि जो विषय या विद्या इन अधिकरणों में दी गई है वह आजकल की वैज्ञानिक विद्या से कम महत्त्व की नहीं है।

उपलब्ध चार सूत्र :

इन चार सूत्रों के साथ बोधानन्द की वृत्ति के अतिरिक्त कुछ अन्य खेटकों के नाम तथा विचार भी दिये गए हैं।

प्रथम सूत्र है :—"वेगसाम्याद् विमानोऽण्डजानामिति।"

इस सूत्र द्वारा विमान क्या है इसकी परिभाषा की गई है। बोधानन्द अपनी वृत्ति मे कहते हैं कि विमान वह आकाशयान है जो गृध्र आदि पक्षियो के समान वेग से आकाश में गमन करता है। लल्लाचार्य एक अन्य खेटक मे भी यही लक्षण देते हैं।

नारायणाचार्य के अनुसार विमान का लक्षण इस प्रकार निर्दिष्ट है—

पृथिव्यप्स्वन्तरिक्षेषु खगवद्वेगतः स्वयम्।
यः समर्थो भवेद्गन्तुं स विमान इति स्मृतः॥

अर्थात् जो विमान पृथिवी, जल तथा अतरि॰ मे पक्षी के समान वेग से उड़ सके उसे ही विमान कहा जाता है। अर्थात् उस समय मे विमान पृथिवी पर, पानी मे तथा वायु (हवा) मे तीनों अवस्थाओ मे वेग से चलनेवाले होते थे। ऐसा नहीं कि पृथिवी या पानी में गिर कर नष्ट हो जाते थे।

विश्वम्भर तथा शंखाचार्य के अनुसार :—

देशाद्देशान्तरं तद्वद् द्वीपाद्द्वीपान्तरं तथा।
लोकाल्लोकान्तरं चापि योऽम्बरे गन्तुं अर्हति,
स विमान इति प्रोक्तः खेटशास्त्रविदांवरैः॥

अर्थात् उस समय जो एक देश से दूसरे देश, एक द्वीप से दूसरे द्वीप तथा एक लोक से दूसरे लोक को आकाश द्वारा उड़कर जा सकता था उसे ही विमान कहा जाता था।

प्रथम सूत्र द्वारा विभिन्न लेखकों के विचार प्रकट किये गये हैं।

दूसरा सूत्र—रहस्यज्ञोधिकारी (अ० १ सूत्र २)

बोधानन्द बताते हैं कि रहस्यों को जानने वाला ही विमान चलाने का अधिकारी हो सकता है। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए यों लिखते हैं—

विमान-रचने व्योमारोहणे चलने तथा।
स्तम्भने गमने चित्रगतिवेगादिनिर्णये॥
वैमानिक रहस्यार्थज्ञानसाधनमन्तरा।
यतो नंसिद्धिर्नेति सूत्रेण वर्णितम्॥

अर्थात् जिस वैमानिक व्यक्ति को अनेक प्रकार के रहस्य, जैसे विमान बनाने, उसे आकाश में उड़ाने, चलाने तथा आकाश में ही रोकने, पुन चलाने, चित्र-विचित्र प्रकार की अनेक गतियों के चलाने के और विमान की विशेष अवस्था में विशेष गतियों का निर्णय करना जानता हो वही अधिकारी हो सकता है, दूसरा नहीं।

वृत्तिकार और भी लिखते हैं कि लल्लाचार्य आदि अनेक पुराकाल के विमान-शास्त्रियों ने "रहस्यलहरी" आदि ग्रंथों में जो बताया है उसके अनुसार संक्षेप में वर्णन करता हूँ। ज्ञातव्य है कि भरद्वाज ऋषि के रचे "वैमानिक प्रकरण" से पहले कई अन्य आचार्यों ने भी विमान विषयक ग्रंथ लिखे हैं, जैसे :—

नारायण और उसका लिखा ग्रंथ		'विमानचन्द्रिका'
शौनक	,,	'व्योमयानतंत्र'
गर्ग	,,	'यन्त्रकल्प'
वाचस्पति	,,	'यानबिन्दु'
चाक्रायणि	,,	'व्योमयानार्क'
धुण्डिनाथ	,,	'खेटयानप्रदीपिका'।

भरद्वाज जी ने इन शास्त्रों का भी भलीभांति अवलोकन तथा विचार करके "वैमानिकप्रकरण" की परिभाषा को विस्तार से लिखा है—यह सब वहाँ लिखा हुआ है।

रहस्यलहरी में ३२ प्रकार के रहस्य वर्णित हैं :—

एतानि द्वात्रिंशद्रहस्यानि गुरोर्मुखात्।
विज्ञान विधिवत् सर्वं पश्चात् कार्यं समारभेत्॥

एतद्रहस्यानुभवो यस्यास्ति गुरुबोधनः।
स एव व्योमयानाधिकारी स्यान्नेतरे जनाः ॥

अर्थात् जो गुरु से भलीभांति ३२ रहस्यो को जान उन्हे अभ्यास कर, रहस्यों की जानकारी में प्रवीण हो वही विमानों के चलाने का अधिकारी है, दूसरा नहीं।

ये ३२ रहस्य बड़े ही विचित्र तथा वैज्ञानिक ढग से बनाये हुए थे। आजकल के विमानों मे भी वह विचित्रता नहीं पाई जाती। इन ३२ रहस्यों को पूरा लिखना लेख की काया को बहुत बड़ा करना है। पाठको को ज्ञान तथा अपनी पुरानी कला-कौशल के विकास की झाकी दिखाने के लिए कुछ यन्त्रों का नीचे वर्णन करते हैं :—

१. पहले कुछ रहस्यों के वर्णन मे वह अनेक प्रकार की शक्तियों, जैसे छिन्नमस्ता, भैरवी, वेगिनी, सिद्धाम्बा आदि को प्राप्त कर, उनको विभिन्न मार्गों या प्रयोगों जैसे—घुटिका, पादुका, दृश्य, अदृश्यशक्ति मार्गों और उन शक्तियो को विभिन्न कलाओं मे सयोजन करके अभेदत्व, अछेदत्व, अदाहत्व, अविनाशत्व आदि गुणो को प्राप्त कर उन्हें विमान-रचना क्रिया मे प्रयोग करने की विधियाँ बताई हैं। साथ ही महामाया, शाम्बरादि तान्त्रिकशास्त्रों (Technical Literatures) द्वारा अनेक प्रकार की शक्तियों के अनुष्ठानों के रहस्य वर्णित किये हैं। यह लिखा है कि विमानविद्या मे प्रवीण अति अनुभवी विद्वान् विश्वकर्मा, छायापुरुष, मनु तथा मय आदि कृतकों (Builders or constructors) के ग्रथ उस समय उपलब्ध थे। रामायण मे लिखा है कि 'पुष्पक' विमान के आविष्कारक या मान्त्रिक (Theorist) अगस्त्य ऋषि थे पर उसके निर्माण कर्त्ता विश्वकर्मा थे।

२. आकाश-परिधि-मण्डलो के सधिस्थानों मे शक्तियाँ उत्पन्न होती है और जब विमान इन सधि-स्थानो मे प्रवेश करता है तो शक्तियाँ उसका सम्मर्दन कर चूर-चूर कर सकती है अतः उन सधियो मे प्रवेश करने से पूर्व ही सूचना देने वाला "रहस्य" विमान मे लगा होता था जो उसका उपाय करने को सावधान कर देता था। क्या यह आजकल के (Radar) के समान यन्त्र का बोध नहीं देता?

३. माया विमान वा अदृश्य विमान को दृश्य और अपने विमान को अदृश्य कर देने वाले यन्त्र रहस्य विमानों मे होते थे।

४. सकोचन रहस्य—शत्रु के विमानों से घिरे अपने विमान को भाग निकलने के लिये अपने विमान की काया को ही सिकुड़ कर छोटा करके वेग को बहुत बढ़ा कर विमान में लगी एक ही कीली से यह प्रभाव प्राप्त किया जाने वाला रहस्य भी होता था। आजकल कोई भी विमान ऐसा अपने शरीर को छोटा या बड़ा नहीं कर सकता। प्राचीन विमान में एक ऐसा भी 'रहस्य' लगा होता था जिसे एक से दस रेखा तक चलाने से विमान उतना ही विस्तृत भी हो सकता था।

इसी प्रकार अन्य अनेकों 'रहस्य' वर्णित हैं जिनके द्वारा विमान के अनेक रूप चलते-चलते बदले जा सकते थे जैसे अनेक प्रकार के धूम्रों की सहायता से महाभयप्रद काया का विमान, या सिंह, व्याघ्र, भालू, सर्प, गिरि, नदी वृक्षादि आकार के या अति सुन्दर, अप्सरारूप, पुष्पमाला से मंचित रूप भी अनेक प्रकार की किरणों की सहायता से बना लिये जाते थे। हो सकता है ये Play of colours, spectrums द्वारा उत्पन्न किये जाते हों।

५. तमोमय रहस्य द्वारा अपनी रक्षार्थ अधेरा भी उत्पन्न कर सकते थे। इसी प्रकार विमान के अगले भाग में महारयत्रनाल द्वारा सन जातीय धूम को पञ्चभंविवेकशास्त्र में बताये अनुसार विद्युत् ससर्ग (Expansion of gases by electric sparks) से पाच स्कन्ध-वात नाली मुखों से निकली तरगों वाली प्रलयनाशक्रियारूपी "प्रलय रहस्य" का वर्णन भी है।

६. महाशब्दविमोहन रहस्य शत्रु के क्षेत्रों में बम बरसाने की अपेक्षा विमान में महाशब्दकारक ६२ ध्मानकलासंघण शब्द (By 62 blowing chambers) जो एक महाभयानक शब्द उत्पन्न करता था, जिससे शत्रुओं के मस्तिष्क पर किष्कुप्रमाण कम्पन (Vibrations) उत्पन्न कर देता था और उसके प्रभाव से स्मृति-विस्मरण हो शत्रु मोहित या मूर्च्छित हो जाते थे। आजकल के Acoustic science (शब्द विज्ञान) के जानने वाले जानते हैं कि शब्दतरगें इस प्रकार की उत्पन्न की जा सकती हैं जो पत्थर की दीवार पर यदि टकराई जाय तो उस दीवार को भी तोड़ द, मस्तिष्क का तो कहना ही क्या। इस प्रकार Acoustics विद्या-कोविद विमान में "महाशब्द-विमोहनरहस्य" के प्रभाव को सच्चा सिद्ध करता है।

विमान की विचित्र गतियों अर्थात् सर्पवत् गति आदि को उत्पन्न करना एक ही कीली के आधार पर रखा गया था। इसी प्रकार शत्रु के विमान में अत्यन्त वेगवान कम्पन करने का "चापलरहस्य" भी होता था। इस रहस्य के विषय मे

लिखा है कि विमान के मध्य में एक कीली या लीवर (lever) लगा होता था। जिसके चलाने मात्र से एक चुटकी भर के छोटे से काल में (एकछोटिकावछिन्नकाले) ४०८७ वेग की तरगें उत्पन्न हो जाएँगी और उन्हें यदि शत्रुविमान की ओर अभिमुख कर दिया जाये तो शत्रुविमान वेग से चक्कर खाकर खण्डित हो जायेगा।

"परशब्दग्राहक" या "रूपाकर्षक" तथा "क्रियाग्रहणरहस्य" का भी वर्णन दिया हुआ है। उस समय का परशब्दग्राहक यत्र आजकल के रेडियो से अधिक उत्तम इसलिये था क्योंकि आजकल तब तक radio शब्द ग्रहण नहीं करता जबतक दूसरी ओर से शब्द को प्रसारित (broadcast) न किया जाये। कोई भी व्यक्ति अपनी बातें शत्रु के लिये प्रसारित नहीं करता तथापि उस समय का परशब्दग्राहकरहस्य सब कुछ ग्रहण कर लेता था। वहाँ लिखा है—"परविमानस्यजनसम्भाषणादि सर्व शब्दाकर्षणं" अर्थात् शब्द पकड़ते थे। इसी प्रकार परविमानस्थित वस्तुरूपाकर्षण भी करने के यन्त्र थे। "क्रियाग्रहणरहस्य" विशेष रश्मियों और द्रावक शक्ति तथा सनवर्गी सूर्यकिरणों को दर्पण द्वारा एक शुद्धपट (White screen) पर प्रसारित करने पर दूसरों के विमान या पृथिवी अथवा अतरिक्ष में जहाँ कहीं कोई भी क्रिया हो रही होती थी उसके स्वरूप प्रतिबिम्ब (Images) शुद्धपट पर मूर्तिवत् चित्रित हो जाते थे जिसे देख कर दूसरों की सब क्रियाओं का पता चल जाता था। यह आजकल के Kinometography या Television के समान यन्त्र था।

अपने प्राचीन विमानों की विशेषताओं का कितना और वर्णन किया जावे, इस प्रकार के अनेकों अद्भुत चमत्कार करने वाले यत्र हमारे विद्वान् खेटशास्त्री जानते थे। स्थानाभाव के कारण इन यन्त्रों के विषय में अधिक नहीं लिख सकते इसलिये तीसरे तथा चौथे सूत्र का सक्षेप में वर्णन करते हैं।
तीसरा सूत्र है. पञ्चज्ञश्र १। ३॥

बोधानन्द की वृत्ति है कि पाँचों को जानने वाला ही अधिकारी चालक हो सकता है। उसने आकाश मे पाँच प्रकार के आवर्त, भ्रमर या बवण्डरो का वर्णन किया है। "पञ्चावर्त" का शौनक ने विस्तार से वर्णन किया है। वे हैं रेखापथ, मण्डल, कक्ष्य, शक्ति तथा केन्द्र। ये ५ प्रकार के मार्ग (Space spheres) आकाश मे विमानों के लिये बताये हैं।

इन्हे 'शौनक शास्त्र" मे "आकूर्मादावरुणान्तं" अर्थात् कूर्म से लेकर वरुण पर्यन्त कहा है। आगे इनकी गणना की हुई है कि ये Spheres या क्षेत्र कितनी-कितनी दूर तक फैले हुए हैं और लिखा है कि इस प्रकार वाल्मीकि-गणित मे ही गणित-शास्त्र के पारगत विद्वानो ने ऊपर के विमान-मार्गो का निर्णय धारित किया है। उनका कथन है कि दो प्रवाहो के सगम से आवर्तन होते है और इनके सधिस्थानों में विमान फँसकर तरगों के कारण नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। आजकल भी कई बार अनायास ही इन आवर्तों मे फँस जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं, ऐसी दुर्घटनाएँ देखने में आती है। "मार्गनिबन्ध" ग्रथ मे गणित इतनी जटिल त्रिकोणमिति (Trignometry) आदि द्वारा वर्णित है जो सर्वसाधारण के लिये अति कठिन है अत: उसका यहाँ वर्णन नहीं किया जा रहा है।

चौथा सूत्र है "अङ्गान्येकत्रिंशत्"। बोधानन्द व्याख्या करके बताते हैं कि शास्त्रों में सब विमानों के अग तथा प्रत्यङ्गों का परस्पर अगागीभाव होना उतना ही आवश्यक है जितना शरीर के अङ्गों मे होना। विमान के अङ्ग ३१ होते हैं और उन अङ्गों को विमान के किस-किस भाग में किस किस अग को लगाया या रखा जावे, यह "छायापुरुषशास्त्र" मे भलीभाँति वर्णित है। आजकल विमानशास्त्री इस ज्ञान को Aeronautic architecture नाम देते हैं। विमान चालक के सुलभ और शीघ्र इन अगों को प्रयोग मे लाने के लिये इन अगों की उचित स्थिति इस सूत्र की व्याख्यावृत्ति निर्देशन कर रही है।

इन अगों की स्थितियों में सबसे पहिले "विश्वक्रियादर्शन" (Paranomic view of cosmos) दर्पण का स्थान बताया है, पुन: परिवेष-स्थान, अग-सकोचन यन्त्र स्थान होते हैं। विमानकण्ठ मे कुण्टिणीशक्तिस्थान, पुष्पिणीपिञ्जुलादर्श, नालपञ्चक, गुहागर्भादर्श, पञ्चावर्तकस्कन्धनाल, रौद्रीदर्पण, शब्दकेन्द्रमुख, विद्युद्द्वादशक, प्राणकुण्डलीस्थान, वक्रप्रसारणस्थान, शक्तिपञ्जरस्थान, शिर:कील, शब्दाकर्षक, पटप्रसारणस्थान, दिशाम्पति, सूर्य-शक्तिआकर्षणपञ्जर (Solar energy absorption system) इत्यादि यत्रों के उचित स्थानों का न्यासन किया हुआ है।

ऊपर वर्णित अनेकों शक्तिजनक सस्थानों, उनके प्रयोग की कलाओ तथा अनेक यत्रों के विषय में पढ कर स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है कि हमारे

पूर्वज कितने विज्ञान कोविद थे और विमानादि अनेक कलाओं के बनाने में अत्यन्त निपुण थे। विज्ञान प्राप्ति के कई ढंग व मार्ग हैं। यह आवश्यक नहीं कि जिस प्रकार से पश्चिमी विद्वान् जिन तथ्यों पर पहुँचे हैं वही एक विधि है। हमारे पूर्वजों ने अधिक सरल विधियों से उतनी ही योग्यता प्राप्त की जितनी आजकल पश्चिमी ढंग से बड़े-बड़े भवनों व प्रयोगशालाओं द्वारा प्राप्त की जा रही है। इसलिये हमारा एतद्देशीय विद्वानों तथा विज्ञानवेत्ताओं से साग्रह सविनय अनुरोध है कि अपने पुराने प्राप्त साहित्य को व्यर्थ व पिछड़ा हुआ (Out of date) समझ कर न फटकारें वरन् ध्यान तथा आन्वेषिकी दृष्टि तथा विश्वास से परखें। हमारी धारणा है कि उनका परिश्रम व्यर्थ न होगा और बहुमूल्य आविष्कार प्राप्त होंगे।

—डा० एस० के० भारद्वाज

प्राक्कथन

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ५, लाक्षणिक साहित्य से सम्बन्धित है। इसके लेखक हैं पं० अंबालाल प्रे० शाह। आप अहमदाबादस्थित लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में पिछले कई वर्षों से कार्य कर रहे हैं। प्रस्तुत भाग के लेखन में आपने यथेष्ट श्रम किया है तथा लाक्षणिक साहित्य के विविध अंगों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। आपकी मातृभाषा गुजराती होने पर भी मेरे अनुरोध को स्वीकार कर आपने प्रस्तुत ग्रन्थ का हिन्दी में निर्माण किया है। ऐसी स्थिति में ग्रन्थ में भाषाविषयक सौष्ठव का निर्वाह पर्याप्त मात्रा में कदाचित् न हो पाया हो, यह स्वाभाविक है। वैसे सम्पादकों ने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि ग्रन्थ के भाव एवं भाषा दोनों यथासम्भव अपने सही रूप में रहें।

इस भाग से पूर्व प्रकाशित चारों भागों का विद्वत्समाज और सामान्य पाठकवृन्द ने हार्दिक स्वागत किया है। आगमिक व्याख्याओं से सम्बन्धित तृतीय भाग उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा १५००) रु० के रवीन्द्र पुरस्कार से पुरस्कृत भी हुआ है। प्रस्तुत भाग भी विद्वानों व अन्य पाठकों को उसी प्रकार पसंद आएगा, ऐसा विश्वास है।

ग्रन्थ-लेखक पं० अंबालाल प्रे० शाह का तथा सम्पादक पूज्य पं० दलसुखभाई का मैं अत्यन्त अनुगृहीत हूँ। ग्रंथ के मुद्रण के लिए संसार प्रेस का तथा प्रूफ-संशोधन आदि के लिए संस्थान के शोध-सहायक पं० कपिलदेव गिरि का आभार मानता हूँ।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
वाराणसी-५
२९. १२. ६९

मोहनलाल मेहता
अध्यक्ष

प्रस्तुत पुस्तक में

लाक्षणिक साहित्य

पहला प्रकरण

व्याकरण

व्याकरण की व्याख्या करते हुए किसी ने इस प्रकार कहा है :

"प्रकृति-प्रत्ययोपाधि-निपातादि विभागशः ।
यदन्वाख्यानकरण शास्त्रं व्याकरणं विदुः ॥"

अर्थात् प्रकृति और प्रत्ययो के विभाग द्वारा पदो का अन्वाख्यान—स्पष्टी-करण करनेवाला शास्त्र 'व्याकरण' कहलाता है ।

व्याकरण द्वारा शब्दो की व्युत्पत्ति स्पष्ट की जाती है । व्याकरण के सूत्र सज्ञा, विधि, निषेध, नियम, अतिदेश एव अधिकार—इन छ. विभागो मे विभक्त है । प्रत्येक सूत्र के पदच्छेद, विभक्ति, समास, अर्थ, उदाहरण और सिद्धि—ये छ अग होते है । सक्षेप मे कहे तो भाषा-विकृति को रोककर भाषा के गठन का बोध करानेवाला शास्त्र व्याकरण है ।

वैयाकरणो ने व्याकरण के विस्तार और दुष्करता का ध्यान दिलाते हुए व्याकरण का अध्ययन करने की प्रेरणा इस प्रकार दी है :

"अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रं,
स्वल्पं तथाऽऽयुर्बहवश्च विघ्ना. ।
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु,
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥"

अर्थात् व्याकरण-शास्त्र का अन्त नहीं है, आयु स्वल्प है और बहुत से विघ्न है, इसलिये जैसे हस पानी मिले हुए दूध मे से सिर्फ दूध ही ग्रहण करता है, उसी प्रकार निरर्थक विस्तार को छोडकर साररूप (व्याकरण) को ग्रहण करना चाहिये ।

यद्यपि व्याकरण के विस्तार और गहराई मे न पडे तथापि भाषा प्रयोगो मे अनर्थ न हो और अपने विचार लौकिक और सामयिक शब्दो द्वारा दूसरो को स्फुट और सुचारु रूप से समझा सके इसलिये व्याकरण का ज्ञान नितान्त आवश्यक है । व्याकरण से ही तो ज्ञान मूर्तरूप बनता है ।

व्याकरणो की रचना प्राचीन काल से होती रही है फिर भी व्याकरण-तत्र की प्रणालि की वैज्ञानिक एव नियमबद्ध रीति से नींव डालनेवाले महर्षि पाणिनि (ई० पूर्व ५०० से ४०० के बीच) माने जाते है। यद्यपि ये अपने पूर्वज वैयाकरणों का सादर उल्लेख करते हैं परन्तु उन वैयाकरणो का प्रयत्न न व्यवस्थित था और न शृखलाबद्ध ही। ऐसी स्थिति मे यह मानना पड़ेगा कि पाणिनि ने अष्टाध्यायी जैसे छोटे-से सूत्रबद्ध ग्रथ मे सस्कृत-भाषा का सार-निचोड़ लेकर भाषा का ऐसा बाध निर्मित किया कि उन सूत्रों के अलावा सिद्ध प्रयोगो को अपभ्रष्ट करार दिये गए और उनके बाद होनेवाले वैयाकरणों को सिर्फ उनका अनुसरण ही करना पड़ा। उनके बाद वररुचि (ई० पूर्व ४०० से ३०० के बीच), पतञ्जलि, चन्द्रगोमिन् आदि अनेक वैयाकरण हुए, जिन्होने व्याकरण-शास्त्र का विस्तार, स्पष्टीकरण, सरलता, लघुता आदि उद्देश्यों को लेकर अपनी नई-नई रचनाओ द्वारा विचार उपस्थित किए। प्रस्तुत प्रकरण मे केवल जैन वैयाकरण और उनके ग्रन्थो के विषय मे सक्षिप्त जानकारी कराई जाएगी।

ऐतिहासिक विवेचन से ऐसा जान पड़ता है कि जब ब्राह्मणों ने शास्त्रों पर अपना सर्वस्व अधिकार जमा लिया तब जैन विद्वानो को व्याकरण आदि विषय के अपने नये ग्रन्थ बनाने की प्रेरणा मिली जिससे इस व्याकरण विषय पर जैनाचार्यों के स्वतत्र और टीकात्मक ग्रन्थ आज हमे शताधिक मात्रा मे सुलभ हो रहे हैं। जिन वैयाकरणो की छोटी-बड़ी रचनाएँ जैन भडारो में अभी तक अज्ञातावस्था मे पड़ी है वे इस गिनती मे नहीं है।

कई आचार्यों के ग्रन्थो का नामोल्लेख मिलता है परन्तु वे कृतियाँ उपलब्ध नहीं होतीं। जैसे क्षपणकरचित व्याकरण, उसकी वृत्ति और न्यास, मल्लवादीकृत 'विश्रान्तविद्याधर-न्यास', पूज्यपादरचित 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर अपना स्वोपज्ञ 'न्यास' और 'पाणिनीय व्याकरण' पर 'शब्दावतार-न्यास', भद्रेश्वररचित 'दीपकव्याकरण' आदि अद्यापि उपलब्ध नहीं हुए हैं। उन वैयाकरणो ने न केवल जैनरचित व्याकरण आदि ग्रन्थो पर ही टीका-टिप्पण लिखे अपितु जैनेतर विद्वानो के व्याकरण आदि ग्रन्थो का समादर करते हुए टीका, व्याख्या, विवरण आदि निर्माण करने की उदारता दिखाई है, तभी तो वे ग्रन्थकार जैनेतर विद्वानो के साथ ही साथ भारत के साहित्य-प्रागण मे अपनी प्रतिभा से गौरवपूर्ण आसन जमाये हुए है। उन्होने सैकड़ो ग्रन्थो का निर्माण करके जैनविद्या का मुख उज्ज्वल बनाने की कोशिश की है।

भगवान् महावीर के पूर्व किसी जैनाचार्य ने व्याकरण की रचना की हो ऐसा नहीं लगता। 'ऐन्द्रव्याकरण' महावीर के समय (ई० पूर्व ५९०) मे बना। 'सद्दपाहुड' महावीर के पिछले काल (ई० पूर्व ५५७) मे बना। लेकिन इन दोनो व्याकरणों मे से एक भी उपलब्ध नहीं है। उसके बाद दिगबर जैनाचार्य देवनन्दि ने 'जैनेन्द्रव्याकरण' की रचना विक्रम की छठी शताब्दी मे की जिसे उपलब्ध जैन व्याकरण-ग्रन्थो मे सर्वप्रथम रचना कह सकते हैं। इसी तरह यापनीय सघ के आचार्य शाकटायन ने लगभग वि० स० ९०० मे 'शब्दानुशासन' की रचना की, यह यापनीय सघ का आद्य और जैनो का उपलब्ध दूसरा व्याकरण है। आचार्य बुद्धिसागर सूरि ने 'पञ्चग्रन्थी' व्याकरण वि० स० १०८० मे रचा है, जिसे श्वेतांबर जैनो के उपलब्ध व्याकरण-ग्रन्थो मे सर्वप्रथम रचना कह सकते हैं। उसके बाद हेमचन्द्र सूरि ने 'सिद्ध-हेमचन्द्र-शब्दानुशासन' की रचना पचागो मे युक्त की है, इसके बाद जिनका ब्यौरेवार वर्णन हम यहा कर रहे है, ऐसे और भी अनेक वैयाकरण हुए है जिन्होने स्वतत्र व्याकरणो की या टीका, टिप्पण तथा आशिक रूप से व्याकरण-ग्रन्थो की रचनाएँ की है।

ऐन्द्र-व्याकरण :

प्राचीन काल मे इन्द्र नामक आचार्य का बनाया हुआ एक व्याकरण-ग्रन्थ था[1] परन्तु वह विनष्ट हो गया है[2]। ऐन्द्र-व्याकरण के लिये जैन ग्रन्थो मे ऐसी परम्परा एव मान्यता है कि भगवान् महावीर ने इन्द्र के लिये एक शब्दानुशासन कहा, उसे उपाध्याय (लेखाचार्य) ने सुनकर लोक मे ऐन्द्र नाम से प्रगट किया[3]।

ऐसा मानना अतिरेकपूर्ण कहा जायगा कि भगवान् महावीर ने ऐसे किसी व्याकरण की रचना की हो और वह भी मागधी या प्राकृत मे न होकर ब्राह्मणो की प्रमुख भाषा सस्कृत मे ही हो।

---

१ डॉ० ए० सी० बर्नेल ने ऐन्द्रव्याकरण-सम्बन्धी चीनी, तिब्बतीय और भारतीय साहित्य के उल्लेखों का सग्रह करके 'ऑन दी ऐन्द्र स्कूल आफ ग्रामेरियन्स' नामक एक बडा ग्रन्थ लिखा है।

२. 'तेन प्रणष्टमैन्द्र तदस्माद् भुवि व्याकरणम्'—कथासरित्सागर, तरग ४

३ सक्को अ तस्समक्खं भगवत आसणे निवेसित्ता।
सद्दस्स लक्खणं पुच्छे वागरण अवयवा इंद ॥—आवश्यकनिर्युक्ति और हारिभद्रीय 'आवश्यकवृत्ति' भा० १, पृ० १८२.

पिछले जैन ग्रन्थकारा ने तो 'जैनेन्द्रव्याकरण' को ही 'ऐन्द्र' व्याकरण के तौरपर बताने का प्रयत्न किया है[1]। वस्तुतः 'ऐन्द्र' और 'जैनेन्द्र'—ये दोनो व्याकरण भिन्न-भिन्न थे। जैनेन्द्र से अति प्राचीन अनेक उल्लेख 'ऐन्द्रव्याकरण' के सम्बन्ध मे प्राप्त होते है :

दुर्गाचार्य ने 'निरुक्त-वृत्ति' पृ० १० के प्रारम्भ मे 'इन्द्र-व्याकरण' का सूत्र इस प्रकार बताया है : 'शास्त्रेष्वपि 'अथ वर्णसमूहः' इति ऐन्द्र-व्याकरणस्य।'

जैन 'शाकटायन व्याकरण' (सूत्र—१. २ ३७) मे 'इन्द्र-व्याकरण' का मत प्रदर्शित किया है।

'चरक' के व्याख्याता भट्टारक हरिश्चन्द्र ने 'इन्द्र-व्याकरण' का निर्देश इस प्रकार किया है : 'शास्त्रेष्वपि 'अथ वर्णसमूह ' इति ऐन्द्र-व्याकरणस्य।'

दिगम्बराचार्य सोमदेवसूरि ने अपने 'यशस्तिलकचम्पू' (आश्वास १, पृ० ९०) मे 'इन्द्र व्याकरण' का उल्लेख किया है।

'ऐन्द्र-व्याकरण' की रचना ईसा पूर्व ५९० मे हुई होगी ऐसा विद्वानों का मत है। परन्तु यह व्याकरण आज तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

शब्दप्राभृत (सद्दपाहुड) :

जैन आगमो का १२ वॉ अग 'दृष्टिवाद' के नाम से था, जो अब उपलब्ध नहीं है। इस अग मे १४ पूर्व सनिविष्ट थे। प्रत्येक पूर्व का 'वस्तु' और वस्तु का अवातर विभाग 'प्राभृत' नाम से कहा जाता था। 'आवश्यक-चूर्णि', 'अनुयोग-द्वार-चूर्णि' (पत्र, ४७), सिद्धसेनगणिकृत 'तत्त्वार्थसूत्र-भाष्य-टीका' (पृ० ५०) और मलधारी हेमचन्द्रसूरिकृत 'अनुयोगद्वारसूत्र-टीका' (पत्र, १५०) मे 'शब्दप्राभृत' का उल्लेख मिलता है।

सिद्धसेनगणि ने कहा है कि "पूर्वो मे जो 'शब्दप्राभृत' है, उसमे से व्याकरण का उद्भव हुआ है।"

'शब्दप्राभृत' लुप्त हो गया है। वह किस भाषा मे था यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। ऐसा माना जाता है कि चौदह पूर्व सस्कृत भाषा मे

---

१. विनयविजय उपाध्याय (स० १६९६) और लक्ष्मीवल्लभ मुनि (१८ वीं शताब्दी) ने जैनेन्द्र को ही भगवत्प्रणीत बताया है।

थे। इसलिये 'शब्दप्राभृत' भी संस्कृत में रहा होगा ऐसी सम्भावना हो सकती है।

क्षपणक-व्याकरण :

व्याकरणविषयक कई ग्रन्थों मे ऐसे उद्धरण मिलते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि किसी क्षपणक नाम के वैयाकरण ने किसी शब्दानुशासन की रचना की है। 'तन्त्रप्रदीप' में क्षपणक के मत का एकाधिक बार उल्लेख आता है[1]।

कवि कालिदासरचित 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक ग्रन्थ में विक्रमादित्य राजा की सभा के नव रत्नों के नाम उल्लिखित हैं, उनमें क्षपणक भी एक थे[2]।

कई ऐतिहासिक विद्वानो के मतव्य से जैनाचार्य सिद्धसेन दिवाकर का ही दूसरा नाम क्षपणक था।

दिगम्बर जैनाचार्य देवनन्दि ने सिद्धसेन के व्याकरणविषयक मत का 'वेत्तेः सिद्धसेनस्य ॥ ५. १. ७ ॥' इस सूत्र से उल्लेख किया है।

उज्ज्वलदत्त विरचित 'उणादिवृत्ति' में 'क्षपणकवृत्तौ अत्र 'इति' शब्द आद्यर्थे व्याख्यातः ॥'इस प्रकार उल्लेख किया है, इससे मालूम पड़ता है कि क्षपणक ने वृत्ति, धातुपाठ, उणादिसूत्र आदि के साथ व्याकरण-ग्रन्थ की रचना की होगी।

मैत्रेयरक्षित ने 'तन्त्रप्रदीप' (४ १. १५५) सूत्र में 'क्षपणक महान्यास' उद्धृत किया है। इससे प्रतीत होता है कि क्षपणक-रचित व्याकरण पर 'न्यास' की रचना भी हुई होगी।

यह क्षपणकरचित शब्दानुशासन, उसकी वृत्ति, न्यास या उसका कोई अश आजतक प्राप्त नहीं हुआ

---

१. मैत्रेयरक्षित ने अपने 'तंत्रप्रदीप' में—'अतएव नावमात्मानं मन्यते इति विग्रहपरत्वादनेन ह्रस्वत्व बाधित्वा अमागमे सति 'नावं मन्ये' इति क्षपणक-व्याकरणे दर्शितम्।' ऐसा उल्लेख किया है—भारत कौमुदी, भा० २, पृ० ८९३ की टिप्पणी।

२. क्षपणकोऽमरसिंहशङ्कू वेतालभट्ट-घटकर्पर-कालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

जैनेन्द्र-व्याकरण (पञ्चाध्यायी) :

इस व्याकरण के कर्ता देवनन्दि दिगंबर-सम्प्रदाय के आचार्य थे। उनके पूज्य-पाद[1] और जिनेन्द्रबुद्धि[2] ऐसे दो और नाम भी प्रचलित थे। 'देव' इस प्रकार संक्षिप्त नाम से भी लोग उन्हे पहिचानते थे। उन्होने बहुत से ग्रन्थो की रचना की है। लक्षणशास्त्र में देवनदि उत्तम ग्रथकार माने गये हैं।[3] इनका समय विक्रम की छठी शताब्दी है।

वोपदेव ने जिन आठ प्राचीन वैयाकरणों का उल्लेख किया है उनमे जैनेन्द्र भी एक हैं। ये देवनन्दि या पूज्यपाद विक्रम की छठी शताब्दी में विद्यमान थे ऐसा विद्वानो का मतव्य है[4]। जहाँ तक मालूम हुआ है, जैनाचार्य द्वारा रचे गये मौलिक व्याकरणो मे 'जैनेन्द्र-व्याकरण' सर्वप्रथम है।

---

१ यशः कीर्त्तिर्यशोनन्दी देवनन्दी महामतिः।
श्रीपूज्यपादापराख्यो गुणनन्दी गुणाकरः ॥—नन्दीसंघपट्टावली।

२ एक जिनेन्द्रबुद्धि नाम के बोधिसत्वदेशीयाचार्य या बौद्ध साधु विक्रम की ८वीं शताब्दी में हुए थे, जिन्होंने 'पाणिनीय व्याकरण' की 'काशिकावृत्ति' पर एक न्यासग्रन्थ की रचना की थी, जो 'जिनेन्द्रबुद्धि-न्यास' के नाम से प्रसिद्ध है। लेकिन ये जिनेन्द्रबुद्धि उनसे भिन्न हैं। यह तो पूज्यपाद का नामान्तर है, जिनके विषय में इस प्रकार उल्लेख मिलता है.
'जिनवद् बभूव यदनङ्गचापहृत् स जिनेन्द्रबुद्धिरिति साधु वर्णितः।'
—श्रवण बेलगोल के सं० १०८ (२८५) का मगराजकवि (स० १८००) कृत शिलालेख, श्लोक १६.

३. 'प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्'।—धनञ्जयनाममाला, श्लोक २०. 'सर्वव्याकरणे विपश्चिदधिप. श्रीपूज्यपाद स्वयम्।'; 'शब्दाश्च येन (पूज्यपादेन) सिद्धयन्ति।'— ये सब प्रमाण उनके महावैयाकरण होने के परिचायक हैं।

४. नाथूराम प्रेमी : 'जैन साहित्य और इतिहास' पृ० ११५–११७.

इस व्याकरण में पाँच अध्याय होने से इसे 'पञ्चाध्यायी' भी कहते हैं। इसमे प्रकरण-विभाग नहीं है। पाणिनि की तरह विधानक्रम को लक्ष्य कर सूत्र-रचना की गई है। एकशेष प्रकरण-रहित याने अनेकशेष रचना इस व्याकरण की अपनी विशेषता है। सज्ञाएँ अल्पाक्षरी है और 'पाणिनीय व्याकरण' के आधारपर यह ग्रन्थ है परन्तु अर्थगौरव बढ जाने से यह व्याकरण क्लिष्ट बन गया है। यह लौकिक व्याकरण है, इसमे छादस् प्रयोगो को भी लौकिक मानकर सिद्ध किये गये है।

देवनदि ने इसमे श्रीदत्त[1], यशोभद्र[2], भूतबलि[3], प्रभाचन्द्र[4], सिद्धसेन[5] और समतभद्र[6]—इन प्राचीन जैनाचार्यों के मतो का उल्लेख किया है। परन्तु इन आचार्यों का कोई भी व्याकरण-ग्रथ अद्यापि प्राप्त नहीं हुआ है, न कहीं इनके वैयाकरण होने का उल्लेख ही मिलता है।

जैनेन्द्रव्याकरण' के दो तरह के सूत्रपाठ मिलते है। एक प्राचीन है, जिसमे ३००० सूत्र हैं, दूसरा सशोधित पाठ है, जिसमे ३७०० सूत्र हैं। इनमे भी सब सूत्र समान नहीं हैं और सज्ञाओ मे भी भिन्नता है। ऐसा होने पर भी बहुत अग में समानता है। दोनो सूत्रपाठो पर भिन्न-भिन्न टीकाग्रन्थ हैं, उनका परिचय अलग दिया गया है।

प० कल्याणविजयजी गणि इस व्याकरण की आलोचना करते हुए इस प्रकार लिखते है .

"जैनेन्द्रव्याकरण आचार्य देवनन्दि की कृति मानी जाती है, परतु इसमे जिन जिन आचार्यों के मत का उल्लेख किया गया है, उनमे एक भी व्याकरणकार होने का प्रमाण नहीं मिलता। हमे तो ज्ञात होता है कि पिछले किन्हीं दिगम्बर जैन विद्वानो ने पाणिनीय अष्टाध्यायी सूत्रों को अस्त-व्यस्त कर यह कृत्रिम व्याकरण बनाकर देवनन्दि के नाम पर चढा दिया है।"[7]

---

१ 'गुणे श्रीदत्तस्यास्त्रियाम्' ॥ १. ४ ३४ ॥

२. 'कृवृषिमृजा यशोभद्रस्य' ॥ २ १ ९९ ॥

३. 'राद् भूतबले' ॥ ३ ४. ८३ ॥

४ 'रात्रैः कृतिप्रभाचन्द्रस्य' ॥ ४. ३. १८० ॥

५ 'वेत्ते सिद्धसेनस्य' ॥ ५. १ ७ ॥

६ 'चतुष्टय समन्तभद्रस्य' ॥ ५. ४. १४० ॥

७ 'प्रबन्ध-पारिजात' पृ० २१४

जैनेन्द्रन्यास, जैनेन्द्रभाष्य और शब्दावतारन्यास :

देवनन्दि या पूज्यपाद ने अपने 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर स्वोपज्ञ न्यास और 'पाणिनीय व्याकरण' पर 'शब्दावतार' न्यास की रचना की है, ऐसा शिमोगा जिला के नगर तहसील के ४६ वें शिलालेख से ज्ञात होता है। इस शिलालेख मे इन दोनो न्यास-ग्रन्थो के उल्लेख का पद्यांश इस प्रकार है :

'न्यासं 'जैनेन्द्र'संज्ञं सकलबुधनतं पाणिनीयस्य भूयो,
न्यासं 'शब्दावतारं' मनुजततिहितं वैद्यशास्त्रं च कृत्वा।'

श्रुतकीर्ति ने 'जैनेन्द्रव्याकरण' की 'पचवस्तु' नामक टीका मे 'भाष्योऽथ शय्यातलम्'—व्याकरणरूप महल मे भाष्य शय्यातल है—ऐसा उल्लेख किया है। इसके आधार पर 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर 'स्वोपज्ञ भाष्य' होने का भी अनुमान *किया जाता है लेकिन यह भाष्य या उपर्युक्त दोनो न्यासो मे से कोई भी न्यास प्राप्त नहीं हुआ है।*

महावृत्ति (जैनेन्द्रव्याकरण-वृत्ति) :

अभयनदि नामक दिगम्बर जैन मुनि ने देवनन्दि के असली सूत्रपाठ पर १२००० श्लोक-परिमाण टीका रची है, जो उपलब्ध टीकाओ मे सबसे प्राचीन है। इनका समय विक्रम की ८-९वीं शताब्दी है।

'पचवस्तु' टीका के कर्ता श्रुतकीर्ति ने इस वृत्ति को 'जैनेन्द्रव्याकरण' रूप महल के किवाड़ की उपमा दी है। वास्तव मे इस वृत्ति के आधर पर दूसरी टीकाओ का निर्माण हुआ है। यह वृत्ति[1] व्याकरणसूत्रो के अर्थ को विशद शैली मे स्फुट करने मे उपयोगी बन पाई है।

अभयनन्दि ने अपनी गुरु-परपरा या ग्रथ-रचना का समय नहीं दिया है तथापि वे ८-९ वीं शताब्दी मे हुए हैं ऐसा माना जाता है। डॉ० बेल्वेलकर ने अभयनदि का समय सन् ७५० बताया है[2], परन्तु यह ठीक नहीं है। अभयनदि के अन्य ग्रन्थो के विषय मे कुछ भी ज्ञात नहीं है।

शब्दाम्भोजभास्करन्यास :

दिगबराचार्य प्रभाचद्र (वि० ११ वीं शती) ने 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर 'शब्दाम्भोजभास्कर' नाम से न्यास-ग्रन्थ की रचना लगभग १६००० श्लोक-परिमाण

---

१. यह वृत्ति भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से प्रकाशित हुई है।
२. 'सिस्टम्स ऑफ ग्रामर' पैरा ५०.

मे की है। इस न्यास के अध्याय ४, पाद ३, सूत्र २११ तक की हस्तलिखित प्रतिया मिलती है, शेष ग्रन्थ अभी तक हस्तगत नहीं हुआ है। बम्बई के 'सरस्वती-भवन' मे इसकी दो अपूर्ण प्रतिया है। ग्रन्थकार ने सर्वप्रथम पूज्यपाद और अकलङ्क को नमस्कार करके न्यास-रचना का आरभ किया है। वे अपने न्यास के विषय में इस प्रकार कहते हैं :

शब्दानामनुशासनानि निखिलान्यध्यायताहर्निशं,
यो यः सारतरो विचारचतुरस्तल्लक्षणांशो गतः।
तं स्वीकृत्य तिलोत्तमेव विदुषा चेतश्चमत्कारक-
सुव्यक्तैरसमैः प्रसन्नवचनैर्न्यासः समारभ्यते॥ ४ ॥

इस आरम्भ-वचन से ही उनके व्याकरणविषयक अध्ययन और पाण्डित्य का पता लग जाता है। वे अपने समय के महान् टीकाकार और दार्शनिक विद्वान् थे। यह उनके ग्रन्थों को देखते हुए मालूम होता है। न्यास में उन्होंने दार्शनिक शैली अपनाई है और विषय का विवेचन स्फुटरीति से किया है।

आचार्य प्रभाचद्र धाराधीश भोजदेव और जयसिहदेव के राजकाल में विद्यमान थे ऐसा उनके ग्रन्थों की प्रशस्तियों और शिलालेख से भी स्पष्ट होता है।[1] एक जगह तो यह भी कहा है कि भोजदेव उनकी पूजा करता था। भोजदेव का समय वि० स० १०७० से ११११० माना जाता है, इससे इस न्यास-ग्रन्थ की रचना उसी के दरमियान मे हुई हो ऐसा कह सकते है। प० महेन्द्रकुमार ने न्यास-रचना का समय सन् ९८० से १०६५ बताया है।[2]

पञ्चवस्तु (जैनेन्द्रव्याकरण-वृत्ति) :

'पञ्चवस्तु' टीका (वि० स० ११४६) 'जैनेन्द्रव्याकरण' के प्राचीन सूत्रपाठ का प्रक्रिया-ग्रन्थ है। इसकी शैली सुबोध और सुदर है। यह ३३०० श्लोक-प्रमाण है। व्याकरण के प्रारंभिक अभ्यासियों के लिये यह ग्रन्थ बड़ा उपयोगी है।

---

१. श्रीधाराधिपभोजराजमुकुटप्रोताश्मरश्मिच्छटा-
छायाकुङ्कुमपङ्कलिप्तचरणाम्भोजातलक्ष्मीधव ।
न्यायाब्जाकरमण्डने दिनमणिश्शब्दाब्जरोदोमणि.
स्थेयात् पण्डितपुण्डरीकतरणि श्रीमान् प्रभाचन्द्रमा. ॥ १७ ॥
श्री चतुर्मुखदेवानां शिष्योऽधृष्य प्रवादिभि ।
पण्डितश्रीप्रभाचन्द्रो रुद्रवादिगजाङ्कुश. ॥ १८ ॥
—शिलालेख-सग्रह भा० १, पृ० ११८.

२ प्रमेयकमलमार्तण्ड—प्रस्तावना, पृ० ६७.

जैनेन्द्रव्याकरणरूपी महल मे प्रवेश के लिये 'पञ्चवस्तु' को सोपान-पक्ति स्वरूप बताया गया है।[१] इसकी दो हस्तलिखित प्रतिया पूना के भाडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट मे हैं।

यह ग्रन्थ किसने रचा, इसका हस्तलिखित प्रतियो के आदि-अत मे कोई निर्देश नहीं मिलता। केवल एक जगह सधि-प्रकरण में 'सधि त्रिधा कथयति श्रुतकीर्तिरार्यः' ऐसा लिखा है। इस उल्लेख से उसके कर्ता श्रुतकीर्ति आचार्य थे यह स्पष्ट होता है।

'नन्दीसघ की पट्टावली' में 'त्रैविद्य. श्रुतकीर्त्याख्यो वैयाकरणभास्कर.' इस प्रकार श्रुतकीर्ति को वैयाक...भास्कर बताया गया है।

श्रुतकीर्ति नामक अनेक आचार्य हुए हैं। उनमें से यह श्रुतकीर्ति कौन से हैं यह ढूढना मुश्किल है। कन्नड़ भाषा के 'चद्रप्रभचरित' के कर्ता अग्गल कवि ने श्रुतकीर्ति को अपना गुरु बताया है.

'इदु परमपुरुनाथकुलभूभृत्समुद्भूतप्रवचनसरित्सरिन्नाथश्रुतकीर्ति त्रैविद्यचक्रवर्तिपदपद्मनिधानदीपवर्तिश्रीमदग्गलदेवविरचिते चन्द्रप्रभचरिते।'

यह ग्रन्थ शक स० १०११ (वि० स० ११४६) मे रचा गया है। यदि आर्य श्रुतकीर्ति और श्रुतकीर्ति त्रैविद्यचक्रवर्ती एक ही हो तो 'पञ्चवस्तु' १२ वीं शताब्दी के प्रारभ मे रची गई है ऐसा मानना चाहिये।

लघु जैनेन्द्र (जैनेन्द्रव्याकरण-टीका):

दिगबर जैन पडित महाचन्द्र ने विक्रम की १२ वीं शताब्दी मे जैनेन्द्र-व्याकरण पर 'लघु जैनेन्द्र' नामक टीका की आचार्य अभयनन्दि की 'महावृत्ति' के आधार पर रचना की है।[२]

---

१ सूत्रस्तम्भसमुद्धृतं प्रविलसन्न्यासोरुरत्नक्षिति-
श्रीमद्वृत्तिकपाटसपुटयुतं भाष्योऽथ शय्यातलम्।
टीकामालमिहारुरुक्षुरचितं जैनेन्द्रशब्दागमं,
प्रासाद पृथुपञ्चवस्तुकमिदं सोपानमारोहवात्॥

२. महावृत्ति शुम्भत् सकलबुधपूज्यां सुखकरीं
विलोक्योद्यद्ज्ञानप्रभुविभयनन्दीप्रवहिताम्।
अनेकै. सच्छब्दैर्भ्रमविगतकैः सहढभूता (?)
प्रकुर्वेऽहं [टीकां] तनुमतिर्महाचन्द्रविबुध॥

इसकी एक प्रति अकलेश्वर दिगम्बर जैन मदिर मे और दूसरी अपूर्ण प्रति प्रतापगढ (मालवा) के पुराने जैन मदिर मे है।

शब्दार्णव (जैनेन्द्र-व्याकरण-परिवर्तित-सूत्रपाठ) :

आचार्य गुणनदि ने 'जैनेन्द्रव्याकरण' के मूल ३००० सूत्रपाठ को परिवर्तित और परिवर्धित करके व्याकरण को सर्वांगपूर्ण बनाने की कोशिश की है। इसका रचना-काल वि० स० १०३६ से पूर्व है।

शब्दार्णवप्रक्रिया के नाम से छपे हुए ग्रन्थ के अतिम श्लोक मे कहा है :

'सैषा श्रीगुणनन्दितानितवपुः शब्दार्णवे निर्णयं
नावत्या श्रयतां विविक्षुमनसां साक्षात् स्वयं प्रक्रिया ।'

अर्थात् गुणनदि ने जिसके शरीर को विस्तृत किया उस 'शब्दार्णव' मे प्रवेश करने के लिये यह प्रक्रिया साक्षात् नौका के समान है।

शब्दार्णवकार ने सूत्रपाठ के आधे से अधिक वे ही सूत्र रखे हैं, सज्ञाओ और सूत्रों मे अतर किया है। इससे अभयनदि के स्वीकृत सूत्रपाठ के साथ ३००० सूत्रो का भी मेल नहीं है।

यह सभव है कि इस सूत्रपाठ पर गुणनदि ने कोई वृत्ति रची हो परतु ऐसा कोई ग्रन्थ अद्यापि उपलब्ध नहीं हुआ है।

गुणनदि नामके अनेक आचार्य हुए है। एक गुणनदि का उल्लेख श्रवण बेल्गोल के ४२, ४३ और ४७ के शिलालेखो मे है। उसके अनुसार वे बलाकपिच्छ के शिष्य और गृध्रपृच्छ के प्रशिष्य थे। वे तर्क, व्याकरण और साहित्यशास्त्र के निपुण विद्वान् थे। उनके पास ३०० शास्त्र-पारगत शिष्य थे, जिनमे ७२ शिष्य तो सिद्धान्त के पारगामी थे। आदिपप के गुरु देवेन्द्र के भी वे गुरु थे।[1] 'कर्नाटक कविचरिते' के कर्ता ने उनका समय वि० स० ९५७ निश्चित किया है। यही गुणनदि आचार्य 'शब्दार्णव' के कर्ता हो ऐसा अनुमान है।

---

१. तच्छिष्यो गुणनन्दिपण्डितयतिश्चारित्रचक्रेश्वर·
तर्क-व्याकरणादिशास्त्रनिपुण· साहित्यविद्यापति ।
मिथ्यात्वादिमहान्धसिन्धुरघटासंघातकण्ठीरवो
भव्याम्भोजदिवाकरो विजयतां कन्दर्पदर्पापह· ॥

शब्दार्णवचन्द्रिका (जैनेन्द्रव्याकरणवृत्ति) :

दिगम्बर सोमदेव मुनि ने 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर आधारित आचार्य गुणनंदि के 'शब्दार्णव' सूत्रपाठ पर 'शब्दार्णवचन्द्रिका' नाम की एक विस्तृत टीका की रचना की थी। ग्रन्थकार ने स्वय बताया है :

'श्री सोमदेवयतिनिर्मितमादधाति या,
नौः प्रतीतगुणनन्दितशब्दवारिधौ।'

अर्थात् शब्दार्णव मे प्रवेश करने के लिये नौका के समान यह टीका सोमदेव मुनि ने बनाई है।

इसमे शाकटायन के प्रत्याहारसूत्र स्वीकार किये गये हैं। यही क्या, जैनेन्द्र का टीकासाहित्य शाकटायन की कृति से बहुत कुछ उपकृत हुआ पाया जाता है।

शब्दार्णवप्रक्रिया (जैनेन्द्रव्याकरण-टीका) :

यह ग्रन्थ (वि० स० ११८०) 'जैनेन्द्रप्रक्रिया' नाम से छपा है और प्रकाशक ने उसके कर्ता का नाम गुणनन्दि बताया है परंतु यह ठीक नहीं है। यद्यपि अन्तिम पद्यों मे गुणनन्दि का नाम है परन्तु यह तो उनकी प्रशसात्मक स्तुतिस्वरूप है :

'राजन्मृगाधिराजो गुणनन्दी भुवि चिरं जीयात्।'

ऐसी आत्मप्रशसा स्वय कर्ता अपने लिये नहीं कर सकता।

सोमदेव की 'शब्दार्णवचन्द्रिका' के आधार पर यह प्रक्रियाबद्ध टीका ग्रन्थ है।

तीसरे पद्य मे श्रुतकीर्ति का नाम इस प्रकार उल्लिखित है :

'सोऽयं यः श्रुतकीर्तिदेवयतिपो भट्टारकोत्तंसकः।
रंरम्यान्मम मानसे कविपतिः सद्राजहंसश्चिरम्॥'

यह श्रुतकीर्ति 'पञ्चवस्तु'कार श्रुतकीर्ति से भिन्न होंगे, क्योंकि इसमे श्रुतिकीर्ति को 'कविपति' बताया है। सम्भवतः श्रवण बेल्गोल के १०८वे शिलालेख मे जिस श्रुतकीर्ति का उल्लेख है वही ये होंगे ऐसा अनुमान है। इस श्रुतकीर्ति का

समय वि० स० ११८० बताया गया है।[1] इस श्रुतकीर्ति के किसी शिष्य ने यह प्रक्रिया ग्रन्थ बनाया।[2] पद्य में 'राजहंस' का उल्लेख है। क्या यह नाम कर्ता का तो नहीं है?

भगवद्वाग्वादिनी :

'कल्पसूत्र' की टीका में उपाध्याय विनयविजय और श्री लक्ष्मीवल्लभ ने निर्देश किया है कि 'भगवत्प्रणीत व्याकरण का नाम जैनेन्द्र है'। इसके अलावा कुछ नहीं कहा है। उससे भी बढ़कर रत्नर्षि नामक किसी मुनि ने 'भगवद्वाग्वादिनी' नामक ग्रन्थ की रचना लगभग वि० स० १७९७ में की है उसमें उन्होंने जैनेन्द्र-व्याकरण के कर्ता देवनंदि नहीं परन्तु साक्षात् भगवान् महावीर हैं ऐसा बताने का प्रयत्न जोरों से किया है।

'भगवद्वाग्वादिनी' में जैनेन्द्र-व्याकरण का 'शब्दार्णवचन्द्रिकाकार' द्वारा मान्य किया हुआ सूत्रपाठ मात्र है और ८०० श्लोक-प्रमाण है।[3]

जैनेन्द्रव्याकरण-वृत्ति :

'जैनेन्द्रव्याकरण' पर मेघविजय नामक किसी श्वेताम्बर मुनि ने वृत्ति[4] की रचना की है। ये हैमकौमुदी (चन्द्रप्रभा) व्याकरण के कर्ता ही हों तो इस वृत्ति की रचना १८वीं शताब्दी में हुई ऐसा मान सकते हैं।

अनिट्कारिकावचूरि :

'जैनेन्द्रव्याकरण' की अनिट्कारिका पर श्वेताम्बर जैन मुनि विजयविमल ने १७वीं शताब्दी में 'अवचूरि' की रचना की है[5]।

निम्नोक्त आधुनिक विद्वानों ने भी 'जैनेन्द्रव्याकरण' पर सरल प्रक्रिया वृत्तियाँ बनाई हैं :

---

१ 'सिस्टम्स ऑफ ग्रामर' पृ० ६७.
२. नाथूराम प्रेमी 'जैन साहित्य और इतिहास' पृ० ११५.
३. नाथूराम प्रेमी 'जैन साहित्य और इतिहास' परिशिष्ट, पृ० १२५.
४. इस वृत्ति-ग्रन्थ का उल्लेख 'राजस्थान के जैन शास्त्र-भंडारों की ग्रन्थसूची, भा० २ के पृ० २५७ में किया गया है। इसकी प्रति २६–४९ पत्रों की मिली है।
५. इसकी हस्तलिखित प्रति छाणी के भण्डार में (सं० ५७८) है।

प० वशीधरजी ने 'जैनेन्द्रप्रक्रिया', प० नेमिचन्द्रजी ने 'प्रक्रियावतार' और प० राजकुमारजी ने 'जैनेन्द्रलघुवृत्ति'।

शाकटायन-व्याकरण :

पाणिनि वगैरह ने जिन शाकटायन नामक वैयाकरणाचार्य का उल्लेख किया है वे पाणिनि के पूर्व काल मे हुए थे परतु जिनका 'शाकटायनव्याकरण' आज उपलब्ध है उन शाकटायन आचार्य का वास्तविक नाम तो है पाल्यकीर्ति और उनके व्याकरण का नाम है शब्दानुशासन। पाणिनिनिर्दिष्ट उस प्राचीन शाकटायन आचार्य की तरह पाल्यकीर्ति प्रसिद्ध वैयाकरण होने से उनका नाम भी शाकटायन और उनके व्याकरण नाम 'शाकटायनव्याकरण' प्रसिद्धि मे आ गया ऐसा लगता है।

पाल्यकीर्ति जैनों के यापनीय सघ के अग्रणी एव बड़े आचार्य थे। वे राजा अमोघवर्ष के राज्य-काल मे हुए थे। अमोघवर्ष शक स० ७३६ (वि० स० ८७१) मे राजगद्दी पर बैठा। उसी के आसपास मे यानी विक्रम की ९ वीं शती मे इस व्याकरण की रचना की गई है।

इस व्याकरण मे प्रकरण-विभाग नहीं है। पाणिनि की तरह विधान-क्रम का अनुसरण करके सूत्र-रचना की गई है।

यद्यपि प्रक्रिया-क्रम की रचना करने का प्रयत्न किया है परंतु ऐसा करने से क्लिष्टता और विप्रकीर्णता आ गई है। उनके प्रत्याहार पाणिनि से मिलते-जुलते होने पर भी कुछ भिन्न है। जैसे—'ऋलृक्' के स्थान पर केवल 'ऋक्' पाठ है, क्योकि 'ऋ' और 'लृ' मे अभेद स्वीकार किया गया है। 'हयवरट्' और 'लण्' को मिलाकर 'वेट' को हटा कर यहाँ एक सूत्र बनाया गया है तथा उपान्त्य सूत्र 'शषसर्' मे विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय का भी समावेश करके काम लिया है। सूत्रो की रचना बिल्कुल भिन्न ढग की है। इस पर कातत्र-व्याकरण का प्रचुर प्रभाव है। इसमे चार अध्याय है और यह १६ पादो मे विभक्त है।

यक्षवर्मा ने 'शाकटायनव्याकरण' की 'चिन्तामणि' टीका मे इस व्याकरण की विशेषता बताते हुए कहा है :

'इष्टिर्नेष्टा न वक्तव्यं वक्तव्यं सूत्रतः पृथक्।
संख्यानं नोपसंख्यानं यस्य शब्दानुशासने॥
इन्द्र-चन्द्रादिभिः शाब्दैर्यदुक्तं शब्दलक्षणम्।
तदिहास्ति समस्तं च यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्॥'

अर्थात् शाकटायनव्याकरण में 'इष्टियाँ' पढ़ने की जरूरत नहीं। सूत्रों से अलग वक्तव्य कुछ नहीं है। उपसंख्यानों की भी जरूरत नहीं है। इन्द्र, चन्द्र आदि वैयाकरणों ने जो शब्द लक्षण कहा वह सब इस व्याकरण में आ जाता है और जो यहाँ नहीं है वह कहीं भी नहीं मिलेगा।

इस वक्तव्य में अतिशयोक्ति होने पर भी पाल्यकीर्ति ने इस व्याकरण में अपने पूर्व के वैयाकरणों की कमियाँ सुधारने का प्रयत्न किया है और लौकिक पदों का अन्वाख्यान दिया है। व्याकरण के उदाहरणों से रचनाकालीन समय का ध्यान आता है। इस व्याकरण में आर्य वज्र, इन्द्र और सिद्धनंदि जैसे पूर्वाचार्यों का उल्लेख है।[2] प्रथम नाम से तो प्रसिद्ध आर्य वज्र स्वामी अभिप्रेत होंगे और बाद के दो नामों से यापनीय संघ के आचार्य।

इस व्याकरण पर बहुत सी वृत्तियों की रचना हुई है।

राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में पाल्यकीर्ति शाकटायन के साहित्य-विषयक मत का उल्लेख किया है[3], इससे उनका साहित्य विषयक कोई ग्रन्थ रहा होगा ऐसा लगता है परन्तु वह ग्रन्थ कौन सा था यह अभी तक ज्ञात नहीं हुआ है।

पाल्यकीर्ति के अन्य ग्रन्थ :

१. स्त्रीमुक्ति प्रकरण, २. केवलिभुक्ति-प्रकरण।

यापनीय संघ स्त्रीमुक्ति और केवलिभुक्ति के विषय में श्वेताम्बर सम्प्रदाय की मान्यता का अनुसरण करता है, और विषयों में दिगम्बरों के साथ मिलता जुलता है यह इन प्रकरणों से जाना जाता है।[4]

---

१. सूत्र और वार्तिक से जो सिद्ध न हो परन्तु भाष्यकार के प्रयोगों से सिद्ध हो उसको 'इष्टि' कहते हैं।

२ सूत्र १ २. १३, १. २. ३७ और २. १. २२९.

३ यथा तथा वाऽस्तु वस्तुनो रूपं वक्तृप्रकृतिविशेषायत्ता तु रसवत्ता। तथा च यमर्थं रक्तः स्तौति तं विरक्तो विनिन्दति मध्यस्थस्तु तत्रोदास्ते इति पाल्यकीर्तिः।

४. जैन साहित्य संशोधक भा० २ अंक ३–४ में ये प्रकरण प्रकाशित हुए हैं।

अमोघवृत्ति (शाकटायनव्याकरण-वृत्ति) :

'शाकटायनव्याकरण' पर लगभग अठारह हजार श्लोक परिमाण की 'अमोघवृत्ति' नाम से रचना उपलब्ध है। यह वृत्ति सब टीका-ग्रन्थो में प्राचीन और विस्तारयुक्त है। राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष को लक्ष्य करके इसका 'अमोघवृत्ति' नाम रखा गया प्रतीत होता है। रचना-समय वि० ९ वीं शती है।

वर्धमानसूरि ने अपने 'गणरत्नमहोदधि' (पृ० ८२, ९०) में शाकटायन के नाम से जो उल्लेख किये हैं वे सब 'अमोघवृत्ति' में मिलते हैं।

आचार्य मलयगिरि ने 'नदिसूत्र' की टीका में 'वीरममृतं ज्योतिः' इस मङ्गलाचरण पद्य को शाकटायन की स्वोपज्ञवृत्ति का बताया है, जो 'अमोघवृत्ति' मे मिलता है।

यक्षवर्मा ने शाकटायनव्याकरण की 'चिन्तामणि-टीका' के मगलाचरण मे शाकटायन-पाल्यकीर्ति के विषय में आदर व्यक्त करते हुए 'अमोघवृत्ति' के 'तस्यातिमहतीं वृत्तिम्' इस उल्लेख से स्वोपज्ञ होने की सूचना दी है यह प्रतीत होता है। सर्वानन्द ने 'अमरटीकासर्वस्व' में अमोघवृत्ति से पाल्यकीर्ति के नाम के साथ उद्धरण दिया है।

इन उल्लेखो से स्पष्ट है कि 'अमोघवृत्ति' के कर्ता शाकटायनाचार्य पाल्यकीर्ति स्वय हैं।

यक्षवर्मा ने इस वृत्ति की विशेषता बताते हुए कहा है :

'गण-धातुपाठयोगेन धातून् लिङ्गानुशासने लिङ्गगतम्।
औणादिकानुणादौ शेषं निःशेषमत्र वृत्तौ विद्यात्॥ ११॥'

अर्थात् गणपाठ, धातुपाठ, लिङ्गानुशासन और उणादि के सिवाय इस वृत्ति मे सब विषय वर्णित हैं।

इससे इस वृत्ति की कितनी उपयोगिता है, इसका अनुमान हो सकता है। यह वृत्ति अभी तक अप्रकाशित है।

इस व्याकरण-ग्रन्थ मे गणपाठ, धातुपाठ, लिंगानुशासन, उणादि वगैरह नि.शेष प्रकरण हैं। इस निःशेष विशेषण द्वारा सम्भवतः अनेकशेष जैनेन्द्र-व्याकरण की अपूर्णता की ओर संकेत किया हो ऐसा लगता है।

वृत्ति मे 'अदहदमोघवर्षोऽरातीन्' ऐसा उदाहरण है, जो अमोघवर्ष राजा का ही निर्देश करता है। अमोघवर्ष का राज्यकाल शक सं० ७३६ से ७८९ है, इसी के मध्य इसकी रचना हुई है।

चिन्तामणि-शाकटायनव्याकरण-वृत्ति :

यक्षवर्मा नामक विद्वान् ने 'अमोघवृत्ति' के आधार पर ६००० श्लोक-परिमाण की एक छोटी सी वृत्ति की रचना की है। वे साधु थे या गृहस्थ और वे कब हुए इस सम्बन्ध मे तथा उनके अन्य ग्रन्थो के विषय मे भी कुछ जानने को नहीं मिलता। उन्होने अपनी वृत्ति के विषय मे कहा है :

'तस्यातिमहतीं वृत्ति संहृत्येयं लघीयसी।
सपूर्णलक्षणा वृत्तिर्वक्ष्यते यक्षवर्मणा॥
बालाऽबलाजनोऽप्यस्या वृत्तेरभ्यासवृत्तितः।
समस्तं वाङ्मयं वेत्ति वर्षेणैकेन निश्चयात्॥'

अर्थात् अमोघवृत्ति नामक बड़ी वृत्ति मे से सक्षेप करके यह छोटी सी परन्तु संपूर्ण लक्षणो से युक्त वृत्ति यक्षवर्मा कहता है। बालक और स्त्री-जन भी इस वृत्ति के अभ्यास से एक वर्ष मे निश्चय ही समस्त वाङ्मय के जानकार बनते हैं।

यह वृत्ति कैसी है इसका अनुमान इससे हो जाता है।

समन्तभद्र ने इस टीका के विषम पदो पर टिप्पण लिखा है, जिसका उल्लेख 'माधवीय-धातुवृत्ति' मे आता है।

मणिप्रकाशिका (शाकटायनव्याकरणवृत्ति-चिन्तामणि-टीका) :

'मणि' याने चिन्तामणिटीका, जो यक्षवर्मा ने रची है, उस पर अजितसेनाचार्य ने वृत्ति की रचना की है। अजितसेन नाम के बहुत से विद्वान् हो गये है। यह रचना कौन से अजितसेन ने किस समय मे की है इस सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञातव्य प्राप्त नहीं हुआ है।

प्रक्रियासंग्रह :

पाणिनीय व्याकरण को 'सिद्धान्तकौमुदी' के रचयिता ने जिस प्रकार प्रक्रिया मे रखने का प्रयत्न किया उसी प्रकार अभयचन्द्र नामक आचार्य ने 'शाकटायन

व्याकरण' को प्रक्रियाबद्ध' किया है। अभयचन्द्र के समय, गुरु शिष्य आदि परपरा और उनकी अन्य रचनाओं के बारे मे कुछ भी ज्ञात नहीं है।

शाकटायन-टीका :

यह ग्रन्थ प्रक्रियाबद्ध है, जिसके कर्ता 'वादिपर्वतवज्र' इस उपनाम से विख्यात भावसेन त्रैविद्य हैं। इन्होंने कातन्त्ररूपमाला-टीका और विश्वतत्त्वप्रकाश ग्रन्थ लिखे हैं।

रूपसिद्धि (शाकटायनव्याकरण-टीका) :

द्रविडसघ के आचार्य मुनि दयापाल ने 'शाकटायन-व्याकरण' पर एक छोटी-सी टीका बनायी है। श्रवणबेल्गोल के ५४ वे शिलालेख मे इनके विषय में इस प्रकार कहा गया है :

'हितैषिणां यस्य नृणामुदात्तवाचा निबद्धा हितरूपसिद्धिः।
वन्द्यो दयापालमुनिः स वाचा, सिद्धः सतां मूर्द्धनि यः प्रभावैः ॥१५॥'

दयापाल मुनि के गुरु का नाम मतिसागर था। वे 'न्यायविनिश्चय' और 'पार्श्वनाथचरित' के कर्ता वादिराज के सधर्मा थे। 'पार्श्वनाथचरित' की रचना शक स० ९४७ (वि० स० १०८२) मे हुई थी। इससे दयापाल मुनि का समय भी इसी के आस-पास मानना चाहिए।

यह टीका-ग्रथ प्रकाशित है। मुनि दयापाल के अन्य ग्रथो के विषय मे कु भी ज्ञात नहीं है।

गणरत्नमहोदधि :

श्वेताम्बराचार्य गोविन्दसूरि के शिष्य वर्धमानसूरि ने 'शाकटायनव्याकरण' मे जो गण आते है उनका सग्रह कर 'गणरत्नमहोदधि'[2] नामक ४२०० श्लोक-परिमाण स्वोपज्ञ टीकायुक्त उपयोगी ग्रन्थ की वि० स० ११९७ मे रचना की है। इसमे नामों के गणो को श्लोकबद्ध करके गण के प्रत्येक पद की व्याख्या और उदाहरण दिये हैं। इसमे अनेक वैयाकरणो के मतो का उल्लेख किया गया है

---

१. यह कृति गुस्टव आपर्ट ने सन् १८९३ मे प्रकाशित की है। उसमें उन्होंने शाकटायन को 'प्राचीन शाकटायन' मानने की भूल की है। सन् १९०७ में बम्बई के जेष्ठाराम मुकुन्दजी ने इसका प्रकाशन किया है।

२ यह ग्रथ सन् १८७९–८१ में प्रकाशित हुआ है।

परन्तु समकालीन आचार्य हेमचन्द्रसूरि का उल्लेख नहीं है। वैसे आचार्य हेमचन्द्र-सूरि ने भी इनका कहीं उल्लेख नहीं किया है। कई कवियों के नाम और कई स्थलों में कर्ता के नाम के बिना कृतियों के नाम का उल्लेख किया है।

इस ग्रन्थ से कई नवीन तथ्य जानने को मिलते हैं। जैसे—'भट्टिकाव्य' और 'द्वयाश्रयमहाकाव्य' की तरह मालवा के परमार राजाओं सबंधी कोई काव्य था, जिसका नाम उन्होंने नहीं दिया परन्तु उस काव्य के कई श्लोक उद्धृत किये हैं।

आचार्य सागरचन्द्रसूरिकृत सिद्धराजसम्बन्धी कई श्लोक भी इसमें उद्धृत किये है, इससे यह ज्ञात होता है कि उन्होंने सिद्धराज सम्बन्धी कोई काव्य-रचना की थी, जो आज तक उपलब्ध नहीं हुई है।

स्वयं वर्धमानसूरि ने अपने 'सिद्धराजवर्णन' नामक ग्रन्थ का 'ममैव सिद्धराजवर्णने' ऐसा लिखकर उल्लेख किया है। इससे मालूम होता है कि उनका 'सिद्धराजवर्णन' नामक कोई ग्रंथ था जो आज मिलता नहीं है।

लिंगानुशासन :

आचार्य पाल्यकीर्ति–शाकटायनाचार्य ने 'लिंगानुशासन' नाम की कृति की रचना की है। इसकी हस्तलिखित प्रति मिलती है। यह आर्या छन्द में रचित ७० पद्यों में है। रचना-समय ९ वीं शती है।

धातुपाठ :

आचार्य पाल्यकीर्ति–शाकटायनाचार्य ने 'धातुपाठ' की रचना की है। पं० गौरीलाल जैन ने वीर-संवत् २४३७ में इसे छपाया है। यह भी ९ वीं शती का ग्रन्थ है।

मंगलाचरण में 'जिन' को नमस्कार करके 'एधि वृद्धौ स्पर्धि संघर्षे' से प्रारम्भ किया है। इसमें १३१७ (१२८०+३७) धातु अर्थसहित दिये हैं। अन्त में दिये गये सौत्रकण्डवादि ३७ धातुओं को छोड कर ११ गणों में विभक्त किये हैं। ३६ धातुओं का 'विकल्पणिजन्त' और चुरादि वगैरह का 'नित्यणिजन्त' धातु से परिचय करवाया है।

पञ्चग्रन्थी या बुद्धिसागर-व्याकरण :

'पञ्चग्रन्थी-व्याकरण' का दूसरा नाम है 'बुद्धिसागर व्याकरण' और 'शब्द-लक्ष्म'। इस व्याकरण की रचना श्वेताम्बराचार्य बुद्धिसागरसूरि ने वि० स० १०८० मे की है।[1] ये आचार्य वर्धमानसूरि के शिष्य थे।

ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ की रचना करने का कारण बताते हुए कहा है कि 'जब ब्राह्मणो ने आक्षेप करते हुए कहा कि जैनो मे शब्दलक्ष्म और प्रमालक्ष्म है ही कहाँ ? वे तो परग्रथोपजीवी है।'[2] तब बुद्धिसागरसूरि ने इस आक्षेप का जवाब देने के लिये ही इस ग्रथ की रचना की।

श्वेताबर आचार्यों मे उपलब्ध सर्वप्रथम व्याकरणग्रन्थ की रचना करनेवाले यही आचार्य है। इन्होने गद्य और पद्यमय ७००० श्लोक-प्रमाण इस ग्रथ की रचना की है।[3]

इस व्याकरण का उल्लेख स० १०९५ मे धनेश्वरसूरिरचित सुरसुन्दरीकथा की प्रशस्ति मे आता है। इसके सिवाय स० ११२० में अभयदेवसूरिकृत पञ्चाशक-वृत्ति (प्रशस्ति श्लो० ३) मे, स० ११३९ मे गुणचन्द्ररचित महावीरचरित (प्राकृत–प्रस्ताव ८, श्लो० ५३) मे, जिनदत्तसूरिरचित गणधरसार्धशतक (पद्य ६९) मे, पद्मप्रभकृत कुन्थुनाथचरित और प्रभावकचरित (अभयदेवसूरि-चरित) मे भी इस ग्रथ का नामोल्लेख आता है।

---

१ श्रीविक्रमादित्यनरेन्द्रकालात् साशीतिके याति समासहस्रे।
सश्रीकजावालिपुरे तदाद्य दृब्ध मया सप्तसहस्रकल्पम् ॥
—व्याकरणप्रान्तप्रशस्ति।

२ तैरवधीरिते यत् तु प्रवृत्तिरावयोरिह।
तत्र दुर्जनवाक्यानि प्रवृत्तेः सन्निबन्धनम् ॥ ४०३ ॥
शब्दलक्ष्म-प्रमालक्ष्म यदेतेषा न विद्यते।
नादिमन्तस्ततो ह्येते परलक्ष्मोपजीविन ॥ ४०४ ॥
—प्रमालक्ष्मप्रांते।

३ इस व्याकरण की हस्तलिखित प्रति जैसलमेर-भडार मे है। प्रति अत्यन्त अशुद्ध है।

इसकी रचना अनेक व्याकरण-ग्रंथो के आधार पर की गई है। धातुपाठ, सूत्रपाठ, गणपाठ, उणादिसूत्र पद्यबद्ध है।'

दीपकव्याकरण :

श्वेतांबर जैनाचार्य भद्रेश्वरसूरिरचित 'दीपकव्याकरण' का उल्लेख 'गणरत्न महोदधि' मे वर्धमानसूरि ने इस प्रकार किया है—'मेधाविन प्रवरदीपक कर्तृयुक्ता।' उसकी व्याख्या मे वे लिखते है :

'दीपककर्ता भद्रेश्वरसूरिः। प्रवरश्चासौ दीपककर्त्ता च प्रवरदीपक-कर्ता। प्राधान्यं चास्याधुनिकवैयाकरणापेक्षया।'

दूसरा उल्लेख इस प्रकार है :

'भद्रेश्वराचार्यस्तु'—

'किञ्च स्वा दुर्भगा कान्ता रक्षान्ता निश्चिता समा।
सचिवा चपला भक्तिर्बाल्येति स्वादयो दश॥
इति स्वादौ वेत्यनेन विकल्पेन पुंवद्भाव मन्यन्ते॥'

इस उल्लेख से ज्ञात होता है कि उन्होने 'लिङ्गानुशासन' की भी रचना की थी। सायणरचित 'धातुवृत्ति' मे श्रीभद्र के नाम से व्याकरण विषयक मत के अनेक उल्लेख हैं, सभवत. वे भद्रेश्वरसूरि के 'दीपकव्याकरण' के होगे। श्रीभद्र (भद्रेश्वरसूरि) ने अपने 'धातुपाठ' पर वृत्ति की रचना भी की है ऐसा सायण के उल्लेख से मालम पड़ता है।

'कहावली' के कर्ता भद्रेश्वरसूरि ने यदि 'दीपकव्याकरण' की रचना की हो तो वे १३ वीं शताब्दी मे हुए थे ऐसा निर्णय कर सकते हैं और दूसरे भद्रेश्वरसूरि जो बालचन्द्रसूरि की गुरुपरपरा मे हुए वे १२ वीं शताब्दी मे हुए थे।

शब्दानुशासन (मुष्टिव्याकरण) :

आचार्य मलयगिरिसूरि ने सख्याबद्ध आगम, प्रकरण और ग्रन्थो पर व्याख्याओं की रचना करके आगमिक और दार्शनिक सैद्धान्तिक तौर पर ख्याति प्राप्त की है परन्तु उनका यदि कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ हो तो वह सिर्फ स्वोपज्ञ वृत्ति

---

१. श्री बुद्धिसागराचार्यैः पाणिनि-चन्द्र-जैनेन्द्र-विश्रान्त-दुर्गटीकामवलोक्य वृत्तबन्धैः (?)। धातुसूत्र-गणोणादिवृत्तबन्धैः कृत व्याकरण संस्कृतशब्द-प्राकृतशब्दसिद्धये॥—प्रमालक्ष्मप्रान्ते।

युक्त 'शब्दानुशासन' व्याकरण ग्रन्थ है। इसे 'मुष्टिव्याकरण' भी कहते है। स्वोपज्ञ टीका के साथ यह ४३०० श्लोक-परिमाण है।

विक्रमीय १३ वीं शताब्दी मे विद्यमान आचार्य मलयगिरि हेमचन्द्रसूरि के सहचर थे। इतना ही नहीं, 'आवश्यक-वृत्ति' पृ० ११ में 'तथा चाहु· स्तुतिषु गुरवः' इस प्रकार निर्देश कर गुरु के तौर पर उनका सम्मान किया है। आचार्य हेमचन्द्रसूरि के व्याकरण की रचना होने के तुरन्त बाद मे ही उन्होने अपने व्याकरण की रचना की ऐसा प्रतीत होता है और 'शाकटायन' एव 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' को ही केन्द्रबिन्दु बनाकर अपनी रचना की है, क्योकि 'शाकटायन' और 'सिद्धहेम' के साथ उसका खूब साम्य है। मलयगिरि ने अपने व्याख्या-ग्रन्थो मे अपने ही व्याकरण के सूत्रो से शब्द-प्रयोगों की सिद्धि बताई है।

मलयगिरि ने अपने व्याकरण की रचना कुमारपाल के राज्यकाल में की है ऐसा उसकी कृदवृत्ति के पा० ३ में 'ख्याते दृश्ये' (२२) इस सूत्र के उदाहरण में 'अदहदरातीन् कुमारपाल.' ऐसा लिखा है इससे भी अनुमान होता है।

आचार्य क्षेमकीर्तिसूरि ने 'बृहत्कल्प' की टीका की उत्थानिका मे 'शब्दानुशासनादिविश्वविद्यामयज्योति.पुञ्जपरमाणुघटितमूर्तिभि.' ऐसा उल्लेख मलयगिरि के व्याकरण के सम्बन्ध मे किया है, इससे प्रतीत होता है कि विद्वानो मे इस व्याकरण का उचित समादर था।

'जैन ग्रन्थावली' पृ० २९८ मे, इस पर 'विषमपद-विवरण' टीका भी है जो अहमदाबाद के किसी भडार मे थी, ऐसा उल्लेख है।

इस व्याकरण की जो हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती है वे पूर्ण नहीं है। इन प्रतियो मे चतुष्कवृत्ति, आख्यातवृत्ति और कृदवृत्ति इस प्रकार सब मिलाकर १२ अध्यायो मे ३० पादो का समावेश है परन्तु तद्धितवृत्ति, जो १८ पादो मे है, नहीं मिलती।[१]

---

१. यह व्याकरण-ग्रन्थ अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर की ओर से प्राध्यापक प० बेचरदास दोशी के संपादन मे प्रकाशित हो गया है।

शब्दार्णवव्याकरण :

खरतरगच्छीय वाचक रत्नसार के शिष्य सहजकीर्तिगणि ने 'शब्दार्णव-व्याकरण' की स्वतन्त्ररूप से रचना वि० सं० १६८० के आसपास की है। इस व्याकरण में १. संज्ञा, २. श्लेष (सन्धि), ३. शब्द (स्यादि), ४. षत्व-णत्व, ५. कारकसंग्रह, ६. समास, ७. स्त्री-प्रत्यय, ८. तद्धित, ९. कृत् और १०. धातु—ये दस अधिकार हैं।[1] अनेक व्याकरण ग्रंथों को देखकर उन्होंने अपना व्याकरण सरल शैली में निर्माण किया है।

साहित्यक्षेत्र में अपने ग्रन्थ का मूल्यांकन करते हुए उन्होंने अपनी लघुता का परिचय प्रशस्ति में इस प्रकार दिया है :

'शब्दानुशासन की रचना कष्टसाध्य है। इस रचना में नवीनता नहीं है'—ऐसा मात्सर्यवचन प्रमोदशील और गुणी वैयाकरणों को अपने मुख से नहीं कहना चाहिए। ऐसे शास्त्रों में जिन विद्वानों ने परिश्रम किया है वे ही मेरे श्रम को समझ सकेंगे। मैं कोई विद्वान् नहीं हूँ, मेरी चर्चा में विशेषता नहीं है, मुझ में ऐसी बुद्धि भी नहीं, फिर भी पार्श्वनाथ भगवान् के प्रभाव से ही इस ग्रंथ का निर्माण किया है।[2]

---

१. संज्ञा श्लेष शब्दाः षत्व-णत्वे कारकसंग्रह।
समासः स्त्रीप्रत्ययश्च तद्धिताः कृच्च धातवः॥
दशाधिकारा एतेऽत्र व्याकरणे यथाक्रमम्।
साङ्गाः सर्वत्र विज्ञेयाः यथाशास्त्रं प्रकाशिताः॥

२ कष्टास्माभिरियं रीतिः प्रायः शब्दानुशासने॥
नवीनं न किमप्यत्र कृतं मात्सर्यवागियम्।
अमत्सरैः शब्दविद्भिः न वाच्या गुणसग्रहैः॥
एतादृशानां शास्त्राणां विधाने यः परिश्रमः।
स एव हि जानाति यः करोति सुधीः स्वयम्॥
नाहं कृती नो विवादे आधिक्यं मम मतिर्न च।
केवलः पार्श्वनाथस्य प्रभावोऽयं प्रकाशते॥

शब्दार्णव वृत्ति :

इस 'शब्दार्णव-व्याकरण' पर सहजकीर्तिगणि[1] ने 'मनोरमा' नामक स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है। उपर्युक्त दस अधिकारों मे १. सज्ञाकरण, २. शब्दो की साधना, ३ सूत्रों की रचना और ४. दृष्टान्त—इन चार प्रकारो से अपनी रचना-शैली का वृत्ति में निर्वाह किया है। इन्होने सभी सूत्रो में पाणिनि अष्टाध्यायी की 'काशिकावृत्ति' और अन्य वृत्तियो का आधार लिया है। वृत्ति के साथ समग्र व्याकरणग्रथ १७००० श्लोक प्रमाण है।

इस ग्रथ की ३७३ पत्रो की एक प्रति खभात के श्री विजयनेमिसूरि ज्ञान-भंडार (स० ४६८) मे है। यह ग्रथ प्रकाशन के योग्य है।

विद्यानन्दव्याकरण :

तपागच्छीय आचार्य देवेन्द्रसूरि के शिष्य विद्यानन्दसूरि ने 'बुद्धिसागर' की तरह अपने नाम पर ही 'विद्यानन्दव्याकरण' की रचना वि० स० १३१२ मे की है।[2] यह व्याकरणग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

खरतरगच्छीय जिनेश्वरसूरि के शिष्य चन्द्रतिलक उपाध्याय ने जिनपतिसूरि के शिष्य सुरप्रभ के पास इस 'विद्यानन्दव्याकरण' का अध्ययन किया था।[3]

आचार्य मुनिसुन्दरसूरि ने 'गुर्वावली' मे कहा है कि 'इस व्याकरण मे सूत्र कम है परन्तु अर्थ बहुत है इसलिये यह व्याकरण सर्वोत्तम जान पड़ता है।'[4]

नूतनव्याकरण :

कृष्णर्षिगच्छ के महेन्द्रसूरि के शिष्य जयसिंहसूरि ने वि० स० १४४० के आसपास 'नूतनव्याकरण' की रचना की है। यह व्याकरण स्वतत्र है या 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के आधार पर इसकी रचना की गई है, यह स्पष्टीकरण नहीं हुआ है।

---

१. इन्होने 'फलवर्द्धिपार्श्वनाथ-महाकाव्य' की रचना ३०० विविध छदमय श्लोको में की है। इसकी हस्तलिखित प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद में है।

२. विद्यानन्दसूरि के जीवन के बारे में देखिए—'गुर्वावली' पद्य १५२-१७२.

३. उपाध्याय चन्द्रतिलकगणि ने स्वरचित 'अभयकुमार-महाकाव्य' की प्रशस्ति मे यह उल्लेख किया है।

४. देखिये—'गुर्वावली' पद्य १७१.

जयसिंहसूरि के शिष्य नयचन्द्रसूरि ने 'हम्मीरमदमर्दन-महाकाव्य' की रचना की है। इन्होंने उसके सर्ग १४, पद्य २३-२४ में उल्लेख किया है कि जयसिंहसूरि ने 'कुमारपालचरित्र' तथा भासर्वज्ञकृत 'न्यायसार' पर 'न्यायतात्पर्यदीपिका' नाम की वृत्ति की रचना की है। इन्होंने 'शार्ङ्गधरपद्धति' के रचयिता सारंग पडित को शास्त्रार्थ मे हराया था।

प्रेमलाभव्याकरण :

अञ्चलगच्छीय मुनि प्रेमलाभ ने इस व्याकरण की रचना वि० स० १२८३ में की है। बुद्धिसागर की तरह रचयिता के नाम पर इस व्याकरण का नाम रख दिया गया है। यह 'सिद्धहेम' या किसी और व्याकरण के आधार पर नहीं है बल्कि स्वतन्त्र रचना है।

शब्दभूषणव्याकरण :

तपागच्छीय आचार्य विजयराजसूरि के शिष्य दानविजय ने 'शब्दभूषण' नामक व्याकरण ग्रथ की रचना वि० स० १७७० के आसपास में गुजरात में विख्यात शेख फते के पुत्र बड़ेमियाँ के लिये की थी। यह व्याकरण स्वतन्त्र कृति है या 'सिद्धहेम' व्याकरण का रूपान्तर है, यह ज्ञात नहीं हो सका है। यह ग्रन्थ पद्य में ३०० श्लोक प्रमाण है, ऐसा 'जैन ग्रन्थावली' (पृ० २९८) में निर्देश है।

मुनि दानविजय ने अपने शिष्य दर्शनविजय के लिये 'पर्युषणाकल्प' पर 'दानदीपिका' नामक वृत्ति स० १७५७ में रची थी।

प्रयोगमुखव्याकरण :

'प्रयोगमुखव्याकरण' नामक ग्रथ की ३४ पत्रों की प्रति जैसलमेर के भडार में है। कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है।

सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन :

गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह की विनती से श्वेताबर जैनाचार्य कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि ने सिद्धराज के नाम के साथ अपना नाम जोड़ कर वि० स० ११४५ के आस-पास मे 'सिद्धहेमचन्द्र' नामक शब्दानुशासन की कुल सवा लाख श्लोक-प्रमाण रचना की है। इस व्याकरण की छोटी-बड़ी वृत्तियाँ और उणादिपाठ, गणपाठ, धातुपाठ तथा लिंगानुशासन भी उन्होंने स्वय लिखे है।

ग्रन्थकर्ता ने अपने पूर्व के व्याकरणों में रही हुई त्रुटियाँ, विशृङ्खलता, क्लिष्टता, विस्तार, दूरान्वय, वैदिक प्रयोग आदि से रहित, निर्दोष और सरल व्याकरण की रचना की है। इसमे सात अध्याय सस्कृत भाषा के लिये हैं तथा आठवाँ अध्याय प्राकृत भाषा के लिये है। प्रत्येक अध्याय में चार पाद हैं। कुल मिलाकर ४६८५ सूत्र हैं। उणादिगण के १००६ सूत्र मिलाते हुए सूत्रो की कुल सख्या ५६९१ है। सस्कृत भाषा से सम्बन्धित ३५६६ और प्राकृत भाषा से सम्बन्धित १११९ सूत्र हैं।

इस व्याकरण के सूत्रो मे लाघव, इसकी लघुवृत्ति मे उपयुक्त सूचन, बृहद्-वृत्ति मे विषय-विस्तार और बृहन्न्यास में चर्चाबाहुल्य की मर्यादाओं से यह व्याकरणग्रन्थ अलकृत है। इन सब प्रकार की टीकाओ और पचागी से सर्वांग-पूर्ण व्याकरणग्रन्थ श्री हेमचन्द्रसूरि के सिवाय और किसी एक ही ग्रन्थकार ने निर्माण किया हो ऐसा समग्र भारतीय साहित्य मे देखने मे नहीं आता। इस व्याकरण की रचना इतनी आकर्षक है कि इस पर लगभग ६२-६३ टीकाएँ, सक्षिप्त तथा सहायक ग्रन्थ एव स्वतन्त्र रचनाएँ उपलब्ध होती हैं।

श्री हेमचन्द्राचार्य की सूत्र-सकलना दूसरे व्याकरणो से सरल और विशिष्ट प्रकार की है। उन्होने सज्ञा, सधि, स्यादि, कारक, षत्व णत्व, स्त्री-प्रत्यय, समास, आख्यात, कृदन्त और तद्धित—इस प्रकार विषयक्रम से रचना की है और सज्ञाएँ सरल बनाई हैं।

श्री हेमचन्द्राचार्य का दृष्टिकोण शैक्षणिक था, इससे उन्होंने पूर्वाचार्यों की रचनाओ का इस सूत्र-सयोजना मे सुन्दरता से उपयोग किया है। वे विशेषरूप से शाकटायन के ऋणी हैं। जहाँ उनके सूत्रो से काम चला वहाँ वे ही सूत्र कायम रखे, पर जहाँ कहीं त्रुटि देखने मे आई वहाँ उन्हे बदल दिया और उन सूत्रो को सर्वग्राही बनाने की भरसक कोशिश की। इसीलिये तो उन्होने आत्मविश्वास से कहा है कि—'आकुमार यशः शाकटायनस्य'—अर्थात् शाकटायन का यश कुमारपाल तक ही रहा, 'चूँकि तब तक 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' न रचा गया था और न प्रचार मे आया था।

श्री हेमचन्द्राचार्यविरचित अनेक विषयो से सम्बद्ध ग्रन्थ निम्नलिखित है:

व्याकरण और उसके अंग

नाम	श्लोक-प्रमाण
१. सिद्धहेम-लघुवृत्ति	६०००
२. सिद्धहेम-बृहद्वृत्ति (तत्त्वप्रकाशिका)	१८०००

३. सिद्धहेम-बृहन्न्यास (शब्दमहार्णवन्यास) (अपूर्ण) ८४०००
४. सिद्धहेम-प्राकृतवृत्ति २२००
५. लिङ्गानुशासन-सटीक ३६८४
६. उणादिगण-विवरण ३२५०
७. धातुपारायण-विवरण ५६००

कोश

८ अभिधानचिन्तामणि-स्वोपज्ञ टीकासहित १००००
९ अभिधानचिन्तामणि-परिशिष्ट २०४
१० अनेकार्थकोश १८२८
११. निघण्टुशेष (वनस्पतिविषयक) ३९६
१२. देशीनाममाला-स्वोपज्ञ टीकासहित ३५००

साहित्य-अलंकार

१३ काव्यानुशासन-स्वोपज्ञ अलङ्कारचूडामणि और विवेक वृत्तिसहित ६८००

छन्द

१४. छन्दोनुशासन-छन्दश्चूडामणि टीकासहित ३०००

दर्शन

१५. प्रमाणमीमांसा-स्वोपज्ञवृत्तिसहित (अपूर्ण) २५००
१६. वेदांकुश (द्विजवदनचपेटा) १०००

इतिहासकाव्य-व्याकरणसहित

१७. संस्कृत द्वयाश्रयमहाकाव्य २८२८
१८. प्राकृत द्वयाश्रयमहाकाव्य १५००

इतिहासकाव्य और उपदेश

१९ त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित (महाकाव्य-दशपर्व) ३२०००
२० परिशिष्टपर्व ३५००

योग

२१ योगशास्त्र-स्वोपज्ञ टीकासहित १२५७०

स्तुति-स्तोत्र

अन्य कृतियाँ

मध्यमवृत्ति (सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन की टीका)
रहस्यवृत्ति   ,,   ,,   ,,
अर्हन्नामसमुच्चय
अर्हन्नीति
नाभेय नेमिद्विसंधानकाव्य
न्यायबलाबलसूत्र
बलाबलसूत्र बृहद्वृत्ति
बालभाषाव्याकरणसूत्रवृत्ति

इनमें से कुछ कृतियों के विषय में संदेह है।

स्वोपज्ञ लघुवृत्ति :

'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' की विशद किन्तु संक्षेप में स्पष्टीकरण करने-वाली यह टीका स्वयं हेमचन्द्रसूरि ने रची है, जिसको 'लघुवृत्ति' कहते हैं। अध्याय १ से ७ तक की इस वृत्ति का श्लोक-परिमाण ६००० है, इसलिये उसको 'छः हजारी' भी कहते हैं। ८ वें अध्याय पर लघुवृत्ति नहीं है। इसमें गणपाठ, उणादि आदि नहीं हैं।

स्वोपज्ञ मध्यमवृत्ति (लघुवृत्ति-अवचूरिपरिष्कार) :

अध्याय प्रथम से अध्याय सप्तम तक ८००० श्लोक-परिमाण 'मध्यमवृत्ति'[1] की स्वयं हेमचन्द्रसूरि ने रचना की है ऐसा कुछ विद्वानों का मन्तव्य है।

रहस्यवृत्ति :

'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' पर 'रहस्यवृत्ति' भी स्वयं हेमचन्द्रसूरि ने रची है, ऐसा माना जाता है। इसमें सब सूत्र नहीं हैं। प्रायः २५००

---

१. 'श्री लब्धिसूरीश्वर जैन ग्रन्थमाला' छाणी की ओर से इसकी चतुष्कवृत्ति (पृ० १–२४८ तक) प्रकाशित हुई है।

श्लोकात्मक इस वृत्ति में दो स्थलों में 'स्वोपज्ञ' शब्द का उल्लेख होने से यह वृत्ति स्वोपज्ञ मानी जाती है।[1]

बृहद्वृत्ति (तत्त्वप्रकाशिका) :

'सि० श०' पर 'तत्त्वप्रकाशिका' नाम की बृहद्वृत्ति का स्वय हेमचन्द्रसूरि ने निर्माण किया है। यह १८००० श्लोकपरिमाण है इसलिये इसको 'अठारह हजारी' भी कहते हैं। यह १ अध्याय से ८ अध्याय तक है। कई विद्वान् ८ वें अध्याय की वृत्ति को 'लघुवृत्ति' के अन्तर्गत गिनते हैं। इस विषय में ग्रन्थकार ने कोई स्पष्टीकरण नहीं किया है। इस वृत्ति में 'अमोघवृत्ति' का भी आधार लिया गया है। गणपाठ, उणादि वगैरह इसमें हैं।[2]

बृहन्न्यास (शब्दमहार्णवन्यास) :

'सि० श०' की बृहद्वृत्ति पर 'शब्दमहार्णवन्यास' नाम से बृहन्न्यास की रचना ८४००० श्लोक-परिमाण में स्वय हेमचन्द्रसूरि ने की है। वाद और प्रतिवाद उपस्थित करके अपने विधान को स्थिर करना, उसे यहाँ 'न्यास' कहते हैं। इसमें कई प्राचीन वैयाकरणों के मतों का उल्लेख किया गया है। पतञ्जलि का 'शेषं नि शेषकर्तारम्' इस वाक्य से बड़े आदर के साथ स्मरण किया है। दुर्भाग्यवश यह न्यास पूरा नहीं मिलता। केवल २० श्लोक-प्रमाण यह ग्रन्थ इस रूप मे मिलता है : पहले अध्याय के प्रथम पाद के ४२ सूत्रों में से ३८ सूत्र, तीसरा व चतुर्थ पाद; दूसरे अध्याय के चारों पाद, तीसरे अध्याय का चतुर्थ पाद और सातवें अध्याय का तीसरा पाद इन पर न्यास मिलता है। जिन अध्यायों के पादों पर न्यास नहीं मिलता उनपर आचार्य विजयलावण्यसूरि ने 'न्यासानुसधान' नाम से न्यास की रचना की है।[3]

न्याससारसमुद्धार (बृहन्न्यासदुर्गपदव्याख्या) :

'सि० श०' पर चन्द्रगच्छीय आचार्य देवेन्द्रसूरि के शिष्य कनकप्रभसूरि ने हेमचन्द्रसूरि के 'बृहन्न्यास' के सक्षिप्त रूप 'न्याससारसमुद्धार' अपर नाम 'बृहन्न्यासदुर्गपदव्याख्या' के नाम से न्यास[4] ग्रन्थ की १३ वीं सदी में रचना की है।

---

१. जैन श्रेयस्कर मण्डल, मेहसाना की ओर से यह ग्रन्थ छपा है।

२. यह वृत्ति जैन ग्रन्थ प्रकाशक सभा, अहमदाबाद की ओर से छपी है।

३. ५ अध्याय तक लावण्यसूरि ग्रन्थमाला, बोटाद की ओर से छप चुका है।

४ यह न्यास मनसुखभाई भगुभाई, अहमदाबाद की ओर से छपा है।

१. लघुन्यास :

'सि० श०' पर हेमचन्द्रसूरि के शिष्य आचार्य रामचन्द्रसूरि ने ५३००० श्लोक-परिमाण 'लघुन्यास' की आचार्य हेमचन्द्रसूरि के समय (वि० १३ वीं शती) में रचना की है।

२ लघुन्यास :

'सि० श०' पर धर्मघोषसूरि ने ९००० श्लोक-प्रमाण 'लघुन्यास' की लगभग १४ वीं शताब्दी में रचना की है।

न्याससारोद्धार-टिप्पण

'सि० श०' पर किसी अज्ञात आचार्य ने 'न्याससारोद्धार-टिप्पण' नाम से एक रचना की है, जिसकी वि० स० १२७९ की हस्तलिखित प्रति मिलती है।

हैमढुण्ढिका :

'सि० श०' पर उदयसौभाग्य ने २३०० श्लोकात्मक 'हैमढुंढिका' नाम से व्याख्या की रचना की है।

अष्टाध्यायतृतीयपद-वृत्ति :

'सि० श०' पर आचार्य विनयसागरसूरि ने 'अष्टाध्यायतृतीयपद वृत्ति' नाम से एक रचना की है।

हैमलघुवृत्ति-अवचूरि :

'सि० श०' की 'लघुवृत्ति' पर अवचूरि हो ऐसा मालूम होता है। देवेन्द्र के शिष्य धनचन्द्र द्वारा २२१३ श्लोकात्मक हस्तलिखित प्रति वि० सं० १४०३ मे लिखी हुई मिलती है।

चतुष्कवृत्ति-अवचूरि :

'सि० श०' की चतुष्कवृत्ति पर किसी विद्वान् ने अवचूरि की रचना की है, जिसका उल्लेख 'जैन ग्रथावली' के पृ० ३०० पर है।

लघुवृत्ति-अवचूरि :

'सि० श०' की लघुवृत्ति के चार अध्यायो पर नन्दसुन्दर मुनि ने वि० स० १५१० मे अवचूरि की रचना की है, जिसकी हस्तलिखित प्रति मिलती है।

हैम-लघुवृत्तिढुण्ढिका (हैमलघुवृत्तिदीपिका) :

'सि० श०' पर मुनिशेखर मुनि ने ३२०० श्लोक प्रमाण 'हैमलघुवृत्तिढुढिका' अपर नाम 'हैमलघुवृत्तिदीपिका' की रचना की है। इसकी वि० स० १४८८ मे लिखी हुई हस्तलिखित प्रति मिलती है।

लघुव्याख्यानढुण्ढिका :

'सि० श०' पर ३२०० श्लोक-प्रमाण 'लघुव्याख्यानढुढिका' की किसी जैनाचार्य की लिखी हुई प्रति सूरत के ज्ञानभण्डार मे है।

ढुण्ढिका-दीपिका :

आचार्य हेमचन्द्रसूरिरचित 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के अध्यापन निमित्त नियुक्त किये गये कायस्थ अध्यापक काकल, जो हेमचन्द्रसूरि के समकालीन थे और आठ व्याकरणो के वेत्ता थे, उन्होने 'सि० श०' पर ६००० श्लोकपरिमाण एक वृत्ति की रचना की थी जो 'लघुवृत्ति' या 'मध्यमवृत्ति' के नाम से प्रसिद्ध थी। 'जिनरत्नकोश' पृ० ३७६ मे इस लघुवृत्ति को ही 'ढुढिकादीपिका' कहा गया है। यह चतुष्क, आख्यात, कृत्, तद्धित विषयक है।

बृहद्वृत्ति-सारोद्धार :

'सिद्धहेमशब्दानुशासन' की बृहद्वृत्ति पर सारोद्धारवृत्ति नाम से किसी ने रचना की है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ वि० स० १५२१ में लिखी हुई मिलती हैं। जिनरत्नकोश, पृ० ३७६ मे इसका उल्लेख है।

बृहद्वृत्ति-अवचूर्णिका :

'सि० श०' पर जयानन्द के शिष्य अमरचन्द्रसूरि ने वि० स० १२६४ में 'अवचूर्णिका'[1] की रचना की है। इसमे ७५७ सूत्रो की बृहद्वृत्ति पर अवचूरि है, शेष १०७ सूत्र इसमें नहीं लिये गये है। आचार्य कनकप्रभसूरिकृत 'लघुन्यास' के साथ बहुत अशों मे यह अवचूरि मिलती है। कई बाते अमरचन्द्र ने नवीन भी कही है।

अवचूर्णिका (पृ० ४-५) मे कहा है कि प्रथम के सात अध्याय चतुष्क, आख्यात, कृत् और तद्धित—इन चार प्रकरणो मे विभक्त है। सधि, नाम, कारक और समास—इन चारो का समुदायरूप 'चतुष्क' है, इसमे १० पाद

1 यह ग्रन्थ 'देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड' की ओर से छपा है।

८। आख्यात मे ६ पाद है, कृत् मे चार पाद है, तद्धित मे ८ पाद है। इस प्रकार यहाँ चार प्रकरण गिनाये है उनको प्रकरण नहीं अपितु वृत्ति कहते है।

बृहद्वृत्ति-ढुंढिका :

मुनि सौभाग्यसागर ने वि० स० १५९१ मे 'सि० श०' पर ८००० श्लोक-प्रमाण 'बृहद्वृत्ति ढुंढिका' की रचना की है। यह चतुष्क, आख्यात, कृत् और तद्धित प्रकरणों पर ही है।

बृहद्वृत्ति दीपिका :

'सि० श०' पर विजयचन्द्रसूरि और हरिभद्रसूरि के शिष्य मानभद्र के शिष्य विद्याकर ने 'दीपिका' की रचना की है।

कक्षापट-वृत्ति :

'सि० श०' की स्वोपज्ञ बृहद्वृत्ति पर 'कक्षापटवृत्ति' नाम से ४८१८ श्लोक-प्रमाण वृत्ति की रचना मिलती है। 'जैन ग्रन्थावली' पृ० २९९ मे इस टीका को 'कक्षापट्ट' और 'बृहद्वृत्ति-विषमपदव्याख्या'—ये दो नाम दिये गये हैं।

बृहद्वृत्ति-टिप्पन :

वि० स० १६४६ में किसी अज्ञात नामा विद्वान् ने 'सि० श०' पर 'बृहद्वृत्ति टिप्पन' की रचना की है।

हैमोदाहरण-वृत्ति :

यह 'सि० श०' की बृहद्वृत्ति के उदाहरणों का स्पष्टीकरण हो ऐसा मालूम होता है। जैन ग्रन्थावली, पृ० ३०१ मे इसका उल्लेख है।

परिभाषा वृत्ति :

यह 'सि० श०' की परिभाषाओं पर वृत्तिस्वरूप ४००० श्लोक-प्रमाण ग्रन्थ है। 'बृहट्टिप्पणिका' मे इसका उल्लेख है।

हैमदशपादविशेष और हैमदशपादविशेषार्थ :

'सि० श०' पर इन दो टीका ग्रन्थो का उल्लेख 'जैन ग्रन्थावली' पृ० २९९ मे मिलता है।

बलाबलसूत्रवृत्ति :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि निर्मित 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' व्याकरण की स्वोपज्ञ बृहद्वृत्ति में से सक्षेप करके किसी अज्ञात आचार्य ने 'बलाबलसूत्रवृत्ति' रची है।

डी० सूचीपत्र मे इस वृत्ति के कर्ता आचार्य हेमचन्द्रसूरि बताये गये है जबकि दूसरे स्थल मे इसी का 'परिभाषावृत्ति' के नाम से दुर्गसिंह की कृति के रूप मे उल्लेख हुआ है।

क्रियारत्नसमुच्चय :

तपागच्छीय आचार्य सोमसुन्दरसूरि के महाध्यायी आचार्य गुणरत्नसूरि ने वि० स० १४६६ मे 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' के धातुओं के दशगण और सन्नन्तादि प्रक्रिया के रूपो की साधनिका तत्तत् सूत्रो के निर्देशपूर्वक की है। सौत्र धातुओ के सब रूपाख्यानो को विस्तार से समझा दिया है। किस काल का किस प्रसग मे प्रयोग करना चाहिये उसका बोध कराया है। कर्ता ने जहाँ कहीं कठिन स्थलविशेष मालूम पडा वहाँ उन्होने तत्कालीन गुजराती भाषा से समझाने का प्रयत्न किया है। अन्त मे ६६ श्लोकों की विस्तृत प्रशस्ति दी है। उसमे रचना-सवत्, प्रेरक, कर्ता का नाम, अपनी लघुता, ग्रन्थ का परिमाण निम्नोक्त प्रकार से दिया है :

> काले षड्-रस-पूर्व (१४६६) वत्सरमिते श्रीविक्रमार्काद् गते,
> गुर्वादेश विमृश्य च सदा स्वान्योपकार परम्।
> ग्रन्थं श्रीगुणरत्नसूरिरतनोत् प्रज्ञाविहीनोऽप्यमु,
> निर्हेतुप्रकृतिप्रधानजननैः शोध्यस्त्वय धीधनैः॥ ६३॥
> प्रत्यक्षरं गणनया ग्रन्थमानं विनिश्चितम्।
> षट्पञ्चाशतान्येकषष्ट्याऽ(५६६१)धिकान्यनुष्टुभाम् ॥ ६४॥

न्यायसंग्रह (न्यायार्थमञ्जूषा-टीका) :

'सि० श०' के सातवे अध्याय की 'बृहद्वृत्ति के अन्त मे ५७ न्यायो का सग्रह है। उसपर हेमचन्द्रसूरि की कोई व्याख्या हो ऐसा प्रतीत नहीं होता।

ये ५७ न्याय और अन्य ८८ न्यायो का सग्रह करके तपागच्छीय रत्नशेखर-सूरि के शिष्य चारित्ररत्नगणि के शिष्य हेमहसगणि ने उनपर 'न्यायार्थमञ्जूषा' नाम की टीका की रचना वि० स० १५१६ मे की है। इसमे इन्होने कहा है कि उपर्युक्त ५७ न्यायो पर प्रज्ञापना नाम की वृत्ति थी।

५७ और दूसरे ८४ मिलाकर १४१ न्यायो के सग्रह को हेमहसगणि ने 'न्यायसग्रहसूत्र' नाम दिया है। दोनो न्यायो की वृत्ति का नाम न्यायार्थ-मञ्जूषा है।

स्यादिशब्दसमुच्चय :

वायडगच्छीय जिनदत्तसूरि के शिष्य और गूर्जरनरेश विशलदेव राजा की राजसभा के सम्मान्य महाकवि आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने १३ वीं शताब्दी मे 'स्यादिशब्दसमुच्चय' की मूल कारिकाओ पर वृत्तिस्वरूप 'सि० श०' के सूत्रो से नाम के विभक्ति रूपो की साधनिका की है। यह ग्रन्थ 'सि० श०' के अध्येताओ के लिए बड़ा उपयोगी है।[1]

स्यादिव्याकरण :

'स्यादिशब्दसमुच्चय' की मूल कारिकाओ पर उपकेशगच्छीय उपाध्याय मतिसागर के शिष्य विनयभूषण ने 'स्यादिशब्दसमुच्चय' को ध्यान मे रखकर ४२२५ श्लोकबद्ध टीका की भावडारगच्छीय सोमदेव मुनि के लिये रचना की है। इसमे चार उल्लास हैं। इसकी ९२ पत्रों की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर में है। उसकी पुष्पिका मे इस ग्रथ की रचना और कारण के विषय मे इस प्रकार उल्लेख है :

इति श्रीमदुपकेशगच्छे महोपाध्याय श्रीमतिसागरशिष्याणुना विनयभूषणेन श्रीमदमरयुक्त्या सविस्तरं प्ररूपितः। संख्याशब्दोल्लासस्तुर्य. ॥

श्रीभावडारगच्छेऽस्ति सोमदेवाभिधो मुनिः।
तदभ्यर्थनतः स्यादिर्विनयेन निर्मिता ॥
संवत् १५३६ वर्षे ज्येष्ठ सुदि पञ्चम्यां लिखितेयम्।

स्यादिशब्ददीपिका :

'स्यादिशब्दसमुच्चय' की मूल कारिकाओ पर आचार्य जयानन्दसूरि ने १०५० श्लोक-परिमाण 'अवचूरि' रची है उसका 'दीपिका' नाम दिया है। इसमे शब्दो की प्रक्रिया 'सि० श०' के अनुसार दी गई है। शब्दो के रूप 'सि० श०' के सूत्रों के आधार पर सिद्ध किये गये हैं।

हेमविभ्रम-टीका :

मूल ग्रथ २१ कारिकाओं में है। कारिकाओ की रचना किसने की यह ज्ञात नहीं, परतु व्याकरण से उपलक्षित कई भ्रमात्मक प्रयोग सूचित किये गये हैं। उन कारिकाओ पर भिन्न-भिन्न व्याकरण के सूत्रों से उन भ्रमात्मक प्रयोगों को

---

१ भावनगर की यशोविजय जैन ग्रन्थमाला से यह ग्रंथ छप गया है।

सही बताकर सिद्धि की गई है। इससे कातन्त्रविभ्रम, सारस्वतविभ्रम, हैमविभ्रम इन नामो से अलग-अलग रचनाएँ मिलती हैं।

आचार्य गुणचन्द्रसूरि द्वारा इन २१ कारिकाओ पर रची हुई 'हैमविभ्रम-टीका' का नाम है 'तत्त्वप्रकाशिका'। 'सि० श०' व्याकरण के अभ्यासियो के लिये यह ग्रंथ अति उपयोगी है।

इस 'हैमविभ्रम-टीका'[1] के रचयिता आचार्य गुणचद्रसूरि वादी आचार्य देव-सूरि के शिष्य थे। ग्रथ के अत मे वे इस प्रकार उल्लेख करते है :

'अकारि गुणचन्द्रेण वृत्तिः स्व-परहेतवे ।
देवसूरिक्रमाम्भोजचञ्चरीकेण सर्वदा ॥'

सभवतः ये गुणचन्द्रसूरि वे ही हो सकते हैं जिन्होंने आचार्य हेमचन्द्रसूरि के शिष्य आचार्य रामचन्द्रसूरि के साथ 'द्रव्यालकार-टिप्पन' और 'नाट्यदर्पण' की रचना की है।

कविकल्पद्रुम :

तपागच्छीय कुलचरणगणि के शिष्य हर्षकुलगणि ने 'सि० श०' मे निर्दिष्ट धातुओ की पद्यबद्ध विचारात्मक रचना वि० सं० १५७७ मे की है।

बोपदेव के 'कविकल्पद्रुम' के समान यह भी पद्यात्मक रचना है। ११ पल्लवों मे यह ग्रथ विभक्त है। प्रथम पल्लव मे सब धातुओ के अनुबध दिये हैं और 'सि० श०' के कई सूत्र भी इसमे जोड़ दिये गये है। पल्लव २ से १० मे क्रमशः भ्वादि से लेकर चुरादि तक नव गण और ११ वे पल्लव मे सौत्रादि धातुओ का विचार किया है।

'कविकल्पद्रुम' की रचना हेमविमलसूरि के काल मे हुई है। उस पर 'धातुचिन्तामणि' नाम की स्वोपज्ञ टीका है, परतु समग्र टीका उपलब्ध नहीं हुई है। सिर्फ ११ वे पल्लव की टीका मूल पद्यो के साथ छपी है।

कविकल्पद्रुम-टीका :

किसी अज्ञातकर्तृक 'कविकल्पद्रुम' नाम की कृति पर मुनि विजयविमल ने टीका रची है।

---

१. यह ग्रथ भावनगर की यशोविजय ग्रंथमाला से छपा है।

तिङन्वयोक्ति :

न्यायाचार्य यशोविजयजी उपाध्याय ने 'तिङन्वयोक्ति' नामक व्याकरण-संबंधी ग्रंथ की रचना की है। कई विद्वान् इसको 'तिङन्तान्वयोक्ति' भी कहते हैं। इस कृति का आदि पद्य इस प्रकार है :

ऐन्द्रव्रजाभ्यर्चितपादपद्मं सुमेरुधीरं प्रणिपत्य वीरम्।
वदामि नैयायिकशाब्दिकानां मनोविनोदाय तिङन्वयोक्तिम् ॥

हैमधातुपारायण :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'हैम-धातुपारायण' नामक ग्रंथ की रचना की है। 'धातुपाठ' शब्दशास्त्र का अत्यन्त उपयोगी अंग है इसीलिये यह ग्रंथ 'सिद्ध-हेमचन्द्रशब्दानुशासन' के परिशिष्ट के रूप में बनाया गया है।

'धातु' क्रिया का वाचक है, अर्थात् क्रिया के अर्थ को धारण करने-वाला 'धातु' कहा जाता है। इन धातुओं से ही शब्दों की उत्पत्ति हुई है ऐसा माना जाता है। इन धातुओं का निरूपण करनेवाला यह 'धातुपारायण' नामक ग्रंथ है। 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' में निम्न वर्गों में धातुओं का वर्गीकरण किया गया है :

भ्वादि, अदादि, दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि—इस प्रकार नव गण हैं। अतः इसे 'नवगणी' भी कहते हैं।

इन गणों के सूचक अनुबंध भ्वादि गण का कोई अनुबंध नहीं है। दूसरे गणों के क्रमशः क्, च्, ट्, त्, प्, य्, श् और ण् अनुबंधों का निर्देश है। फिर, इसमें स्वरान्त और व्यञ्जनांत शैली से धातुओं का क्रम दिया गया है। इसमें परस्मैपद, आत्मनेपद और उभयपद के अनुबंध इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ए, ऐ, ओ, औ, ग्, ङ् और अनुस्वार बताये गये हैं।

इकार अनुबंध में आत्मनेपद, ई अनुबंध से उभयपद का निर्देश है। 'वेट्' धातुओं का सूचक अनुबन्ध औ है और 'अनिट्' धातुओं को बताने के लिये अनुस्वार का उपयोग किया गया है। इस प्रकार अनुबंधों के साथ धातुओं के अर्थ का निर्देश किया गया है।

इस ग्रंथ में कौशिक, द्रमिल, कण्व, भगवद्‌गीता, माघ, कालिदास आदि ग्रन्थकारों और ग्रन्थों का उल्लेख भी किया गया है।

इसमें कई अवतरण पद्य में हैं, बाकी विभाग गद्य में है। कई अवतरण (पद्य) शृंगारिक भी हैं।

हैमधातुपारायण वृत्ति :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'हैमधातुपारायण' पर वृत्ति की रचना की है।

हेम-लिंगानुशासन :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने नामो के लिंगो को बताने के लिये 'लिंगानुशासन' की रचना की है। सस्कृत भाषा मे नामो के लिंगो को याद रखना ही चाहिए।

इसमे आठ प्रकरण इस प्रकार है · १. पुलिंग, पद्य १७ २ स्त्रीलिंग ३३ ३ नपुसकलिंग ३४, ४ पु स्त्रीलिंग १२, ५ पु-नपुसकलिंग ३६ ६ स्त्री नपुसक-लिंग ६ ७. स्वत. स्त्रीलिंग ६, ८. परलिंग ४। इस प्रकार इसमे १३० पद्य विविध छदो मे है।

शाकटायन के लिंगानुशासन से यह ग्रथ बड़ा है। शब्दो के लिंगो के लिए यह प्रमाणभूत और अंतिम माना जाता है।

हेम-लिंगानुशासन-वृत्ति :

हेमचन्द्रसूरि ने अपने 'लिंगानुशासन' पर स्वोपज्ञवृत्ति की रचना की है। यह वृत्ति ग्रथ ४००० श्लोक प्रमाण है। इसमे ५७ ग्रथो और पूर्वाचार्यो के मतों का उल्लेख किया है।[2]

दुर्गपदप्रबोध-वृत्ति :

पाठक वल्लभ मुनि ने हेमचन्द्रसूरि के 'लिंगानुशासन' पर वि० स० १६६१ मे २००० श्लोक-परिमाण 'दुर्गपदप्रबोध' नामक वृत्ति की रचना की है।

हेम-लिंगानुशासन-अवचूरि :

प० केसरविजयजी ने आचार्य हेमचन्द्रसूरि के लिंगानुशासन पर 'अवचूरि'[3] की रचना की है। आचार्य हेमचन्द्रसूरि की स्वोपज्ञ वृत्ति के आधार पर यह छोटी-सी वृत्ति बनाई गई है।

---

१. इस वृत्ति ग्रंथ का मूलसहित सपादन वीएना के जे० कीर्स्ट ने किया है और बम्बई से सन् १९०१ में प्रकाशित हुआ है। सपादक ने इस ग्रथ में प्रयुक्त धातुओ का और शब्दों का अलग-अलग कोश दिया है।

२ यह ग्रंथ 'अमी-सोम जैन ग्रथमाला' बम्बई से वि० स० १९९६ मे प्रकाशित हुआ है।

३ यह 'अवचूरि' यशोविजय जैन ग्रथमाला, भावनगर से प्रकाशित है।

गणपाठ :

कई शब्द-समूहो मे एक ही प्रकार का व्याकरणसबधी नियम लागू होता हो तब व्याकरणसूत्र मे प्रथम शब्द के उल्लेख के साथ ही आदि शब्द लगा कर गण का निर्देश किया जाता है। इस प्रकार 'सिद्धहेमचन्द्र शब्दानुशासन' की बृहद्वृत्ति मे ऐसे शब्दसमूह का उल्लेख किया गया है। इसलिये गणपाठ व्याकरण का अति महत्त्व का अंग है।

प० मयाशकर गिरजाशकर शास्त्री ने 'सिद्धहेम बृहत्प्रक्रिया' नाम से ग्रथ की सकलना की है उसमे गणपाठ पृ० ९५७ से ९९१ मे अलग से भी दिये गये हैं।

गणविवेक :

'सि० श०' की बृहद्वृत्ति मे निर्दिष्ट गणो को प० साधुराज के शिष्य प० नन्दिरत्न ने वि० १७ वीं शती मे पद्यो मे निबद्ध किया है। इसका ग्रन्थाग्र ६०७ है। इसकी ८ पत्र की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपत भाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर मे (स० ५९०७) है। इसके आदि मे ग्रथ का हेतु वगैरह इस प्रकार दिया है .

> अर्हन्तः सिद्धिदाः सिद्धाचार्योपाध्याय-साधवः।
> गुरुः श्रीसाधुराजश्च बुद्धिं विदधतां मम ॥ १ ॥
> श्रीहेमचन्द्रसूरीन्द्रः पाणिनिः शाकटायनः।
> श्रीभोजश्चन्द्रगोमी [च] जयन्त्यन्येऽपि शाब्दिकाः ॥ २ ॥
> श्रीसिद्धहेमचन्द्र[क]व्याकरणोदितैर्गणैः ।
> ग्रन्थो गणविवेकाख्यः स्वान्यस्मृत्यै विधीयते ॥ ३ ॥

गणदर्पण :

गूर्जर नरेश महाराजा कुमारपाल ने 'गणदर्पण'[१] नामक व्याकरणसबधी ग्रथ की रचना की है। कुमारपाल का राज्यकाल वि० स० ११९९ से १२३० है इसलिए उसी के दरमियान मे इसकी रचना हुई है। यह ग्रथ दण्डनायक वोसरी और प्रतिहार भोजदेव के लिये निर्माण किया गया था ऐसा उल्लेख इसकी

---

१ इस ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति जोधपुर के श्री केशरिया मदिरस्थित खरतरगच्छीय ज्ञानभडार में है। इसमें कुल २१ पत्र हैं, प्रारंभ के २ पत्र नहीं हैं, एवं बीच-बीच में पाठ भी छूट गया है।

पुष्पिका मे है। भाषा संस्कृत है और चार-चार पादवाले तीन अध्याय पद्यों मे हैं। कहीं-कहीं गद्य भी है। यह ग्रथ शायद 'सि० श०' के गणो का निर्देश करता हो। इसका ९०० ग्रथाग्र है। कुमारपाल ने 'नम्राखिल०' से आरभ करके 'साधारणजिनस्तवन' नामक संस्कृत स्तोत्र की रचना की है।

इस 'गणदर्पण' की प्रति ५०० वर्ष प्राचीन है जो वि० स० १५१८ (शाके १३८३) मे देवगिरि मे देवडागोत्रीय ओसवाल वीनपाल ने लिखवाई है। प्रति खरतरगच्छीय मुनि समयभक्त को दी गई है। इनके शिष्य पुण्यनन्दि द्वारा रचित सुप्रसिद्ध 'रूपकमाला' की प्रशस्ति के अनुसार ये आचार्य सागरचन्द्रसूरि के शिष्य रत्नकीर्ति के शिष्य थे।

प्रक्रियाग्रन्थ :

व्याकरण-ग्रन्थो मे दो प्रकार के क्रम देखने मे आते हैं : १ अध्यायक्रम (अष्टाध्यायी) और २ प्रक्रियाक्रम। अध्यायक्रम में सूत्रो का विषयक्रम, उनका बलाबल, अनुवृत्ति, व्यावृत्ति, उत्सर्ग, अपवाद, प्रत्यपवाद, सूत्ररचना का प्रयोजन आदि बाते दृष्टि में रखकर सूत्ररचना होती है। मूल सूत्रकार अध्यायक्रम से ही रचना करते हैं। बाद मे होनेवाले रचनाकार उन सूत्रों को प्रक्रियाक्रम मे रखते है।

सिद्धहेम-शब्दानुशासन पर भी ऐसे कई प्रक्रियाग्रंथ हैं, जिनका ब्यौरेवार निर्देश हम यहा करते है।

हैमलघुप्रक्रिया :

तपागच्छीय उपाध्याय विनयविजयगणि ने सिद्धहेमशब्दानुशासन के अध्यायक्रम को प्रक्रियाक्रम मे परिवर्तित करके वि० स० १७१० मे 'हैमलघु-प्रक्रिया' नामक ग्रथ की रचना की है। यह प्रक्रिया १. नाम, २ आख्यान और ३ कृदन्त—इन तीन वृत्तियों मे विभक्त है। विषय की दृष्टि से सज्ञा, सधि, लिङ्ग, युष्मदस्मद्, अव्यय, स्त्रीलिङ्ग, कारक, समास और तद्धित—इन प्रकरणो मे ग्रन्थ-रचना की है। अत मे प्रशस्ति है।

हैमबृहत्प्रक्रिया :

उपाध्याय विनयविजयजीरचित 'हैमलघुप्रक्रिया' के क्रम को ध्यान मे रखकर आधुनिक विद्वान् मयाशकर गिरजाशकर ने उस पर बृहद्वृत्ति की रचना करके उसको 'हैमबृहत्प्रक्रिया' नाम दिया है। यह ग्रन्थ छपा है। इसका रचना-काल वि० २० वीं शती है।

हैमप्रकाश (हैमप्रक्रिया-बृहन्न्यास) :

तपागच्छीय उपाध्याय विनयविजयजी ने जो 'हैमलघुप्रक्रिया' ग्रंथ की रचना की है उस पर उन्होने ३४००० श्लोक-परिणाम स्वोपज्ञ 'हैमप्रकाश' अपरनाम 'हैमप्रक्रिया बृहन्न्यास'[1] की रचना वि० स० १७९७ मे की है। 'सिद्ध-हेमशब्दानुशासन' के सूत्र 'समानाना तेन दीर्घ'-(१. २ १) के हैमप्रकाश मे कनकप्रभसूरिकृत 'न्याससारसमुद्धार' से भिन्न मत प्रदर्शित किया गया है। इस प्रकार बहुत स्थलो मे उन्होंने पूर्व वैयाकरणो से भिन्न मत का प्रदर्शन कर अपनी व्याकरण-विषयक प्रतिभा का परिचय दिया है।

चन्द्रप्रभा (हेमकौमुदी) :

तपागच्छीय उपाध्याय मेघविजयजी ने 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के सूत्रो पर भट्टोजीदीक्षितरचित सिद्धान्तकौमुदी के अनुसार प्रक्रियाक्रम से 'चद्रप्रभा' अपरनाम 'हेमकौमुदी'[2] नामक व्याकरणग्रथ की वि० स० १७५७ मे आगरे मे रचना की है। पुष्पिका में इसको 'बृहत्प्रक्रिया' भी कहा है। इसका ९००० श्लोक-परिमाण है। कर्ता ने अपने शिष्य भानुविजय के लिये इसे बनाया और सौभाग्यविजय एव मेरुविजय ने दीपावली के दिन इसका सशोधन किया था।

यह ग्रथ प्रथमा वृत्ति और द्वितीया वृत्ति इन दो विभागो मे विभक्त है। 'टादौ स्वरे वा' (१.४ ३२) पृ० ४० मे 'की.', 'किरौ' इत्यादि रूपो की साधनिका मे पाणिनीय व्याकरण का आधार लिया गया है, सिद्धहेमशब्दानुशासन का नहीं, यह एक दोष माना गया है।

हेमशब्दप्रक्रिया :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर यह छोटा सा ३५०० श्लोक-परिमाण मध्यम प्रक्रिया-व्याकरणग्रथ उपाध्याय मेघविजयगणि ने वि० स० १७५७ के आसपास मे बनाया है। इसकी हस्तलिखित प्रति भाडारकर इन्स्टीट्यूट, पूना मे है।

हेमशब्दचन्द्रिका :

उपाध्याय मेघविजयगणि ने सिद्धहेमशब्दानुशासन के अधार पर ६०० श्लोक-प्रमाण यह छोटा-सा ग्रथ विद्यार्थियो के प्राथमिक प्रवेश के लिए तीन प्रकाशो मे अति सक्षेप मे बनाया है। यह ग्रथ मुनि चतुरविजयजी ने सपादित करके

---

१. यह ग्रन्थ दो भागों में बंबई से प्रकाशित हुआ है।

२. जैन श्रेयस्कर मंडल, मेहसाना से यह ग्रथ छप गया है।

प्रकाशित किया है। भाडारकर इन्स्टीट्यूट, पूना मे इसकी स० १७५५ मे लिखित प्रति है।

उपाध्याय मेघविजयगणि ने भिन्न-भिन्न विषयो पर अनेको ग्रथ लिखे है '

१ दिग्विजय महाकाव्य (काव्य)
२ सप्तसधान महाकाव्य ,,
३ लघु-त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र ,,
४ भविष्यदत्त कथा ,,
५ पञ्चाख्यान ,,
६ चित्रकोश (विज्ञप्तिपत्र) ,,
७ वृत्तमौक्तिक (छन्द)
८ मणिपरीक्षा (न्याय)
९ युक्तिप्रबोध (शास्त्रीय आलोचना)
१० धर्ममञ्जूषा ,,
११ वर्षप्रबोध (मेघमहोदय) (ज्योतिष)
१२ उदयदीपिका ,,
१३ प्रश्नसुन्दरी ,,
१४ हस्तसजीवन (सामुद्रिक)
१५ रमलशास्त्र (रमल)
१६ बीसयत्रविधि (यत्र)
१७ मातृकाप्रसाद (अध्यात्म)
१८ अर्हद्गीता ,,
१९ ब्रह्मबोध ,,
२० तपागच्छपट्टावली
२१ पञ्चतीर्थस्तुति
२२ शिवपुरी-शखेश्वर पार्श्वनाथस्तोत्र
२३ भक्तामरस्तोत्रटीका
२४ शान्तिनाथचरित्र (नैषधीय समस्यापूर्ति-काव्य)
२५ देवानन्द महाकाव्य (माघ समस्यापूर्ति काव्य)
२६ किरात-समस्या-पूर्ति
२७ मेघदूत-समस्या-लेख
२८-२९ पाणिनीय द्वयाश्रयविज्ञप्तिलेख
३० विजयदेवमाहात्म्य-विवरण
३१ विजयदेव-निर्वाणरास
३२ पार्श्वनाथ-नाममाला
३३ थावच्चाकुमारसज्झाय
३४ सीमन्धरस्वामीस्तवन
३५ चौवीशी (भाषा)
३६ दशमतस्तवन
३७ कुमतिनिवारणहुडी

हैमप्रक्रिया :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर महेन्द्रसुत वीरसेन ने प्रक्रिया-ग्रथ की रचना की है।

हैमप्रक्रियाशब्दसमुच्चय :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर १५०० श्लोक प्रमाण एक कृति का उल्लेख 'जैन ग्रन्थावली' पृ ३०३ मे मिलता है

हेमशब्दसमुच्चय :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर 'हेमशब्दसमुच्चय' नामक ४९२ श्लोक प्रमाण कृति का उल्लेख जिनरत्नकोश, पृ० ४६३ मे है।

हेमशब्दसंचय :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर अमरचन्द्र की 'हेमशब्दसचय' नामक ४२६ श्लोक-प्रमाण एक कृति का उल्लेख 'जिनरत्नकोश' पृ० ४६३ में किया है।

हेमशब्दसंचय :

सिद्धहेमशब्दानुशासन पर १५०० श्लोक-प्रमाण ४३६ पत्रों की एक प्रति का उल्लेख 'जैन ग्रन्थावली' पृ० ३०३ पर है।

हेमकारकसमुच्चय :

सिद्धहेमशब्दानुशासन के कारक प्रकरण पर प्राथमिक विद्यार्थियों के लिए श्रीप्रभसूरि ने 'हैमकारकसमुच्चय' नामक कृति की रचना की है। इसके तीन अधिकार हैं। जैन ग्रन्थावली, पृ० ३०२ में इसका उल्लेख है।

सिद्धसारस्वत-व्याकरण :

चद्रगच्छीय देवभद्र के शिष्य आचार्य देवानन्दसूरि ने 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' व्याकरण में से उद्धृतकर 'सिद्धसारस्वत' नामक नवीन व्याकरण की रचना की। प्रभावकचरितान्तर्गत 'महेन्द्रसूरिचरित' में इस प्रकार उल्लेख है :

> श्रीदेवानन्दसूरिर्दिशतु मुदमसौ लक्षणाद् येन हैमा-
> दुद्धृत्य प्राज्ञहेतोर्विहितमभिनवं 'सिद्धसारस्वताख्यम्'।
> शाब्दं शास्त्रं यदीयान्वयिकनकगिरिस्थानकल्पद्रुमश्च
> श्रीमान् प्रद्युम्नसूरिर्विशदयति गिरं नः पदार्थप्रदाता ॥ ३२८ ॥

मुनिदेवसूरि द्वारा (वि० स० १३२२ मे) रचित 'शातिनाथचरित्र' में भी इस व्याकरण का उल्लेख इस प्रकार आता है :

> श्रीदेवानन्दसूरिभ्यो नमस्तेभ्यः प्रकाशितम्।
> सिद्धसारस्वताख्यं यैर्निजं शब्दानुशासनम् ॥ १६ ॥

इन उल्लेखों से अनुमान होता है कि यह व्याकरण वि० सं० १२७५ के करीब रचा गया होगा। इस दृष्टि से 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' पर यह सर्वप्रथम व्याकरण माना जा सकता है।

उपसर्गमण्डन :

धातु या धातु से बनाये हुए 'नाम' आदि के पूर्व जुड़ा हुआ और अर्थ मे प्रायः विशेषता लानेवाला अव्यय 'उपसर्ग' कहलाता है।

माण्डवगढ़ निवासी मंत्री मंडन ने 'उपसर्गमण्डन' नामक ग्रन्थ की वि० सं० १४९२ में रचना की है। वे आलमशाह अपर नाम हुशंग गोरी के मंत्री थे। मंत्री होने पर भी वे विद्वान् और कवि थे। उनके वंश आदि के विषय में महेश्वरकृत 'काव्यमनोहर' ग्रन्थ अच्छा प्रकाश डालता है। उनके प्राय सभी ग्रंथ 'मंडन' शब्द से आवृत हैं।

उनके अन्य ग्रंथ इस प्रकार हैं : १. अलंकारमंडन, २ कादम्बरीमंडन, ३. काव्यमंडन, ४. चम्पूमंडन, ५. शृङ्गारमंडन ६. संगीतमंडन और ७. सारस्वतमंडन। इनके अतिरिक्त उन्होंने ८. चन्द्रविजय और ९. कविकल्पद्रुमस्कंध—ये दो कृतियाँ भी रची हैं।[1]

धातुमञ्जरी :

तपागच्छीय उपाध्याय भानुचन्द्रसूरि के शिष्य सिद्धिचन्द्रगणि ने वि० सं० १६५० में 'धातुमंजरी' नामक ग्रंथ की रचना की है। यह पाणिनीय धातुपाठ-संबंधी रचना है।

सिद्धिचन्द्र ने निम्नलिखित ग्रंथों की भी रचना की थी: १. (हैम) अनेकार्थनाममाला, २. कादम्बरी-टीका (अपने गुरु भानुचन्द्रगणि के साथ), ३. भक्तामरस्तोत्र टीका, ४. वासवदत्ता टीका, ५. शोभनस्तुति टीका आदि।

मिश्रलिंगकोश, मिश्रलिंगनिर्णय, लिङ्गानुशासन :

'जैन ग्रंथावली' पृ० ३०७ में 'मिश्रलिङ्गनिर्णय' नामक एक कृति और उसके कर्ता कल्याणसूरि का उल्लेख है। 'मिश्रलिंगकोश' और 'मिश्रलिंगनिर्णय' एक ही कृति मालूम होती है। इसके कर्ता का नाम कल्याणसागर है। वे अचलगच्छ के धर्ममूर्ति के शिष्य थे। उन्होंने अपने शिष्य विनीतसागर के लिए इस कोश की रचना की है। इसमें एक से ज्यादा लिंग के याने जाति के नामों की सूची इन्होंने दी है।

उणादिप्रत्यय :

दिगम्बराचार्य वसुनन्दि ने 'उणादिप्रत्यय' नामक एक कृति की रचना की है। इस पर इन्होंने स्वोपज्ञ टीका भी लिखी है। इसका उल्लेख 'जिनरत्नकोश' पृ० ४१ पर है।

---

१. इनमें से सं० २, ६, ७, ९ के सिवाय सब कृतियाँ और 'काव्यमनोहर' पाटन की हेमचन्द्राचार्य सभा से प्रकाशित हैं।

विभक्ति विचार :

'विभक्ति-विचार' नामक आगिक व्याकरणग्रथ की १६ पत्रो की प्रति जैसलमेर के भडार मे विद्यमान है। प्रति मे यह ग्रथ वि० स० १२०६ मे आचार्य जिनचद्रसूरि के शिष्य जिनमतसाधु द्वारा लिखा गया, ऐसा उल्लेख है। इसके कर्ता के विषय मे प० हीरालाल हसराज के सूची-पत्र मे आचार्य जिनपतिसूरि का उल्लेख है परन्तु इतिहास से पता लगता है कि आचार्य जिनपतिसूरि का जन्म वि० स० १२१० मे हुआ था इसलिए इसके कर्ता ये ही आचार्य हो यह सभव नहीं है।

धातुरत्नाकर :

खरतरगच्छीय साधुसुन्दरगणि ने वि० स० १६८० मे 'धातुरत्नाकर' नामक २१०० श्लोक-प्रमाण ग्रथ की रचना की है। इस ग्रथ मे सस्कृत के प्रायः सब धातुओं का सग्रह किया गया है।

इस ग्रथ के कर्ता के उक्तिरत्नाकर, शब्दरत्नाकर और जैसलमेर के किले मे प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ तीर्थंकर की स्तुति भी जो वि० स० १६८३ मे रची हुई है, उपलब्ध होते हैं।

धातुरत्नाकर-वृत्ति :

'धातुरत्नाकर' जो २१०० श्लोक प्रमाण है, उस पर साधुसुन्दरगणि ने स० १६८० में 'क्रियाकल्पलता' नाम की स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है।

रचनाकार ने लिखा है :

> तच्छिष्योऽस्ति च साधुसुन्दर इति ख्यातोऽद्वितीयो भुवि
> तेनैषा विवृतिः कृता मतिमता प्रीतिप्रदा सादरम्।
> स्वोपज्ञोत्तमधातुपाठविलसत्सद्धातुरत्नाकरः
> ग्रन्थस्यास्य विशिष्टशाब्दिकमतान्यालोक्य संक्षेपतः॥

इसमें धातुओ के रूपाख्यानो का विशद आलेखन है। इसका ग्रथ-परिमाण २१-२२ हजार श्लोक-प्रमाण है।[1]

---

1. इसकी ५४२ पत्रों की हस्तलिखित प्रति कलकत्ता की गुलाबकुमारी लायब्रेरी में बडल सं० १८, प्रति म० १७१ में है।

षट्कारकविवरण :

प० अमरचन्द्र नामक मुनि ने 'षट्कारकविवरण' नामक कृति की रचना की है। यह ग्रंथ अप्रकाशित है।

शब्दार्थचन्द्रिकोद्धार :

मुनि हर्षविजयगणि ने 'शब्दार्थचन्द्रिकोद्धार' नामक व्याकरण-विषयक ग्रंथ की रचना की है, जिसकी ६ पत्रों की प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद में प्राप्त है। यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

रुचादिगणविवरण :

मुनि सुमतिकल्लोल ने 'रुचादिगणविवरण' नामक ग्रंथ रुचादिगण के धातुओं के बारे में रचा है। इसकी ५ पत्रों की प्रति मिलती है। यह ग्रंथ अप्रकाशित है।

उणादिगणसूत्र :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपने व्याकरण के परिशिष्टस्वरूप 'उणादिगणसूत्र'[1] की रचना वि० १३ वीं शताब्दी में की है। मूल प्रकृति (धातु) में उणादि प्रत्यय लगाकर नाम (शब्द) बनाने का विधान इसमें बताया गया है। इसमें कुल १००६ सूत्र हैं।

कई शब्द प्राकृत और देश्य भाषाओं से सीधे संस्कृत बनाये गये हैं।

उणादिगणसूत्र-वृत्ति :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपने 'उणादिगणसूत्र' पर स्वोपज्ञ वृत्ति रची है।

विश्रान्तविद्याधरन्यास :

वामन नामक जैनेतर विद्वान् ने 'विश्रान्तविद्याधर' व्याकरण की रचना की है जो आज उपलब्ध नहीं है, परंतु उसका उल्लेख वर्धमानसूरि-रचित 'गणरत्नमहोदधि' (पृ० ७२, ९२) में, और आचार्य हेमचन्द्रसूरिकृत 'सिद्धहेमचंद्रशब्दानुशासन' (१. ४. ५२) के स्वोपज्ञ न्यास में मिलता है।

---

१. यह ग्रंथ 'सिद्धहेमचन्द्रव्याकरण-बृहद्वृत्ति', जो सेठ मनसुखभाई भगुभाई, अहमदाबाद की ओर से छपी है, में संमिलित है। प्रो० जे० कीर्स्ट ने इसका संपादन कर अलग से वृत्ति के साथ प्रकाशित किया है।

इस व्याकरण पर मल्लवादी नामक श्वेताम्बर जैनाचार्य ने न्यास ग्रंथ की रचना की ऐसा उल्लेख प्रभावकचरितकार ने किया है।[1] आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपने 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' की स्वोपज्ञ टीका मे उस न्यास में से उद्धरण दिये हैं,[2] और 'गणरत्नमहोदधि' (पृ० ७१, ९२) मे भी 'विश्रान्तविद्याधरन्यास' का उल्लेख मिलता है।

श्वेताम्बर जैनसंघ मे मल्लवादी नाम के दो आचार्य हुए हैं : एक पाचवीं सदी मे और दूसरे दसवीं सदी में। इन दो मे से किस मल्लवादी ने 'न्यास' की रचना की यह शोधनीय है। यह न्यास-ग्रंथ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है इसलिये इसके विषय में कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

पाचवीं सदी में हुए मल्लवादी ने अगर इसकी रचना की हो तो उनका दूसरा दार्शनिक ग्रंथ है 'द्वादशारनयचक्र'। यह ग्रंथ वि० स० ४१४ मे बनाया गया।

पद्व्यवस्थासूत्रकारिका :

विमलकीर्ति नामक जैन मुनि ने पाणिनिकृत अष्टाध्यायी के अनुसार सस्कृत धातुओं के पद जानने के लिये 'पद्व्यवस्थाकारिका' नाम से सूत्रो को पद्यरूप मे ग्रथित किया है। इसके कर्ता ने खुदको विद्वान् बताया है। इसकी टीका वि० स० १६८१ मे रची गई इसलिये उसके पहिले इस ग्रंथ की रचना हुई है।

पद्व्यवस्थाकारिका-टीका :

'पद्व्यवस्थासूत्रकारिका' पर मुनि उदयकीर्ति ने ३३०० श्लोक-प्रमाण टीका की रचना की है। मुनि उदयकीर्ति खरतरगच्छीय साधुकीर्ति के शिष्य थे। उन्होने बालजनो के बोध के लिये वि० स० १६८१ मे इस टीका-ग्रंथ की रचना की है।

भाडारकर ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, पूना के हस्तलिखित सग्रह की सूची, भा० २, खण्ड १, पृ० १९२–१९३ में दिये हुए परिचय के मुताबिक इस ग्रंथ की मूलकारिकासहित प्रति वि० स० १७१३ मे सुखसागरगणि के शिष्य मुनि समयहर्ष के लिये लिखी गई थी ऐसा अन्तिम पुष्पिका से ज्ञात होता है।

कर्ता के अन्य ग्रंथों के बारे में कुछ जानने में नहीं आया।

---

१ शब्दशास्त्रे च विश्रान्तविद्याधरवराभिदे।
न्यासं चक्रेऽल्पधीवृन्दबोधनाय स्फुटार्थकम् ॥—मल्लवादिचरित।

२. संस्कृत व्याकरण-शास्त्र का इतिहास, भा० १, पृ० ४३२.

कातन्त्रव्याकरण :

'कातन्त्रव्याकरण' की भी एक परम्परा है। इसकी रचना में अनेक विशेषताएँ हैं और परिभाषाएँ भी पाणिनि से बहुत कुछ स्वतंत्र है। यह 'कातन्त्र व्याकरण' पूर्वार्ध और उत्तरार्ध इस प्रकार दो भागों में रचा गया है। तद्धित तक का भाग पूवार्ध और कृदन्त प्रकरणरूप भाग उत्तरार्ध है। पूर्वभाग के कर्ता सर्ववर्मन्-थे ऐसा विद्वानो का मन्तव्य है, वस्तुतः सर्ववर्मन् उसकी बृहद्वृत्ति के कर्ता थे। अनुश्रुतियों के अनुसार तो 'कातत्र' की रचना महाराजा सातवाहन के समय में हुई थी।[१] परतु यह व्याकरण उससे भी प्राचीन है ऐसा युधिष्ठिर मीमासक का मंतव्य है।[२] 'कातन्त्र-वृत्ति' के कर्ता दुर्गसिंह के कथनानुसार कृदन्त भाग के कर्ता कात्यायन थे।

सोमदेव के 'कथासरित्सागर' के अनुसार सर्ववर्मन् अजैन सिद्ध होते हैं परतु भावसेन त्रैविद्य 'रूपमाला' में इनको जैन बताते हैं। इस विषय में शोध करना आवश्यक है।

इस व्याकरण में ८८५ सूत्र हैं, कृदन्त के सूत्रो के साथ कुल १४०० सूत्र हैं। ग्रन्थ का प्रयोजन बताते हुए इस प्रकार कहा गया है :

> 'छान्दसः स्वल्पमतयः शब्दान्तररताश्च ये।
> ईश्वरा व्याधिनिरतास्तथाऽऽलस्ययुताश्च ये॥
> वणिक्-सस्यादिसंसक्ता लोकयात्रादिषु स्थिताः।
> तेषां क्षिप्रप्रबोधार्थं.: ....॥

यह प्रतिज्ञा यथार्थ मालूम होती है। इतना छोटा, सरल और जल्दी से कठस्थ हो सके ऐसा व्याकरण लोकप्रिय बने इसमें आश्चर्य नहीं है। बौद्ध साधुओं ने इसका खूब उपयोग किया, इससे इसका प्रचार भारत के बाहर भी हुआ। 'कातंत्र' का धातुपाठ तिब्बती भाषा में आज भी सुलभ है।

आजकल इसका पठन-पाठन बगाल तक ही सीमित है। इसका अपर नाम 'कलाप' और 'कौमार' भी है। 'अग्निपुराण' और 'गरुडपुराण' मे इसे कुमार—

---

१ Katantra must have been written during the close of the Andhras in 3rd century A. D.—Mythic Journal, Jan. 1928.

२. 'कल्याण' हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ६५९.

स्कन्द-प्रोक्त कहा है। इसकी सबसे प्राचीन टीका दुर्गसिंह की मिलती है। 'काशिका' वृत्ति से यह प्राचीन है, चूँकि काशिका में 'दुर्गवृत्ति' का खडन किया है। इस व्याकरण पर अनेक वैयाकरणो ने टीकाएँ लिखी हैं। जैनाचार्यों ने भी बहुत-सी वृत्तियो का निर्माण किया है।

दुर्गपदप्रबोध-टीका :

'कातन्त्रव्याकरण' पर आचार्य जिनप्रबोधसूरि ने वि० स० १३२८ मे 'दुर्गपद-प्रबोध' नामक टीकाग्रथ की रचना की है। जैसलमेर और पाटन के भडार में इस ग्रन्थ की प्रतियाँ है।

'खरतरगच्छपट्टावली' से ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ के कर्ता का जन्म वि० स० १२८५, दीक्षा स० १२९६, सूरिपद स० १३३१ (३३), स्वर्गगमन स० १३४१ मे हुआ था। वे आचार्य जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे।

दीक्षा के समय उनका नाम प्रबोधमूर्ति रखा गया था, इसलिये ग्रन्थ के रचना-समय का प्रबोधमूर्ति नाम उल्लिखित है परतु आचार्य होने के बाद जिन-प्रबोधसूरि नाम रखा गया था। पाटन् की प्रति के अन्त मे इसका स्पष्टीकरण किया गया है।[1] वि०स० १३३३ के गिरनार के शिलालेख में जिनप्रबोधसूरि नाम है। वि० स० १३३४ में विवेकसमुद्रगणि-रचित 'पुण्यसारकथा' का आचार्य जिन-प्रबोधसूरि ने सशोधन किया था। वि० स० १३५१ में प्रह्लादनपुर में प्रतिष्ठित की हुई इस आचार्य की प्रतिमा स्तभतीर्थ में है।

दौर्गसिंही-वृत्ति :

'कातन्त्र-व्याकरण' पर रची गई दुर्गसिंह की वृत्ति पर आचार्य प्रद्युम्नसूरि ने ३००० श्लोक-प्रमाण 'दौर्गसिंही-वृत्ति' की रचना वि० स० १३६९ में की है। इसकी प्रति बीकानेर के भडार मे है।

कातन्त्रोत्तरव्याकरण :

कातन्त्र-व्याकरण की महत्ता बढाने के लिये विजयानन्द नामक विद्वान् ने 'कातन्त्रोत्तरव्याकरण' की रचना की है, जिसका दूसरा नाम है विद्यानन्द।[2] इसकी रचना वि० स० १२०८ से पूर्व हुई है।

---

१. सामान्यावस्थायां प्रबोधमूर्तिगणिनामधेयै श्रीजिनेश्वरसूरिपट्टालङ्कारै. श्री-जिनप्रबोधसूरिभिर्विरचितो दुर्गपदप्रबोध संपूर्णः।

२ देखिए—संस्कृत व्याकरण-साहित्य का इतिहास, भा० १, पृ० ४०६.

'जिनरत्नकोश' (पृ० ८४) मे कातन्त्रोत्तर के सिद्धानन्द, विजयानन्द और विद्यानन्द—ये तीन नाम दिये गये है। इसके कर्ता विजयानन्द अपर नाम विद्यानन्दसूरि का उल्लेख है। यह व्याकरण समास-प्रकरण तक ही मिलता है। पिटर्सन की चौथी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि इस व्याकरण की ताड़पत्रीय प्रतिया जैसलमेर-भंडार मे हैं।

'जैनपुस्तकप्रशस्तिसग्रह' (पृ० १०६) मे इस व्याकरण का उल्लेख इस प्रकार है : **इति विजयानन्दविरचिते कातन्त्रोत्तरे विद्यानन्दापरनाम्नि तद्धित-प्रकरणं समाप्तम्, सं० १२०८।**

कातन्त्रविस्तर :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर रचे गये 'कातन्त्रविस्तर' ग्रन्थ के कर्ता वर्धमान हैं। आरा के विद्याभवन में इसकी अपूर्ण हस्तलिखित प्रति है, जो मूडबिद्री के जैनमठ के ग्रंथ-भडार की एकमात्र तालपत्रीय प्रति से नकल की गई है। इसकी रचना वि० स० १४५८ से पूर्व मानी जाती है।

स्व० बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर ने 'जैन सिद्धात-भास्कर' भा० २ मे 'धार्मिक उदारता' शीर्षक अपने लेख में इन वर्धमान को श्वेताबर बताया है। यह किस आधार से लिखा है, इसका निर्देश उन्होने नहीं किया।

गुजरात के राजा कर्णदेव के पुरोहित के एक शिष्य का नाम वर्धमान था, जिन्होने केदार भट्ट के 'वृत्तरत्नाकर' पर टीका ग्रन्थ की रचना की थी। ग्रन्थ की समाप्ति मे इस प्रकार लिखा है : **'इति श्रीमत्कर्णदेवोपाध्यायश्रीवर्धमान-विरचिते कातन्त्रविस्तरे'· · · ·।**

चुरु के यति ऋद्धिकरणजी के भडार मे इसकी प्रति है।

बालबोध-व्याकरण :

'जैन ग्रन्थावली' (पृ० २९७) के अनुसार अञ्चलगच्छीय मेरुतुगसूरि ने कातन्त्र-सूत्रो पर इस 'बालबोधव्याकरण' की रचना वि० स० १४४४ मे ८ अध्यायों मे २७५ श्लोक-प्रमाण की है। इसमे कहा गया है कि वि० १५ वीं शती में विद्यमान मेरुतुग ने ४८० और ५७९ श्लोक-प्रमाण एक-एक वृत्ति की रचना की है। उनमे प्रथम वृत्ति छः पादात्मक है। उन्होने २११८ श्लोक-प्रमाण 'चतुष्क-टिप्पण' और ७६७ श्लोक-प्रमाण 'कृद्वृत्ति-टिप्पण' की रचना भी की है। तदुपरात १७३४ श्लोक-प्रमाण 'आख्यातवृत्ति-ढुढिका' और २२९ श्लोक-प्रमाण 'प्राकृत-वृत्ति' की रचना की है। इन सातों ग्रन्थो की हस्तलिखित प्रतिया पाटन के भडार मे विद्यमान है।

कातन्त्रदीपक-वृत्ति :

'कातन्त्रव्याकरण' पर मुनीश्वरसूरि के शिष्य हर्षचन्द्र ने 'कातन्त्रदीपक' नाम से वृत्ति की रचना की है। मंगलाचरण जैन है, कर्ता हर्षचन्द्र है या अन्य कोई यह निश्चित रूप से जानने में नहीं आया। इसकी हस्तलिखित प्रति बीकानेर स्टेट लायब्रेरी में है।

कातन्त्रभूषण :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर आचार्य धर्मघोषसूरि ने २४००० श्लोक प्रमाण 'कातन्त्रभूषण' नामक व्याकरणग्रन्थ की रचना की है, ऐसा 'बृहट्टिप्पणिका' में उल्लेख है।

वृत्तित्रयनिबंध :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर आचार्य राजशेखरसूरि ने 'वृत्तित्रयनिबंध' नामक ग्रन्थ की रचना की है, ऐसा उल्लेख 'बृहट्टिप्पणिका' में है।

कातन्त्रवृत्ति-पञ्जिका :

'कातन्त्रव्याकरण' की 'कातन्त्रवृत्ति' पर आचार्य जिनेश्वरसूरि के शिष्य सोमकीर्ति ने पञ्जिका की रचना की है। इसकी प्रति जैसलमेर के भण्डार में है।

कातन्त्ररूपमाला :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर दिगम्बर भावसेन त्रैविद्य ने 'कातन्त्र-रूपमाला' की रचना की है।[1]

कातन्त्ररूपमाला-लघुवृत्ति :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर रची गई 'कातन्त्र-रूपमाला' पर 'लघु-वृत्ति' की रचना किसी दिगम्बर मुनि ने की है। इसका उल्लेख 'दिगम्बर जैन ग्रन्थकर्ता और उनके ग्रन्थ' पृ० ३० में है।

पृथ्वीचन्द्रसूरि नामक किसी जैनाचार्य ने भी इस पर टीका का निर्माण किया है। इनके बारे में अधिक ज्ञात नहीं हुआ है।

१. कातन्त्रविभ्रम-टीका :

'हैमविभ्रम' में छपी हुई मूल २१ कारिकाओं पर आचार्य जिनप्रभसूरि ने योगिनीपुर (देहली) में कायस्थ खेतल की विनती से इस टीका की रचना वि० सं० १३५२ में की है।

---

१. यह ग्रंथ जैन सिद्धांतभवन, आरा से प्रकाशित है।

मूल कारिका के कर्ता कौन थे, यह ज्ञात नहीं हुआ है। कारिकाओं मे व्याकरण के विषय में भ्रम उत्पन्न करने वाले कई प्रयोगों को निबद्ध किया गया है। टीकाकार आचार्य जिनप्रभसूरि ने 'कातन्त्र' के सूत्रों द्वारा प्रयोगों को सिद्ध करके भ्रम निरास करने का प्रयत्न किया है।

आचार्य जिनप्रभसूरि लघुखरतरगच्छ के प्रवर्त्तक आचार्य जिनसिंहसूरि के शिष्य थे। वे असाधारण प्रतिभाशाली विद्वान् थे। उन्होंने अनेक ग्रंथो की रचना की है। उनका यह अभिग्रह था कि प्रतिदिन एक स्तोत्र की रचना करके ही निरवद्य आहार ग्रहण करूँगा। इनके यमक, श्लेष, चित्र, छन्दविशेष आदि नई-नई रचनाशैली से रचे हुए कई स्तोत्र प्राप्त है। इन्होंने इस प्रकार ७०० स्तोत्र तपागच्छीय आचार्य सोमतिलकसूरि को भेंट किये थे। इनके रचे हुए ग्रंथो और कुछ स्तोत्रो के नाम इस प्रकार हैं

गौतमस्तोत्र,
चतुर्विंशतिजिनस्तुति,
चतुर्विंशतिजिनस्तव,
जिनराजस्तव
द्व्यक्षरनेमिस्तव,
पञ्चपरमेष्ठिस्तव,
पार्श्वस्तव,
वीरस्तव,
शारदास्तोत्र,
सर्वज्ञभक्तिस्तव,
सिद्धान्तस्तव,
ज्ञानप्रकाश,
धर्माधर्मविचार,
परमसुखद्वात्रिंशिका
प्राकृत-संस्कृत-अपभ्रंशकुलक
चतुर्विधभावनाकुलक
चैत्यपरिपाटी,
तपोटमतकुट्टन,
नर्मदासुन्दरीसंधि,
नेमिनाथजन्माभिषेक,
मुनिसुव्रतजन्माभिषेक,
षट्पञ्चाशद्दिक्कुमारिकाभिषेक
नेमिनाथरास,
प्रायश्चित्तविधान,
युगादिजिनचरित्रकुलक,
स्थूलभद्रफाग,
अनेक-प्रबन्ध अनुयोग-चतुष्कोपेतगाथा,
विविधतीर्थकल्प (सं० १३२७ से १३८९ तक),
आवश्यकसूत्रावचूरि (षडावश्यकटीका),
सूरिमन्त्रप्रदेशविवरण,
द्व्याश्रयमहाकाव्य (श्रेणिकचरित) (सं० १३५६),
विधिप्रपा (सामाचारी) (सं० १३६३),
संदेहविषौषधि (कल्पसूत्रवृत्ति) (सं० १३६४),
साधुप्रतिक्रमणसूत्र वृत्ति,

अजितशान्ति-उपसर्गहरस्तोत्र, भयहरस्तोत्र आदि सप्तस्मरण टीका। (सं० १३६५)।

अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका की स्याद्वादमञ्जरी नामक टीका-ग्रन्थ की रचना में आचार्य जिनप्रभसूरि ने सहायता की थी। सं० १४०५ में 'प्रबन्धकोश' के कर्ता राजशेखरसूरि की 'न्यायकन्दली' में और रुद्रपल्लीय संघतिलकसूरि की सं० १४२२ में रचित 'सम्यक्त्वसप्तति-वृत्ति' में भी सहायता की थी।

दिल्ली का साहिमहम्मद आचार्य जिनप्रभसूरि को गुरु मानता था।

२. कातन्त्रविभ्रम-टीका :

दूसरी 'कातन्त्रविभ्रम-टीका' चारित्रसिंह नामक मुनि ने वि० सं० १६३५ में रची है। इसकी प्रति जैसलमेर-भंडार में है। कर्ता के विषय में कुछ ज्ञात नहीं हुआ है।

कातन्त्रव्याकरण पर इनके अलावा त्रिलोचनदासकृत 'वृत्तिविवरणपञ्जिका', गोल्हणकृत 'चतुष्कवृत्ति', मोक्षेश्वरकृत 'आख्यातवृत्ति' आदि टीकाएँ भी प्राप्त हैं। 'कालापकविशेषव्याख्यान' भी मिलता है। एक 'कौमारसमुच्चय' नाम की ३१०० श्लोकप्रमाण पद्यात्मक टीका भी मिलती है।

सारस्वत-व्याकरण :

'सारस्वत व्याकरण' के रचयिता का नाम है अनुभूतिस्वरूपाचार्य। वे कब हुए यह निश्चित नहीं है। अनुमान है कि वे करीब १५ वीं शताब्दी में हुए थे। जैनेतर होने पर भी जैनों में इस व्याकरण का पठन-पाठन विशेष होता रहा है, यही इसकी लोकप्रियता का प्रमाण है। इसमें कुल ७०० सूत्र हैं। रचना सरल और सहजगम्य है। इस पर कई जैन विद्वानों ने टीका-ग्रन्थों की रचना की है। यहाँ २३ जैन विद्वानों की टीकाओं का परिचय दिया जा रहा है।

सारस्वतमण्डन :

श्रीमालज्ञातीय मन्त्री मंडन ने भिन्न-भिन्न विषयों पर मंडनान्तसंज्ञक कई ग्रंथों की रचना की है। इनमें 'सारस्वतमण्डन' नाम से 'सारस्वत-व्याकरण' पर एक टीका की रचना १५ वीं शताब्दी में की है।[1]

---

१. इस ग्रंथ की प्रतियाँ बीकानेर, बालोतरा और पाटन के भंडारों में हैं।

यशोनन्दिनी :

'सारस्वतव्याकरण' पर दिगंबर मुनि धर्मभूषण के शिष्य यशोनन्दी नामक मुनि ने अपने नाम से ही 'यशोनन्दिनी'[1] नामक टीका की रचना की है। रचना-समय ज्ञात नहीं है। कर्ता ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

राजद्राजविराजमालचरणश्रीधर्मसद्भूषण- ।
स्तत्पट्टोदयभूधरद्युमणिना श्रीमद्यशोनन्दिना ॥

विद्वच्चिन्तामणि :

'सारस्वतव्याकरण' पर अंचलगच्छीय कल्याणसागर के शिष्य मुनि विनयसागरसूरि ने 'विद्वच्चिन्तामणि' नामक पद्यबद्ध टीका-ग्रन्थ की रचना की है। इसमें कर्ता ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

श्रीविधिपक्षगच्छेशाः सूरिकल्याणसागराः ।
तेषां शिष्यैर्वराचार्यैः सूरिविनयसागरैः ॥ २४ ॥
सारस्वतस्य सूत्राणां पद्यबन्धैर्विनिर्मितः ।
विद्वच्चिन्तामणिग्रन्थः कण्ठपाठस्य हेतवे ॥ २५ ॥

अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामदिर में इसकी वि. स. १८३७ में लिखित ५ पत्रों की प्रति है।

दीपिका (सारस्वतव्याकरण-टीका) :

'सारस्वतव्याकरण' पर विनयसुन्दर के शिष्य मेघरत्न ने वि० स० १५३६ में 'दीपिका' नामक वृत्ति की रचना की है, इसे कहीं 'मेघीवृत्ति' भी कहा है। इन्होंने अपना नाम इस प्रकार बताया है :

नत्वा पार्श्वं गुरुमपि तथा मेघरत्नाभिधोऽहम् ।
टीकां कुर्वे विमलमनसं भारतीप्रक्रियां ताम् ॥

इस ग्रन्थ की वि० स० १८८६ मे लिखित १६२ पत्रो की प्रति (स० ५९७८) और १७ वीं सदी में लिखी हुई ६८ पत्रों की प्रति (स० ५९७९) अहमदाबाद-स्थित लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर में है।

---

१. इसकी वि० सं० १६९५ में लिखित १० पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर के भंडार में है।

सारस्वतरूपमाला :

'सारस्वतव्याकरण' पर पद्मसुन्दरगणि ने 'सारस्वतरूपमाला' नामक कृति बनाई है। इसमें धातुओं के रूप बताये हैं। इस विषय में ग्रन्थकार ने स्वयं लिखा है :

'सारस्वतक्रियारूपमाला श्रीपद्मसुन्दरैः।
संदृब्धाऽलंक्रोत्वेषा सुधियां कण्ठकन्दली ॥'

अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में इसकी वि० सं० १७४० में लिखित ५ पत्रों की प्रति है।

क्रियाचन्द्रिका :

'सारस्वतव्याकरण' पर खरतरगच्छीय गुणरत्न ने वि० सं० १६४१ में 'क्रियाचन्द्रिका' नामक वृत्ति की रचना की है, जिसकी प्रति बीकानेर के भुवनभक्ति भंडार में है।

रूपरत्नमाला :

'सारस्वतव्याकरण' पर तपागच्छीय भानुमेरु के शिष्य मुनि नयसुन्दर ने वि० सं० १७७६ में 'रूपरत्नमाला' नामक प्रयोगों की साधनिकारूप रचना १४००० श्लोक प्रमाण की है। इसकी एक प्रति बीकानेर के कृपाचन्द्रसूरि ज्ञान भंडार में है। दूसरी प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है। इसके अन्त में ४० श्लोकों की प्रशस्ति है। उसमें उन्होंने इस प्रकार निर्देश किया है :

प्रथिता नयसुन्दर इति नाम्ना वाचकवरेण च तस्याम्।
सारस्वतस्थितानां सूत्राणां वार्तिकं त्वलिखत् ॥ ३७ ॥
श्रीसिद्धहेम-पाणिनिसम्मतिमाधाय साधकाः लिखिताः।
ये साधवः प्रयोगास्ते शिशुहितहेतवे सन्तु ॥ ३८ ॥
गुहवक्त्र-हयविन्दु (१७७६) प्रमितेऽब्दे शुक्लतिथिराकायाम्।
सद्रूपरत्नमाला समर्थिता शुद्धपुष्यार्के ॥ ३५ ॥

धातुपाठ-धातुतरङ्गिणी :

'सारस्वतव्याकरण' सम्बन्धी 'धातुपाठ' की रचना नागोरीतपागच्छीय आचार्य हर्षकीर्तिसूरि ने की है और उसपर 'धातुतरंगिणी' नाम से स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना भी उन्होंने की है। ग्रन्थकार ने लिखा है :

धातुपाठस्य टीकेयं नाम्ना धातुतरङ्गिणी।
प्रक्षालयतु विज्ञानामज्ञानमलमान्तरम् ॥

इसमे 'सारस्वतव्याकरण' के अनुसार धातुपाठ के १८९१ धातुओं के रूप दिये गये है।

इस ग्रन्थ की वि० स० १६६६ मे लिखित ७६ पत्रो की प्रति स० ६००८ पर और वि० सं० १७९५ मे लिखी हुई ५७ पत्रो की प्रति स० ६००९ पर अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर में है।

वृत्ति :

'सारस्वतव्याकरण' पर खरतरगच्छीय मुनि सहजकीर्ति ने लक्ष्मीकीर्ति मुनि की सहायता से वि. स. १६८१ मे एक वृत्ति की रचना की है। उसकी एक प्रति बीकानेर के श्रीपूज्यजी के भंडार मे और दूसरी प्रति वहीं के चतुर्भुजजी भंडार में है।

सुबोधिका :

'सा० व्या०' पर नागपुरीय तपागच्छ के आचार्य चन्द्रकीर्तिसूरि ने 'सुबोधिका' नामकी वृत्ति वि. स. १६२३ में बनाई है। विद्यार्थियो में इस वृत्ति का पठन-पाठन अधिक है। वृत्तिकार ने कहा है :

स्वल्पस्य सिद्धस्य सुबोधकस्य सारस्वतव्याकरणस्य टीकाम्।
सुबोधिकाख्यां रचयाञ्चकार सूरीश्वरः श्रीप्रभुचन्द्रकीर्तिः ॥१०॥
गुण-पक्ष-कलासंख्ये वर्षे विक्रमभूपतेः।
टीका सारस्वतस्यैषा सुगमार्था विनिर्मिता ॥ ११ ॥

यह ग्रन्थ कई स्थानो से प्रकाशित है।

प्रक्रियावृत्ति :

'सा० व्या०' पर खरतरगच्छीय मुनि विशालकीर्ति ने 'प्रक्रियावृत्ति' नामक वृत्ति की रचना १७ वीं शताब्दी में की है, जिसकी प्रति बीकानेर के श्री अगरचदजी नाहटा के सग्रह में है।

वृत्ति :

'सा० व्या०' पर क्षेमेन्द्र ने जो टीका रची है उसपर तपागच्छीय उपाध्याय भानुचन्द्र ने १७ वीं सदी मे एक वृत्ति—विवरण की रचना की है, जिसकी हस्तलिखित प्रतिया पाटन और छाणी के ज्ञानभडारों मे है।

टीका :

'सा० व्या०' पर तपागच्छीय उपाध्याय भानुचन्द्र के शिष्य देवचन्द्र ने श्लोकबद्ध टीका की रचना की है, जिसकी प्रति बीकानेर के श्री अगरचंदजी नाहटा के संग्रह में है।

टीका :

'सा० व्या०' पर यतीश नामक विद्वान् ने एक टीका रची है, ऐसा उल्लेख मुनि श्री चतुरविजयजी के 'जैनेतर साहित्य अने जैनो' लेख में है। यह टीकाग्रन्थ सहजकीर्तिरचित टीका हो, ऐसी संभावना है।

वृत्ति :

'सारस्वत-व्याकरण' पर हर्षकीर्तिसूरि रचित किसी वृत्ति का उल्लेख मुनि श्री चतुरविजयजी के 'जैनेतर साहित्य और जैन' लेख में है। इस वृत्ति का नाम शायद 'दीपिका' हो।

चन्द्रिका :

'सारस्वत-व्याकरण' पर मुनि श्री मेघविजयजी ने 'चन्द्रिका' नामक टीका की रचना की है। समय निश्चित नहीं है। इसका उल्लेख 'पंजाब-भंडार सूची भा० १' में है।

पंचसंधि-बालावबोध :

'सारस्वतव्याकरण' पर उपाध्याय राजसी ने १८ वीं शताब्दी में 'पंचसंधि-बालावबोध' नामक टीका की रचना की है। इसकी प्रति बीकानेर के खरतर आचार्य शाखा भंडार में है।

टीका :

'सारस्वत-व्याकरण' पर मुनि धनसागर ने 'धनसागरी' नामक टीका ग्रन्थ की रचना की है, ऐसा उल्लेख 'जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास' में है।

भाषाटीका :

'सारस्वत-व्याकरण' पर मुनि आनन्दनिधान ने १८ वीं शताब्दी में भाषा-टीका की रचना की है, जिसकी प्रति भीनासर के बहादुरमल बांठिया के संग्रह में है।

न्यायरत्नावली :

'सारस्वत-व्याकरण' पर खरतरगच्छीय आचार्य जिनचन्द्रसूरि के शिष्य दयारत्न मुनि ने इसमे प्रयुक्त न्यायों पर 'न्यायरत्नावली' नामक विवरण वि. स. १६२६ मे लिखा है जिसकी वि० स० १७३७ में लिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर में है।

पंचसंधिटीका :

'सारस्वत-व्याकरण' पर सोमशील नामक मुनि ने 'पचसंधि-टीका' की रचना की है। समय ज्ञात नहीं है। इसकी प्रति पाटन के भंडार में है।

टीका :

'सारस्वत-व्याकरण' पर सत्यप्रबोध मुनि ने एक टीका ग्रन्थ की रचना की है। इसका समय ज्ञात नहीं है। इसकी प्रतियां पाटन और लींबड़ी के भडारों में हैं।

शब्दप्रक्रियासाधनी-सरलाभाषाटीका :

'सारस्वतव्याकरण' पर आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि ने २० वीं शताब्दी मे 'शब्दप्रक्रियासाधनीसरलाभाषाटीका' नामक टीकाग्रन्थ की रचना की है, जिसका उल्लेख उनके चरितलेखों में प्राप्त होता है।

सिद्धान्तचन्द्रिका-व्याकरण :

'सिद्धान्तचन्द्रिका-व्याकरण' के मूल रचयिता रामचन्द्राश्रम हैं। वे कब हुए, यह अज्ञात है। जैनेतरकृत व्याकरण होने पर भी कई जैन विद्वानो ने इस पर वृत्तियाँ रची है।

सिद्धान्तचन्द्रिका-टीका :

'सिद्धान्तचन्द्रिका' व्याकरण पर आचार्य जिनरत्नसूरि ने टीका की रचना की है। यह टीका छप चुकी है।

वृत्ति :

'सिद्धान्तचन्द्रिका' व्याकरण पर खरतरगच्छीय कीर्तिसूरि शाखा के सदानन्द मुनि ने वि० स० १७९८ मे वृत्ति की रचना की है जो छप चुकी है।

सुबोधिनी :

'सिद्धान्तचन्द्रिका' पर खरतरगच्छीय रूपचन्द्रजी ने १८ वीं शती में 'सुबोधिनी-टीका' (३४९४ श्लोकात्मक) की रचना की है, जिसकी प्रति बीका-नेर के एक भडार में है।

वृत्ति :

'सिद्धान्तचन्द्रिका' व्याकरण पर खरतरगच्छीय मुनि विजयवर्धन के शिष्य ज्ञानतिलक ने १८ वीं शताब्दी में वृत्ति की रचना की है, जिसकी प्रतियाँ बीकानेर के महिमाभक्ति भडार और अबीरजी के भडार में हैं।

अनिट्कारिका-अवचूरि :

श्री क्षमामाणिक्य मुनि ने 'अनिट्कारिका' पर १८ वीं शताब्दी में 'अव-चूरि' की रचना की है। इसकी हस्तलिखित प्रति बीकानेर के श्रीपूज्यजी के भडार में है।

अनिट्कारिका-स्वोपज्ञवृत्ति :

नागपुरीय तपागच्छ के हर्षकीर्तिसूरि ने १७ वीं शताब्दी में 'अनिट्कारिका' नामक ग्रथ की रचना वि० स० १६६२ में की है और उस पर वृत्ति की रचना स० १६६९ में की है। उसकी प्रति बीकानेर के दानसागर भडार में है।

भूधातु-वृत्ति :

खरतरगच्छीय क्षमाकल्याण मुनि ने वि० स० १८२८ मे 'भूधातु वृत्ति' की रचना की है। उसकी हस्तलिखित प्रति राजनगर के महिमाभक्ति भडार में है।

मुग्धावबोध-औक्तिक :

तपागच्छीय आचार्य देवसुन्दरसूरि के शिष्य कुलमण्डनसूरि ने 'मुग्धाव-बोध-औक्तिक' नामक कृति की रचना १५ वीं शताब्दी में की है। कुलमण्डन-सूरि का जन्म वि० स० १४०९ में और स्वर्गवास स० १४५५ मे हुआ था। उसी के दरमियान इस ग्रथ की रचना हुई है।

गुजराती भाषा द्वारा सस्कृत का शिक्षण देने का प्रयास जिसमें हो वैसी रचनाएँ 'औक्तिक' नाम से कही जाती हैं।

इस औक्तिक में ६ प्रकरण केवल सस्कृत में हैं। प्रथम, द्वितीय, सातवें और आठवें प्रकरणों में सूत्र और कारिकाएँ सस्कृत में हैं और विवेचन प्राकृत याने जूनी गुजराती में। तीसरा, चौथा, पाँचवा, छठा और नवा प्रकरण जूनी गुजराती

मे है। नाम की विभक्तियो के उदाहरणार्थ जयानदमुनिरचित 'सर्वजिनसाधारण-स्तोत्र' दिया गया है।

सस्कृत उक्ति याने बोलने की रीति के नियम इस व्याकरण में दिये गये हैं। कर्ता, कर्म और भावी उक्तियो का इसमें मुख्यतया विवेचन किया गया है इसलिये इसे औक्तिक नाम दिया गया है।

'मुग्धावबोध-औक्तिक' मे विभक्तिविचार, कृदतविचार, उक्तिभेद और शब्दो का सग्रह है। 'प्राचीन गुजराती गद्यसदर्भ' पृ० १७२–२०४ में यह छपा है।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं :

१. विचारामृतसग्रह (रचना वि० स० १४४३)
२. सिद्धान्तालापकोद्धार
३. कायस्थितिस्तोत्र
४. 'विश्वश्रीद्ध' स्तव (इसमें अष्टादशचक्रविभूषित वीरस्तव है।)
५. 'गरीयोगुण' स्तव (इसको पचजिनहारबधस्तव भी कहते हैं।)
६. पर्युषणाकल्प-अवचूर्णि
७. प्रतिक्रमणसूत्र-अवचूर्णि
८. प्रज्ञापना-तृतीयपदसंग्रहणी

बालशिक्षा :

श्रीमाल ठक्कुर कूरसिंह के पुत्र सग्रामसिंह ने 'कातन्त्रव्याकरण' का बोध कराने के हेतु 'बालशिक्षा' नामक औक्तिक की रचना वि० स० १३३६ में की थी।[१]

वाक्यप्रकाश :

बृहत्तपागच्छीय रत्नसिंहसूरि के शिष्य उदयधर्म ने वि० स० १५०७ मे 'वाक्यप्रकाश' नामक औक्तिक की रचना सिद्धपुर मे की है। इसमे १२८ पद्य हैं।

इसका उद्देश्य गुजराती द्वारा संस्कृत भाषा का व्याकरण सिखाने का है। इसलिए यहाँ कई पद्य गुजराती मे देकर उसके साथ सस्कृत में अनुवाद

---

१. इस ग्रंथ का कुछ सदर्भ 'पुरातत्त्व' (पु० ३, अंक १, पृ० ४०-५३) में पं० लालचन्द्र गांधी के लेख में छपा है। यह ग्रथ अभी अप्रकाशित है।

दिया गया है। कृति का आरभ 'प्राध्वर' और 'वक्र' इन उक्ति के दो प्रकारों और उपप्रकारो से किया गया है। कर्तरि और कर्मणि को गिनाकर उदाहरण दिये गए हैं। इसके बाद गणज, नामज और सौत्र (कण्डवादि)—ये तीन प्रकार धातु के बताये हैं। परस्मैपदी धातु के तीन भेदो का निर्देश है। 'वर्तमान' वगैरह १० विभक्तियों, तद्धित प्रत्यय और समास की जानकारी दी गई है।

इन्होंने 'सन्नमत्रिदश' से प्रारम्भ होनेवाले द्वात्रिंशद्दलकमलबंध-महावीरस्तव की रचना की है।[1]

(क) इस 'वाक्यप्रकाश' पर सोमविमल (हेमविमल) सूरि के शिष्य हर्षकुल ने टीका की रचना वि० स० १५८३ के आसपास की है।

(ख) कीर्तिविजय के शिष्य जिनविजय ने स० १६९४ मे इस पर टीका रची है।

(ग) रत्नसूरि ने पर इस टीका लिखी है, ऐसा 'जैन ग्रथावली' पृ० ३०७ मे उल्लेख है।

(घ) किसी अज्ञात मुनि ने 'श्रीमज्जिनेन्द्रमानम्य' से प्रारभ होनेवाली टीका की रचना की है।

उक्तिरत्नाकर :

पाठक साधुकीर्ति के शिष्य साधुसुन्दरगणि ने वि० स० १६८० के आसपास मे 'उक्तिरत्नाकर' नामक औक्तिक ग्रथ की रचना की है। अपनी देशभाषा मे प्रचलित देश्य रूपवाले शब्दो के सस्कृत प्रतिरूपों का ज्ञान कराने के हेतु इस ग्रथ का सकलन किया है।

इसमे षट्कारक विषय का निरूपण है। विद्यार्थियो को विभक्ति-ज्ञान के साथ साथ कारक के अर्थों का ज्ञान भी इससे हो जाता हैं। इसमे २४०० देश्य शब्द और उनके सस्कृत प्रतिरूप दिये गये हैं।

साधुसुन्दरगणि ने १ धातुरत्नाकर, २. शब्दरत्नाकर और ३. (जैसलमेर के किले मे प्रतिष्ठित) पार्श्वनाथस्तुति की रचना की है।

---

१. जैन स्तोत्र-समुच्चय, पृ० २६५–६६ में यह स्तोत्र छपा है।

उक्तिप्रत्यय :

मुनि धीरसुन्दर ने 'उक्तिप्रत्यय' नामक औक्तिक व्याकरण की रचना की है, जिसकी हस्तलिखित प्रति सूरत के भडार में है। यह ग्रथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

उक्तिव्याकरण :

'उक्तिव्याकरण' नामक ग्रथ की रचना किसी अज्ञात विद्वान् ने की है। उसकी हस्तलिखित प्रति सूरत के भडार मे है।

प्राकृत-व्याकरण :

स्वाभाविक बोल-चाल की भाषा को 'प्राकृत' कहते हैं।[1] प्रदेशो की अपेक्षा से प्राकृत के अनेक भेद हैं। प्राकृत व्याकरणो से और नाटक तथा साहित्य के ग्रन्थो से उन-उन भेदो का पता लगता है।

भगवान् महावीर और बुद्ध ने बाल, स्त्री, मन्द और मूर्ख लोगो के उपकारार्थ धर्मज्ञान का उपदेश प्राकृत भाषा में ही दिया था। उनके दिये गये उपदेश आगम और त्रिपिटक आदि धर्मग्रन्थो मे सगृहीत हैं।[2] संस्कृत के नाट्य-साहित्य मे भी स्त्रियो और सामान्य पात्रों के सवाद प्राकृत भाषा मे ही निबद्ध है। जैन और बौद्ध साहित्य समझने के लिये और प्रान्तीय भाषाओ का विकास जानने के लिये प्राकृत और अपभ्रश भाषा के ज्ञान की नितात आवश्यकता है। उस आवश्यकता को पूरी करने के लिये प्राचीन आचार्यों ने सस्कृत भाषा मे ही प्राकृत भाषा के अनेक ग्रन्थ निर्मित किये हैं। प्राकृत भाषा मे कोई व्याकरण-ग्रथ प्राप्त नहीं है।

प्राकृत भाषा के वैयाकरणो ने अपने पूर्व के वैयाकरणों की शैली को अपनाकर और अपने अनुभूत प्रयोगो को बढाकर व्याकरणो की रचना की है। इन्होने अपने-अपने प्रदेश की प्राकृत भाषा को महत्त्व देकर जिन व्याकरणग्रन्थो की रचना की है वे आज उपलब्ध हैं।

---

१. सकलजगज्जन्तूना व्याकरणादिभिरनाहितसस्कारः सहजो वचनव्यापारः प्रकृति., तत्र भव सैव वा प्राकृतम्।

२. बाल-स्त्री-मूढ-मूर्खाणा नृणां चारित्रकाङ्क्षिणाम्।
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धान्तः प्राकृतः कृत.॥

जिन जैन विद्वानो ने प्राकृत व्याकरणग्रन्थ निर्माणकर भारतीय साहित्य की श्रीवृद्धि मे अपना अमूल्य योग प्रदान किया है उनके सबध मे यहाँ विचार करेगे।

प्राकृत भाषा के साथ-साथ अपभ्रश भाषा का विचार भी यहा आवश्यक जान पड़ता है। प्राकृत का अन्त्य स्वरूप और प्राचीन देशी भाषाओ से सीधा सबंध रखनेवाली भाषा ही अपभ्रश है। इस भाषा का व्याकरणस्वरूप छठी-सातवीं शताब्दी से ही निश्चित हो चुका था। महाकवि स्वयभू ने अपभ्रश भाषा के 'स्वयभू व्याकरण' की रचना ८ वीं शताब्दी मे की थी जो आज उपलब्ध नहीं है। इस समय से ही अपभ्रश भाषा मे स्वतन्त्र साहित्य का व्यवस्थित निर्माण होते-होते वह विस्तृत और विपुल बनता गया और यह भाषा साहित्यिक भाषा का स्थान प्राप्त कर सकी। इस साहित्य को देखते हुए पुरानी गुजराती, राजस्थानी आदि देशी भाषाओ का इसके साथ निकटतम सम्बन्ध है, ऐसा निःसशय कह सकते हैं। गुजरात, मारवाड़, मालवा, मेवाड़ आदि प्रदेशों के लोग अपभ्रश भाषा में ही रुचि रखते थे।[1]

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने समय के प्रवाह को देखकर करीब १२० सूत्रो मे 'अपभ्रश-व्याकरण' की रचना की है, जो उपलब्ध व्याकरणो में विस्तृत और उत्कृष्ट माना गया है।

---

१. गौडोद्या. प्रकृतस्था. परिचितरुचय. प्राकृते लाटदेश्याः,
सापभ्रशप्रयोगा. सकलमरुभुवष्टक्क-भादानकाश्च।
आवन्त्या पारियात्रा सहदशपुरजैर्भूतभाषा भजन्ते,
यो मध्ये मध्यदेश निवसति स कवि. सर्वभाषानिषण्ण. ॥

राजशेखर—काव्यमीमांसा, अध्याय ९-१०, पृ० ४८-५१.

पठन्ति लटभ लाटा प्राकृतं सस्कृतद्विपः।
अपभ्रशेन तुष्यन्ति स्वेन नान्येन गूर्जरा. ॥

भोजदेव—सरस्वतीकण्ठाभरण, २-१३

सुराष्ट्र-त्रवणाद्याश्च पठन्त्यर्पितसौष्ठवम्।
अपभ्रशवदशानि ते संस्कृतवचांस्यपि ॥

राजशेखर—काव्यमीमासा, पृ० ३४.

अनुपलब्ध प्राकृत-व्याकरण :

१. दिगम्बर आचार्य समन्तभद्र ने 'प्राकृतव्याकरण' की रचना की थी ऐसा उल्लेख मिलता है[1] परन्तु उनका व्याकरण उपलब्ध नहीं हुआ है।

२. धवलाकार दिगम्बराचार्य वीरसेन ने अज्ञातकर्तृक पद्यात्मक 'प्राकृत-व्याकरण' के सूत्रो का उल्लेख किया है परन्तु यह व्याकरण भी प्राप्त नहीं हुआ है।

३. श्वेताम्बराचार्य देवसुन्दरसूरि ने 'प्राकृत-युक्ति' नामक प्राकृत-व्याकरण की रचना की थी, जिसका उल्लेख 'जैन ग्रथावली' पृ० ३०७ पर है। यह व्याकरण भी देखने मे नहीं आया।

प्राकृतलक्षण :

चण्ड नामक विद्वान् ने 'प्राकृतलक्षण' नाम से तीन और दूसरे मत से चार अध्यायों मे प्राकृतव्याकरण की रचना की है, जो उपलब्ध व्याकरणो मे सक्षिप्ततम और प्राचीन है। इसमें सब मिलाकर ९९ और दूसरे मत से १०३ सूत्रों मे प्राकृत भाषा का विवेचन किया गया है।

आदि में भगवान् वीर को नमस्कार करने से और 'अर्हन्त' (२४, ४६), 'जिनवर' (४८) का उल्लेख होने से चण्ड का जैन होना सिद्ध होता है। चण्ड ने अपने समय के वृद्धमतो का निरीक्षण करके अपने व्याकरण की रचना की है।

प्राकृत शब्दों के तीन रूप—१. तद्भव, २. तत्सम और ३. देश्य सूचित कर लिङ्ग और विभक्तियो का विधान सस्कृतवत् बताया है। चौथे सूत्र मे व्यत्यय का निर्देश करके प्रथम पाद के ५ वें सूत्र से ३५ सूत्रो तक सज्ञा और विभक्तियो के रूप बताये है। 'अहम्' का 'हउ' आदेश, जो अपभ्रश का विशिष्ट रूप है, उस समय में प्रचलित था, ऐसा मान सकते है। द्वितीय पाद के २९ सूत्रो मे स्वरपरिवर्तन, शब्दादेश और अव्ययो का विधान है। तीसरे पाद के ३५ सूत्रो मे व्यजनो के परिवर्तनों का विधान है।

इन तीन पादो मे सूत्रसख्या ९९ होती है जिनमे व्याकरण समाप्त किया गया है। कई प्रतियो मे चतुर्थ पाद भी मिलता है, जो चार सूत्रो मे है। उसमे

---

1 A. N Upadhye : A Prakrit Grammar Attributed to Samantabhadra—Indian Historical Quarterly, Vol. XVII, 1942, pp 511-516

स्वयंभू-व्याकरण :

दिगम्बर महाकवि स्वयभू ने किसी अपभ्रश व्याकरण की रचना की थी, यह उनके रचे हुए 'पउमचरिय' महाकाव्य के निम्नोक्त उल्लेख से मालूम होता है.

तावच्चिय सच्छंदो भमइ अवब्भंस-मच्च-मायंगो।
जाव ण सयंभु-वायरण-अंकुसो पडइ॥

यह 'स्वयभूव्याकरण' उपलब्ध नहीं है। इसका नाम क्या था यह भी मालूम नहीं।

सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन-प्राकृतव्याकरण :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि (सन् १०८८ से ११७२) ने व्याकरण, साहित्य, अलकार, छन्द, कोश आदि कई शास्त्रों का निर्माण किया है। इनकी विविध विषयों के सर्वांगपूर्ण शास्त्रों के निर्माता के रूप मे प्रसिद्धि है। इसीलिये तो इनके समस्त साहित्य का अभ्यास परिशीलन करनेवाला सर्वशास्त्रवेत्ता होने की योग्यता प्राप्त कर सकता है। इनका 'प्राकृतव्याकरण'[1] 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' का आठवाँ अध्याय है। सिद्धराज को अर्पित करने से और हेमचन्द्ररचित होने से इसे 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' कहा गया है।

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने प्राचीन प्राकृत व्याकरणवाङ्मय का अवलोकन करके और देशी धातु प्रयोगों का धात्वादेशो मे सग्रह करके प्राकृत भाषाओं के अति विस्तृत और सर्वोत्कृष्ट व्याकरण की रचना की है। यह रचना अपने युग के

---

१. (क) डा० आर. पिशल—Hemachandra's Gramatik der Prakrit Sprachen (Siddha Hemachandra Adhyaya VIII,) Halle 1877, and Theil (uber Setzung and Erlauterungen), Halle, 1880 (in Roman script)
(ख) कुमारपाल-चरित के परिशिष्ट के रूप में—B S P. S. (XX), बबई, सन् १९००.
(ग) पूना, सन् १९२८, १९३६.
(घ) दलीचद पीतांबरदास, मीयागाम, वि० स० १९६१ (गुजराती अनुवादसहित).
(ङ) हिन्दी व्याख्यासहित—जैन दिवाकर दिव्यज्योति कार्यालय, ब्यावर, वि० स० २०२०.

प्राकृत भाषा के व्याकरण और साहित्यिक प्रवाह को लक्ष्य में रखकर ही की है। आचार्य ने 'प्राकृत' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए बताया है कि जिसकी प्रकृति संस्कृत है उससे उत्पन्न व आगत प्राकृत है। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि संस्कृत में से प्राकृत का अवतार हुआ। यहाँ आचार्य का अभिप्राय यह है कि संस्कृत के रूपों को आदर्श मानकर प्राकृत शब्दो का अनुशासन किया गया है। तात्पर्य यह है कि संस्कृत की अनुकूलता के लिये प्रकृति को लेकर प्राकृत भाषा के आदेशों की सिद्धि की गई है।

प्राकृत वैयाकरणो की पाश्चात्य और पौरस्त्य इन दो शाखाओं में आचार्य हेमचन्द्र पाश्चात्य शाखा के गणमान्य विद्वान् हैं। इस शाखा के प्राचीन वैयाकरण चण्ड आदि की परंपरा का अनुसरण करते हुए आचार्य हेमचंद्रसूरि के 'प्राकृतव्याकरण' में चार पाद हैं। प्रथम पाद के २७१ सूत्रों में संधि, व्यञ्जनान्त शब्द, अनुस्वार, लिंग, विसर्ग, स्वरव्यत्यय और व्यञ्जनव्यत्यय—इनका क्रमश: निरूपण किया गया है। द्वितीय पाद के २१८ सूत्रों में संयुक्त व्यञ्जनो के विपरिवर्तन, समीकरण, स्वरभक्ति, वर्णविपर्यय, शब्दादेश, तद्धित, निपात और अव्ययों का वर्णन है। तृतीय पाद के १८२ सूत्रों में कारक-विभक्तियों तथा क्रिया-रचना से संबंधित नियम बनाये गये हैं। चौथे पाद में ४४८ सूत्र हैं, जिनमें से प्रथम २५९ सूत्रों में धात्वादेश और शेष सूत्रों में क्रमशः शौरसेनी के २६० से २८६ सूत्र, मागधी के २८७ से ३०२, पैशाची के ३०३ से ३२४, चूलिका-पैशाची के ३२५ से ३२८ और फिर अपभ्रंश के ३२९ से ४४६ सूत्र हैं। अंत के समाप्ति-सूचक दो सूत्रों (४४७ और ४४८) में यह कहा गया है कि प्राकृतो में उक्त लक्षणों का व्यत्यय भी पाया जाता है तथा जो बात यहाँ नहीं बताई गई है वह 'संस्कृतवत्' सिद्ध समझनी चाहिये।

आचार्य हेमचंद्रसूरि ने आगम आदि (जो अर्धमागधी भाषा में लिखे गये हैं) साहित्य को लक्ष्य में रखकर तृतीय सूत्र व अन्य अनेक सूत्रों की वृत्ति में 'आर्ष प्राकृत' का उल्लेख किया है और उसके उदाहरण भी दिये हैं किन्तु वे बहुत ही अल्प प्रमाण में हैं। कश्चित्, केचित्, अन्ये आदि शब्दप्रयोगों से मालूम होता है कि अपने से पहले के व्याकरणों से भी सामग्री ली है। मागधी का विवेचन करते हुए कहा है कि अर्धमागधी में पुल्लिंग कर्ता के लिये एक वचन में 'अ' के स्थान में 'ए' कार हो जाता है। (वस्तुतः यह नियम मागधी भाषा के लिये लागू होता है।) अपभ्रंश भाषा का यहाँ विस्तृत विवेचन है। ऐसा विवेचन इतनी पूर्णता से कोई भी नहीं कर पाया है। अपभ्रंश के अनेक अज्ञात

ग्रन्थो से शृगार, वैराग्य और नीतिविषयक पूरे पद्य उद्धृत किये गये हैं जिनसे उस काल तक के अपभ्रंश साहित्य का अनुमान किया जा सकता है।

आचार्य हेमचद्र के बाद में होनेवाले त्रिविक्रम, श्रुतसागर, शुभचद्र आदि वैयाकरणों के प्राकृत व्याकरण मिलते हैं, परतु ये सब रचना-शैली व विषय की अपेक्षा से हेमचद्र से आगे नहीं बढ सके।

डा० पिशल ने वर्षों तक प्राकृत भाषा का अध्ययन कर और प्राकृत भाषा के तत्तद्विषयक सैकड़ों ग्रन्थो का अवलोकन, अध्ययन व परिशीलन करके प्राकृत भाषाओ का व्याकरण तैयार किया है। श्रीमती डोल्ची नित्ति ने 'Les Grammairiens Prakrits' मे प्राकृत भाषाओ का पर्याप्त परिशीलन करके आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखा है। आज की वैज्ञानिक दृष्टि से ऐसी आलोचनाएँ अनिवार्य एव अत्यन्त उपयोगी है परतु वैयाकरणों ने अपने समय की अल्प सामग्री की मर्यादा मे अपने युग की दृष्टि को ध्यान मे रखकर अनेक शब्द-प्रयोगो का सग्रह करके व्याकरणो का निर्माण किया है, यह नहीं भूलना चाहिये।

सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन (प्राकृतव्याकरण)-वृत्ति :

आचार्य हेमचद्रसूरि ने अपने 'प्राकृतव्याकरण' पर 'तत्त्वप्रकाशिका' नामक सुबोध वृत्ति (बृहद्वृत्ति) की रचना की है। इसमे अनेक ग्रन्थो से उदाहरण दिये गये हैं। यह वृत्ति मूल के साथ प्रकाशित हुई है।

हैमदीपिका (प्राकृतवृत्ति-दीपिका) :

'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' के ८ वे अध्याय पर १५०० श्लोक प्रमाण 'हैमदीपिका' अपर नाम 'प्राकृतवृत्ति-दीपिका' की रचना द्वितीय हरिभद्रसूरि ने की है। यह ग्रन्थ अनुपलब्ध है।

दीपिका :

'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' के ८ वे अध्याय पर जिनसागरसूरि ने ६७५० श्लोकात्मक 'दीपिका' नामक वृत्ति की रचना की है।

प्राकृतदीपिका :

आचार्य हरिप्रभसूरि ने 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' व्याकरण के अष्टमाध्याय मे आये हुए उदाहरणो की व्युत्पत्ति सूत्रों के निर्देशपूर्वक बताई है। इसकी २७

पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर के संग्रह में विद्यमान है।

आचार्य हरिप्रभसूरि के समय और गुरु के विषय में कुछ जानने में नहीं आया। इन्होंने अन्त में शान्तिप्रभसूरि के सम्प्रदाय से होने का उल्लेख इस प्रकार किया है :

इति श्रीहरिप्रभसूरिविरचितायां प्राकृतदीपिकायां चतुर्थः पादः समाप्तः।

मन्दमतिविनेयबोधहेतोः श्रीशान्तिप्रभसूरिसंप्रदायात्।
अस्यां बहुरूपसिद्धौ विदधे सूरिर्हरिप्रभः प्रयत्नम्॥

हैमप्राकृतढुंढिका :

'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के ८ वें अध्याय पर आचार्य सौभाग्यसागर के शिष्य उदयसौभाग्यगणि ने 'हैमप्राकृतढुंढिका' अपरनाम 'व्युत्पत्ति-दीपिका' नामक वृत्ति की रचना वि० सं० १५९१ में की है।[1]

प्राकृतप्रबोध (प्राकृतवृत्तिढुंढिका) :

'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के ८ वें अध्याय पर मलधारी उपाध्याय नरचन्द्रसूरि ने अवचूरिरूप ग्रन्थ की रचना की है। इसके अन्त में उन्होंने ग्रन्थ निर्माण का हेतु इस प्रकार बतलाया है :

नानाविधैर्विधुरिता विबुधैः स्वबुद्ध्या
तां रूपसिद्धिमखिलामवलोक्य शिष्यैः।
अभ्यर्थितो मुनिरनुज्झितसंप्रदाय—
मारम्भमेनमकरोन्नरचन्द्रनामा॥

इस ग्रन्थ में 'तत्त्वप्रकाशिका' (बृहद्वृत्ति) में निर्दिष्ट उदाहरणों की सूत्र-पूर्वक साधनिका की गई है। 'न्यायकन्दली' की टीका में राजशेखरसूरि ने इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रतियाँ अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर में हैं।

प्राकृतव्याकृति (पद्यविवृति) :

आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि ने आचार्य हेमचन्द्र के सूत्रों की स्वोपज्ञ सोदाहरण वृत्ति का पद्य में ग्रथित कर उसका 'प्राकृतव्याकृति' नाम रखा है।

---

1. यह वृत्ति भीमसिंह माणेक, बम्बई से प्रकाशित हुई है।

यह 'प्राकृतव्याकृति' आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि-निर्मित महाकाय सप्त-भागात्मक 'अभिधानराजेन्द्र' नामक कोश के प्रथम भाग[1] के प्रारम्भ मे प्रकाशित है।

दोधकवृत्ति :

'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के ८ वें अध्याय के चतुर्थ पाद मे जो 'अपभ्रश-व्याकरण' विभाग है उसके सूत्रो की बृहद्वृत्ति मे उदाहरणरूप जो 'दोग्धक-दोधक-दूहे' दिये गये है उस पर यह वृत्ति है।[2]

हैमदोधकार्थ :

'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के ८ वे अध्याय के 'अपभ्रश-व्याकरण' के सूत्रो की 'बृहद्वृत्ति' मे जो 'दूहे' रूप उदाहरण दिये गये हैं उनके अर्थों का स्पष्टीकरण इस ग्रन्थ मे है। 'जैन ग्रन्थावली' पृ० ३०१ मे इसकी १२ पत्रो की हस्तलिखित प्रति होने का उल्लेख है।

प्राकृत-शब्दानुशासन :

'प्राकृतशब्दानुशासन' के कर्ता त्रिविक्रम नामक विद्वान् है। इन्होने मगलाचरण मे वीर को नमस्कार किया है और 'धवला' के कर्ता वीरसेन और जिनसेन आदि आचार्यों का स्मरण किया है, इससे मालूम होता है कि ये दिगबर जैन थे। इन्होने त्रैविद्य अर्हन्नन्दि के पास बैठकर जैन शास्त्रो का अध्ययन किया था। इन्होने खुद को सुकविरूप मे उल्लिखित किया है परन्तु इनके किसी काव्यग्रन्थ का अभी तक पता नहीं लगा है। हॉ, इस 'प्राकृतव्याकरण' के सूत्रो को इन्होने पद्यो मे ग्रथित किया है जिससे इनके कवित्व की सूचना मिलती है।

विद्वानो ने त्रिविक्रम का समय ईसा की १३ वीं शताब्दी माना है। इन्होने साधारणतया आचार्य हेमचन्द्र के 'प्राकृतव्याकरण' का ही अनुसरण किया है। इन्होने भी आचार्य हेमचन्द्र के समान आर्ष प्राकृत का उल्लेख किया है परन्तु आर्ष और देश्य रूढ़ होने के कारण स्वतत्र हैं, इसलिये उनके व्याकरण की जरूरत नहीं है, साहित्य में व्यवहृत प्रयोगो द्वारा ही उनका ज्ञान हो

---

१. यह भाग जैन श्वेतांबर समस्तसंघ, रतलाम से वि० स० १९७० में प्रकाशित हुआ है।

२. यह हेमचन्द्राचार्य जैन सभा, पाटन से प्रकाशित है।

सकता है। जो शब्द साध्यमान और सिद्ध संस्कृत हैं उनके विषय में ही इस व्याकरण मे प्राकृत के नियम दिये गये हैं।

प्रस्तुत व्याकरण में तीन अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय के चार चार पाद हैं। प्रथम अध्याय, द्वितीय अध्याय और तृतीय अध्याय के प्रथम पाद में प्राकृत का विवेचन है। तृतीय अध्याय के द्वितीय पाद में शौरसेनी (सूत्र १ से २६), मागधी (२७ से ४२), पैशाची (४३ से ६३) और चूलिका पैशाची (६४ से ६७) के नियम बताये गये हैं। तीसरे और चौथे पाद मे अपभ्रंश का विवेचन है। अपभ्रंश के उदाहरणों की अपेक्षा से आचार्य हेमचंद्रसूरि से इसमें कुछ मौलिकता दिखाई देती है।

प्राकृतशब्दानुशासन वृत्ति :

त्रिविक्रम ने अपने 'प्राकृतशब्दानुशासन' पर स्वोपज्ञ वृत्ति[1] की रचना की है। प्राकृत रूपों के विवेचन में इन्होंने आचार्य हेमचन्द्र का आधार लिया है।

प्राकृत-पद्यव्याकरण :

प्रस्तुत ग्रन्थ का वास्तविक नाम और कर्ता का नाम अज्ञात है। यह अपूर्ण रूप में उपलब्ध है, जिसमें केवल ४२७ श्लोक हैं। इस ग्रंथ[2] का आरंभ इस प्रकार है.

संस्कृतस्य विपर्यस्तं संस्कारगुणवर्जितम्।
विज्ञेयं प्राकृतं तत् तु [यद्] नानावस्थान्तरम्॥ १॥
समानशब्दं विभ्रष्टं देशीगतमिति त्रिधा।
सौरसेन्यं च मागध्यं पैशाच्यं चापभ्रंशिकम्॥ २॥
देशीगतं चतुर्धेति तदग्रे कथयिष्यते।
....

औदार्यचिन्तामणि :

'औदार्यचिन्तामणि' नामक प्राकृत व्याकरण के कर्ता का नाम है श्रुतसागर। ये दिगंबर जैन मुनि थे जो मूलसंघ, सरस्वतीगच्छ, बलात्कारगण में हुए।

---

१. जीवराज ग्रंथमाला, सोलापुर से सन् १९५४ में यह ग्रंथ सुसंपादित होकर प्रकाशित हुआ है।

२. इस ग्रंथकी ९ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर के संग्रह में है जो लगभग १७ वीं शताब्दी में लिखी गई है।

इनके गुरु का नाम विद्यानन्दी था और मल्लिभूषण नामक मुनि इनके गुरुभाई थे। ये कट्टर दिगम्बर थे, ऐसा इनके ग्रंथों के विवेचन से फलित होता है। इन्होंने कई ग्रंथों की रचना की है। इनकी रचित 'षट्प्राभृत-टीका' और 'यशस्तिलक-चन्द्रिका' में इन्होंने स्वय का परिचय 'उभयभाषाचक्रवर्ती, कलिकालगौतम, कलिकालसर्वज्ञ, तार्किकशिरोमणि, नवनवतिवादिविजेता, परागमप्रवीण, व्याकरण-कमलमार्तण्ड' विशेषणों से दिया है।

औदार्यचिन्तामणि व्याकरण की रचना इन्होंने वि० स० १५७५ मे की है। इसमें प्राकृतभाषाविषयक छः अध्याय है। यह आचार्य हेमचन्द्र के 'प्राकृत-व्याकरण' और त्रिविक्रम के 'प्राकृतशब्दानुशासन' से बड़ा है। इन्होंने आचार्य हेमचन्द्र के व्याकरण का ही अनुसरण किया है।

इस व्याकरण की जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है वह अपूर्ण है।[1] इसलिये इसके विषय में विशेष कहा नहीं जा सकता।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं :

१. व्रतकथाकोश, २. श्रुतसप्तपूजा, ३. जिनसहस्रनामटीका, ४. तत्त्वत्रय-प्रकाशिका, ५. तत्त्वार्थसूत्र-वृत्ति, ६. महाभिषेक टीका, ७. यशस्तिलकचन्द्रिका।

चिन्तामणि-व्याकरण :

'चिन्तामणि-व्याकरण' के कर्ता शुभचन्द्रसूरि दिगम्बरीय मूलसघ, सरस्वती-गच्छ और बलात्कारगण के भट्टारक थे। ये विजयकीर्ति के शिष्य थे। इनको त्रैविद्यविद्याधर और षड्भाषाचक्रवर्ती की पदवियाँ प्राप्त थीं। इन्होंने साहित्य के विविध विषयो का अध्ययन किया था।

इनके रचित 'चिन्तामणिव्याकरण' मे प्राकृत-भाषाविषयक चार चार पादयुक्त तीन अध्याय हैं। कुल मिलाकर १२२४ सूत्र है। यह व्याकरण आचार्य हेमचद्र के 'प्राकृतव्याकरण' का अनुसरण करता है। इसकी रचना वि० स० १६०५ मे हुई है। 'पाण्डवपुराण' की प्रशस्ति मे इस व्याकरण का उल्लेख इस प्रकार है :

योऽकृत सद्व्याकरणं चिन्तामणिनामधेयम्।

---

१. यह ग्रथ तीन अध्यायों मे विजागापट्टम् से प्रकाशित हुआ है . देखिए—Annals of Bhandarkar Oriental Research Institute, Vol XIII, pp 52-53.

चिन्तामणि-व्याकरणवृत्ति :

'चिन्तामणिव्याकरण'[1] पर आचार्य शुभचन्द्र ने स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है।

इस व्याकरण-ग्रन्थ के अलावा इन्होंने अन्य अनेक ग्रथों की भी रचना की है।

अर्धमागधी-व्याकरण :

'अर्धमागधी व्याकरण'[2] की सूत्रबद्ध रचना वि० स० १९९५ के आसपास शतावधानी मुनि रत्नचन्द्रजी (स्थानकवासी) ने की है। मुनि श्री ने इस पर स्वोपज्ञ वृत्ति भी बनाई है।

प्राकृत-पाठमाला :

उपर्युक्त मुनि रत्नचन्द्रजी ने 'प्राकृत-पाठमाला' नामक ग्रथ की रचना प्राकृत भाषा के विद्यार्थियों के लिये की है। यह कृति भी छप चुकी है।

कर्णाटक-शब्दानुशासन :

दिगम्बर जैन मुनि अकलङ्क ने 'कर्णाटकशब्दानुशासन' नामक कन्नड़ भाषा के व्याकरण की रचना शक स० १५२६ (वि० स० १६६१) मे सस्कृत में की है। इस व्याकरण में ५९२ सूत्र है।[3]

नागवर्म ने जिस 'कर्णाटकभूषण' व्याकरण की रचना की है उससे यह व्याकरण बड़ा है और 'शब्दमणिदर्पण' नामक व्याकरण से इसमे अधिक विषय हैं। इसलिए यह सर्वोत्तम व्याकरण माना जाता है।

मुनि अकलङ्क ने इसमे अपने गुरु का परिचय दिया है। इसमे इन्होंने चारु-कीर्ति के लिये अनेक विशेषणों का प्रयोग किया है। 'कर्णाटक-शब्दानुशासन' पर किसी ने 'भाषामञ्जरी' नामक वृत्ति लिखी है तथा 'मञ्जरीमकरन्द' नामक विवरण भी लिखा है।

---

१ विशेष परिचय के लिए देखिए—डा० ए० एन० उपाध्ये का लेख : A. B. O R I., Vol. XIII, pp. 46-52

२. यह ग्रन्थ मेहरचन्द लछमणदास ने लाहौर से सन् १९३८ मे प्रकाशित किया है।

३. 'अनेकान्त' वर्ष १, किरण ६–७, पृ० ३३५.

पारसीक-भाषानुशासन :

'पारसीकभाषानुशासन' अर्थात् फारसी भाषा के व्याकरण की रचना मदनपाल ठक्कुर के पुत्र विक्रमसिंह ने की है। संस्कृत भाषा में रचे हुए इस व्याकरण में पाँच अध्याय हैं। विक्रमसिंह आचार्य आनन्दसूरि के भक्त शिष्य थे। इसकी एक हस्तलिखित प्रति पञ्जाब के किसी भंडार में है।[1]

फारसी-धातुरूपावली :

किसी अज्ञात विद्वान् ने 'फारसी-धातुरूपावली' नामक ग्रंथ की रचना की है, जिसकी १९ वीं शती में लिखी गई ७ पत्रों की हस्तलिखित प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद में है।

———

1. A Catalogue of Manuscripts in the Punjab Jain Bhandars, Pt. I.

दूसरा प्रकरण

कोश

कोश भी व्याकरण-शास्त्र की ही भाति भाषा-शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण अग है। व्याकरण केवल यौगिक शब्दों की सिद्धि करता है, लेकिन रूढ और योगरूढ शब्दों के लिये तो कोश का ही आश्रय लेना पड़ता है।

वैदिक काल से ही कोश का ज्ञान और महत्त्व स्वीकृत है, यह 'निघण्टु-कोश' से ज्ञात होता है। वेद के 'निरुक्त'कार यास्क मुनि के सम्मुख 'निघण्टु' के पॉच सग्रह थे। इनमे से प्रथम के तीन सग्रहों में एक अर्थवाले भिन्न-भिन्न शब्दो का सग्रह था। चौथे में कठिन शब्द और पॉचवे मे वेद के भिन्न-भिन्न देवताओ का वर्गीकरण था। 'निघण्टु-कोश' बाद में बननेवाले लौकिक शब्द-कोशों से अलग-सा जान पड़ता है। 'निघण्टु' में विशेष रूप से वेद आदि 'सहिता' ग्रथो के अस्पष्ट अर्थों को समझाने का प्रयत्न किया गया है अर्थात् 'निघण्टु-कोश' वैदिक ग्रथो के विषय की चर्चा से मर्यादित है, जबकि लौकिक कोश विविध वाङ्मय के सब विषयों के नाम, अव्यय और लिंग का बोध कराते हुए शब्दों के अर्थों को समझाने- वाला व्यापक शब्दभडार प्रस्तुत करता है।

'निघण्टु-कोश' के बाद यास्क के 'निरुक्त' मे विशिष्ट शब्दों का सग्रह है और उसके बाद पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' में यौगिक शब्दों का विशाल समूह कोश की समृद्धि का विकास करता हुआ जान पड़ता है।

पाणिनि के समय तक के सब कोश-ग्रथ गद्य मे प्राप्त होते है परतु बाद के लौकिक कोशों की अनुष्टुप्, आर्या आदि छदो मे पद्यमय रचनाएँ प्राप्त होती है।

कोशों मे मुख्यतया दो पद्धतियॉ दिखाई पड़ती है: एकार्थक कोश और अनेकार्थक कोश। पहला प्रकार एक अर्थ के अनेक शब्दों का सूचन करता है।

प्राचीन कोशकारों मे कात्यायन की 'नाममाला', वाचस्पति का 'शब्दार्णव', विक्रमादित्य का 'ससारावर्त्त', व्याडि का 'उत्पलिनी', भागुरि का 'त्रिकाण्ड',

धन्वन्तरि का 'निघण्टु' आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। इनमे से कई कोश ग्रथ अप्राप्य है।

उपलब्ध कोशो में अमरसिंह के 'अमर-कोश' ने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। इसके बाद आचार्य हेमचंद्र आदि के कोशों का ठीक-ठीक प्रचार हुआ, ऐसा काव्यग्रंथो की टीकाओं से मालूम पड़ता है।

प्रस्तुत प्रकरण मे जैन ग्रथकारो के रचे हुए कोश-ग्रथों के विषय मे विचार किया जा रहा है।

पाइयलच्छीनाममाला :

'पाइयलच्छीनाममाला'[1] नामक एकमात्र उपलब्ध प्राकृत-कोश की रचना करनेवाले प० धनपाल जैन गृहस्थ विद्वानों मे अग्रणी हैं। इन्होने अपनी छोटी बहन सुन्दरी के लिये इस कोश-ग्रथ की रचना वि० स० १०२९ में की है। इसमे २७९ गाथाएँ आर्या छद मे हैं। यह कोश एकार्थक शब्दो का बोध कराता है। इसमें ९९८ प्राकृत शब्दों के पर्याय दिये गये हैं।

प० धनपाल जन्म से ब्राह्मण थे। इन्होने अपने छोटे भाई शोभन मुनि के उपदेश से जैन तत्त्वों का अध्ययन किया तथा जैन दर्शन मे श्रद्धा उत्पन्न होने से जैनत्व अगीकार किया। एक पक्के जैन की श्रद्धा से और महाकवि की हैसियत से इन्होने कई ग्रथो का प्रणयन किया है।

धनपाल धाराधीश मुञ्जराज की राजसभा के सम्मान्य विद्वद्रत्न थे। वे उनको 'सरस्वती' कहते थे। भोजराज ने इनको राजसभा मे 'कूर्चालसरस्वती' और 'सिद्धसारस्वतकवीश्वर' की पदवियाँ देकर सम्मानित किया था। बाद मे 'तिलकमञ्जरी' की रचना को बदलने के आदेश से तथा ग्रथ को जला देने के कारण भोजराज के साथ उनका वैमनस्य हुआ। तब वे साचोर जाकर रहे। इसका निर्देशन उनके 'सत्यपुरीयमडन-महावीरोत्साह' मे है।

आचार्य हेमचन्द्र ने 'अभिधानचिन्तामणि' कोश के प्रारभ मे 'व्युत्पत्ति-र्धनपालत' ऐसा उल्लेख कर धनपाल के कोशग्रथ को प्रमाणभूत बताया

---

१. (अ) बुह्लर द्वारा सपादित होकर सन् १८७९ में प्रकाशित।
(आ) भावनगर से गुलाबचद लल्लुभाई द्वारा वि० स० १९७३ में प्रकाशित।
(इ) प० बेचरदास द्वारा संशोधित होकर बबई से प्रकाशित।

है। हेमचद्ररचित 'देशीनाममाला' (रयणावली) मे भी धनपाल का उल्लेख है। 'शार्ङ्गधर-पद्धति' मे धनपाल के कोशविषयक पद्यो के उद्धरण मिलते है और एक टिप्पणी मे धनपालरचित 'नाममाला' के १८०० श्लोक-परिमाण होने का उल्लेख किया गया है। इन सब प्रमाणो से मालूम होता है कि धनपाल ने सस्कृत और देशी शब्दकोश ग्र थो की रचना की होगी, जो आज उपलब्ध नहीं हैं।

इनके रचित अन्य ग्रथ इस प्रकार है :

१ तिलकमञ्जरी (सस्कृत गद्य), २. श्रावकविधि (प्राकृत पद्य), ३. ऋषभपञ्चाशिका (प्राकृत पद्य), ४ महावीरस्तुति (प्राकृत पद्य), ५ सत्य-पुरीयमडन-महावीरोत्साह (अपभ्रश पद्य), ६ शोभनस्तुति-टीका (सस्कृत गद्य)।

धनञ्जयनाममाला :

धनजय नामक दिगबर गृहस्थ विद्वान् ने अपने नाम से 'धनञ्जयनाममाला'[1] नामक एक छोटे से सस्कृतकोश की रचना की है।

माना जाता है कि कर्ता ने २०० अनुष्टुप् श्लोक ही रचे हैं। किसी आवृत्ति मे २०३ श्लोक हैं तो कहीं २०५ श्लोक है।

धनञ्जय कवि ने इस कोश मे एक शब्द से शब्दातर बनाने की विशिष्ट पद्धति बताई है। जैसे, 'पृथ्वी' वाचक शब्द के आगे 'धर' शब्द जोड़ देने से पर्वत-वाची नाम बनता है, 'मनुष्य' वाचक शब्द के आगे 'पति' शब्द जोड़ देने से नृपवाची नाम बनता है और 'वृक्ष' वाचक शब्द के आगे 'चर' शब्द जोड़ देने से वानरवाची नाम बनता है।

इस कोश मे २०१ वा श्लोक इस प्रकार है :

प्रमाणमकलङ्कस्य पूज्यपादस्य लक्षणम्।
द्विसन्धानकवेः काव्यं रत्नत्रयमपश्चिमम्॥

इस श्लोक मे 'द्विसन्धान' कार धनञ्जय कवि की प्रशसा है, इसलिए यह श्लोक मूल ग्रंथकार का नहीं होगा, ऐसा कुछ विद्वान् मानते है। प० महेन्द्र-

---

१. धनञ्जयनाममाला, अनेकार्थनाममाला के साथ हिंदी अनुवादसहित, चतुर्थ आवृत्ति, हरप्रसाद जैन, वि. सं. १९९९.

कुमार ने इसे मूलग्रन्थकार का बताकर धनञ्जय के समय की पूर्वसीमा निश्चित करने का प्रयत्न किया है। उनके मत से धनञ्जय दिगम्बराचार्य अकलक के बाद हुए।

धनञ्जय कवि के समय के सबध मे विद्वद्गण एकमत नहीं हैं। कोई विद्वान् इनका समय नौवीं, कोई दसवीं शताब्दी मानते हैं।[1] निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि धनञ्जय कवि ११ वीं शताब्दी के पूर्व हुए।

'द्विसधान-महाकाव्य' के अतिम पद्य की टीका में टीकाकार ने धनञ्जय के पिता का नाम वसुदेव, माता का नाम श्रीदेवी और गुरु का नाम दशरथ था, ऐसा सूचित किया है। इसमें समय नहीं दिया है।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार है: १. अनेकार्थनाममाला, २. राघव-पाण्डवीय-द्विसधान-महाकाव्य, ३. विषापहार-स्तोत्र, ४. अनेकार्थ-निघण्टु।

धनञ्जयनाममाला-भाष्य :

'धनञ्जय-नाममाला' पर दिगम्बर मुनि अमरकीर्ति ने 'भाष्य'[2] नाम से टीका की रचना की है। टीका मे शब्दों के पर्यायो की सख्या बताकर व्याकरणसूत्रों के प्रमाण देकर उनकी व्युत्पत्ति बताई है। कहीं कहीं अन्य पर्यायवाची शब्द बढ़ाये भी है।

अमरकीर्ति के समय के बारे मे विचार करने पर वे १४ वीं शताब्दी मे हुए हो, ऐसा मालूम पड़ता है। इस 'नाममाला' के १२२ वे श्लोक के भाष्य मे आशाधर के 'महाभिषेक' का उल्लेख मिलता है। आशाधर ने वि० स० १३०० में 'अनगारधर्मामृत' की रचना समाप्त की थी इसलिये अमरकीर्ति इसके बाद

---

१. आचार्य प्रभाचन्द्र और आचार्य वादिराज (११ वीं शताब्दी) ने धनञ्जय के 'द्विसधान-महाकाव्य' का उल्लेख किया है। इससे धनञ्जय निश्चित रूप से ११ वीं शताब्दी के पूर्व हुए है। जल्हणरचित 'सूक्तमुक्तावली में राजशेखर-कृत धनजय की प्रशंसारूप सूक्ति का उल्लेख है। ये राजशेखर 'काव्यमीमांसा' के कर्ता राजशेखर से अभिन्न हो तो धनजय १० वी शताब्दी के बाद नही हुए, ऐसा कह सकते है।

२. सभाष्य नाममाला, अमरकीर्तिकृत भाष्य, धनञ्जयकृत अनेकार्थनाममाला सटीक, अनेकार्थ-निघण्टु और एकाक्षरी कोश—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् १९५०.

हुए, यह निश्चित है। इन्होंने 'हैम नाममाला' का उल्लेख भी किया है। टीका के प्रारम्भ में अमरकीर्ति ने कल्याणकीर्ति को नमस्कार किया है। सं० १३५० में 'जिनयज्ञफलोदय' की रचना करनेवाले कल्याणकीर्ति से ये अभिन्न हों तो अमरकीर्ति ने इस 'भाष्य' की रचना निश्चित रूप से वि० सं० १३५० के आसपास में की है।

निघण्टसमय :

कवि धनञ्जयरचित 'निघण्टसमय' नामक रचना का उल्लेख 'जिनरत्नकोश', पृ० २१२ में है। यह कृति दो परिच्छेदात्मक बताई गई है, परन्तु ऐसी कोई कृति देखने में नहीं आई। संभवतः यह धनञ्जय की 'अनेकार्थनाममाला' हो।

अनेकार्थ-नाममाला :

कवि धनञ्जय ने 'अनेकार्थनाममाला' की रचना की है। इसमें ४६ पद्य हैं। विद्यार्थी को एक शब्द के अनेक अर्थों का ज्ञान हो सके, इस दृष्टि से यह छोटा-सा कोश बनाया है। यह कोश 'धनञ्जय नाममाला सभाष्य' के साथ छपा है।

अनेकार्थनाममाला-टीका :

कवि धनञ्जयकृत 'अनेकार्थनाममाला' पर किसी विद्वान् ने टीका रची है। यह टीका भी 'धनञ्जय नाममाला सभाष्य' के साथ छपी है।

अभिधानचिन्तामणिनाममाला :

विद्वानों की मान्यता है कि आचार्य हेमचन्द्र ने 'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' के बाद 'काव्यानुशासन' और उसके बाद 'अभिधानचिन्तामणिनाममाला'[1] कोश की वि० १३वीं शताब्दी में रचना की है। स्वयं आचार्य हेमचन्द्र ने भी इस कोश के आरम्भ में स्पष्ट कहा है कि शब्दानुशासन के समस्त अङ्गों की रचना प्रतिष्ठित हो जाने के बाद इस कोश ग्रन्थ की रचना की गई है।[2]

---

१. (क) महावीर जैन सभा, खंभात, शक-सं० १८१८ (मूल)
   (ख) यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, वीर-सं० २४४६ (स्वोपज्ञ वृत्तिसहित).
   (ग) मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, बड़ौदा (रत्नप्रभा वृत्तिसहित).
   (घ) देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड, सूरत, सन् १९४६ (मूल).
   (ङ) नेमि-विज्ञान-ग्रन्थमाला, अहमदाबाद (मूल—गुजराती अर्थ के साथ)

२. प्रणिपत्यार्हतः सिद्धसाङ्गशब्दानुशासनः ।
   रूढ यौगिक-मिश्राणां नाम्नां मालां तनोम्यहम् ॥१॥

हेमचंद्र ने व्याकरण ज्ञान को सक्रिय बनाने के लिये और विद्यार्थियों को भाषा का ज्ञान सुलभ करने के लिये संस्कृत और देश्य भाषा के कोशों की रचना इस प्रकार की है : १. अभिधानचिंतामणि सटीक, २. अनेकार्थसंग्रह, ३. निघण्टु-संग्रह और ४. देशीनाममाला (रयणावली)।[1]

आचार्य हेमचंद्र ने कोश की उपयोगिता बताते हुए कहा है कि बुधजन वक्तृत्व और कवित्व को विद्वत्ता का फल बताते हैं, परन्तु ये दोनों शब्दज्ञान के बिना सिद्ध नहीं हो सकते।[2]

'अभिधानचिंतामणि' की रचना सामान्यतः 'अमरकोश' के अनुसार ही की गई है। यह कोश रूढ, यौगिक और मिश्र एकार्थक शब्दों का संग्रह है। इसमें छः कांडों की योजना इस प्रकार की गई है :

प्रथम देवाधिदेवकांड में ८६ श्लोक हैं, जिनमें चौबीस तीर्थंकर, उनके अतिशय आदि के नाम दिये गये हैं।

द्वितीय देवकांड में २५० श्लोक हैं। इसमें देवों, उनकी वस्तुओं और नगरों के नाम हैं।

तृतीय मर्त्यकांड में ५९७ श्लोक हैं। इसमें मनुष्यों और उनके व्यवहार में आनेवाले पदार्थों के नाम हैं।

चतुर्थ तिर्यक्कांड में ४२३ श्लोक हैं। इसमें पशु, पक्षी, जंतु, वनस्पति, खनिज आदि के नाम हैं।

पञ्चम नारककांड में ७ श्लोक हैं। इसमें नरकवासियों के नाम हैं।

छठे साधारणकांड में १७८ श्लोक हैं, जिनमें ध्वनि, सुगंध और सामान्य पदार्थों के नाम हैं।

ग्रन्थ में कुल मिलाकर १५४१ श्लोक हैं।

हेमचन्द्र ने इस कोश की रचना में वाचस्पति, हलायुध, अमर, यादव-प्रकाश, वैजयन्ती के श्लोक और काव्य का प्रमाण दिया है। 'अमर-कोश' के कई श्लोक इसमें ग्रथित हैं।

---

१. एकार्थानेकार्था देश्या निर्घण्ट इति च चत्वारः।
विहिताश्च नामकोशा भुवि कवितानट्युपाध्यायाः॥
—प्रभावक-चरित, हेमचन्द्रसूरि-प्रबन्ध, श्लोक ८३३

२. वक्तृत्वं च कवित्वं च विद्वत्तायाः फलं विदुः।
शब्दज्ञानादृते तन्न द्वयमप्युपपद्यते॥

हेमचन्द्र ने शब्दों के तीन विभाग बताये हैं : १. रूढ, २. यौगिक और ३. मिश्र। रूढ की व्युत्पत्ति नहीं होती। योग अर्थात् गुण, क्रिया और सम्बन्ध से जो सिद्ध हो सके। जो रूढ भी हो और यौगिक भी हो उसे मिश्र कहते हैं।

'अमर-कोश' से यह कोश शब्दसंख्या में डेढ़ा है। 'अमर-कोश' में शब्दों के साथ लिंग का निर्देश किया गया है परन्तु आचार्य हेमचन्द्र ने अपने कोश में लिंग का उल्लेख न करके स्वतन्त्र 'लिंगानुशासन' की रचना की है।

हेमचन्द्रसूरि ने इस कोश में मात्र पर्यायवाची शब्दों का ही संकलन नहीं किया, अपितु इसमें भाषासम्बन्धी महत्त्वपूर्ण सामग्री भी संकलित है। इसमें अधिक से अधिक शब्द दिये हैं और नवीन तथा प्राचीन शब्दों का समन्वय भी किया है।

आचार्य ने समान शब्दयोग से अनेक पर्यायवाची शब्द बनाने का विधान भी किया है, परन्तु इस विधान के अनुसार उन्हीं शब्दों को ग्रहण किया है जो कवि-सम्प्रदाय द्वारा प्रचलित और प्रयुक्त हों। कवियों द्वारा अप्रयुक्त और अमान्य शब्दों के ग्रहण से अपनी कृति को बचा लिया है।

भाषा की दृष्टि से यह कृति बहुमूल्य है। इसमें प्राकृत, अपभ्रंश और देशी भाषाओं के शब्दों का पूर्णतः प्रभाव दिखाई देता है। इस दृष्टि से आचार्य ने कई नवीन शब्दों को अपना कर अपनी कृति को समृद्ध बनाया है।
ये विशेषताएँ अन्य कोशों में देखने में नहीं आतीं।

अभिधानचिन्तामणि-वृत्ति :

'अभिधानचिन्तामणि' कोश पर आचार्य हेमचन्द्र ने स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है, जिसको 'तत्त्वाभिधायिनी' कहा गया है। 'शेष' उल्लेख से अतिरिक्त शब्दों के संग्राहक श्लोक इस प्रकार है : १ काण्ड में १, २ काण्ड में ८९, ३ काण्ड में ६३, ४ काण्ड में ४१, ५ काण्ड में २, और ६ काण्ड में ८— इस प्रकार कुल मिलाकर २०४ श्लोकों का परिशिष्ट-पत्र है। मूल १५४१ श्लोकों में २०४ मिलाने से पूरी संख्या १७४५ होती है। वृत्ति के साथ इस ग्रन्थ का श्लोक-परिमाण करीब साढे आठ हजार होता है।

व्याडि का कोई शब्दकोश आचार्य हेमचन्द्र के सामने था, जिसमें से उन्होंने कई प्रमाण उद्धृत किये हैं।

इस स्वोपज्ञ वृत्ति में ५६ ग्रन्थकारों और ३१ ग्रन्थों का उल्लेख है। जहाँ पूर्व के कोशकारों से उनका मतभेद है वहीं आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अन्य ग्रन्थों और ग्रन्थकारों के नाम उद्धृत करके अपने मतभेद का स्पष्टीकरण किया है।

अभिधानचिंतामणि-टीका :

मुनि कुशलसागर ने 'अभिधानचिन्तामणि' कोश पर टीका की रचना की है।

अभिधानचिन्तामणि-सारोद्धार :

खरतरगच्छीय ज्ञानविमल के शिष्य वल्लभगणि ने वि० सं० १६६७ में 'अभिधानचिन्तामणि' पर 'सारोद्धार' नामक टीका की रचना की है। इसको शायद 'दुर्गपदप्रबोध' नाम भी दिया गया हो ऐसा मालूम होता है।

अभिधानचिन्तामणि-टीका :

अभिधानचिन्तामणि पर मुनि साधुरत्न ने भी एक टीका रची है।

अभिधानचिंतामणि-व्युत्पत्तिरत्नाकर :

अचलगच्छीय विनयचंद्र वाचक के शिष्य मुनि देवसागर ने वि० सं० १६८६ मे 'हैमीनाममाला' अर्थात् 'अभिधानचिन्तामणि' कोश पर 'व्युत्पत्ति-रत्नाकर' नामक वृत्ति-ग्रंथ की रचना की है, जिसकी १२ श्लोकों की अन्तिम प्रशस्ति प्रकाशित है।[1]

मुनि देवसागर ने तथा आचार्य कल्याणसागरसूरि ने शत्रुंजय पर सं० १६७६ में तथा सं० १६८३ मे प्रतिष्ठित किये गये श्री श्रेयांसजिनप्रासाद और श्री चन्द्रप्रभजिनप्रासाद की प्रशस्तियाँ रची हैं।[2] इनकी हस्तलिखित प्रतियाँ जैसलमेर के ज्ञान-भंडार मे हैं।

अभिधानचिन्तामणि-अवचूरि :

किसी अज्ञात नामा जैन मुनि ने अभिधान चिन्तामणि कोश पर ४५०० श्लोक-प्रमाण 'अवचूरि' की रचना की है, जिसकी हस्तलिखित प्रति पाटन के भंडार मे है। इसका उल्लेख 'जैन ग्रन्थावली' पृ० ३१० मे है।

अभिधानचिन्तामणि-रत्नप्रभा :

पं० वासुदेवराव जनार्दन कशेलीकर ने अभिधानचिन्तामणि कोश पर

---

१. देखिए—'जैसलमेर-जैन-भांडागारीय-ग्रन्थानां सूचीपत्रम्' (बड़ौदा, सन् १९२३) पृ० ६१.

२. एपिग्राफिआ इण्डिका, २. ६४, ६६, ६८, ७१.

'रत्नप्रभा' नाम से टीका की रचना की है। इसमे कहीं-कहीं संस्कृत शब्दो के गुजराती अर्थ भी दिये है।

अभिधानचिन्तामणि-बीजक :

'अभिधानचिन्तामणिनाममाला-बीजक' नाम से तीन मुनियो की रचनाएँ[1] उपलब्ध होती हैं। बीजको मे कोश की विस्तृत विषय-सूची दी गई है।

अभिधानचिन्तामणिनाममाला-प्रतीकावली :

इस नाम की एक हस्तलिखित प्रति भांडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना मे है। इसके कर्ता का नाम इसमे नहीं है।

अनेकार्थसंग्रह :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'अनेकार्थ-संग्रह' नामक कोशग्रन्थ की रचना विक्रमीय १३ वीं शताब्दी मे की है। इस कोश मे एक शब्द के अनेक अर्थ दिये गये है।

इस ग्रंथ मे सात कांड हैं। १. एकस्वरकांड मे १६, २. द्विस्वरकांड मे ५९१, ३. त्रिस्वरकांड मे ७६६, ४. चतुःस्वरकांड में ३४३, ५. पञ्चस्वर-कांड मे ४८, ६ षट्स्वरकांड मे ५, ७ अव्ययकांड मे ६०—इस प्रकार कुल मिलाकर १८२९ + ६० पद्य हैं। इसमे आरंभ मे अकारादि क्रम से और अंत मे क आदि के क्रम से योजना की गई है।

इस कोश मे भी 'अभिधानचिंतामणि' के सदृश देश्य शब्द है। यह ग्रन्थ 'अभिधानचिंतामणि' के बाद ही रचा गया है, ऐसा इसके आद्य पद्य से ज्ञात होता है।[2]

अनेकार्थसंग्रह-टीका :

'अनेकार्थसंग्रह' पर 'अनेकार्थ-कैरवाकर-कौमुदी' नामक टीका आचार्य हेमचन्द्रसूरि के ही शिष्य आचार्य महेन्द्रसूरि ने रची है, ऐसा टीका के

---

१. (क) तपागच्छीय आचार्य हीरविजयसूरि के शिष्य शुभविजयजी ने वि० सं० १६६१ में रचा। (ख) श्री देवविमलगणि ने रचा। (ग) किसी अज्ञात नामा मुनि ने रचना की है।

२ यह कोश चौखबा संस्कृतसिरीज, बनारस से प्रकाशित हुआ है। इससे पूर्व 'अभिधान-संग्रह' में शक-संवत् १८१८ मे महावीर जैन सभा, खंभात से तथा विद्याकर मिश्र द्वारा कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था।

प्रारभ मे उल्लेख मिलता है। यह कृति उन्होंने अपने गुरु के नाम पर चढा दी, ऐसा दूसरे काड की टीका के अतिम पद्य से जाना जाता है। रचना-समय विक्रमीय १३ वीं शताब्दी है।

इस ग्रथ की टीका[1] लिखने मे निम्नलिखित ग्रथो से सहायता ली गई, ऐसा उल्लेख प्रारभ मे ही है: विश्वप्रकाश, शाश्वत, रभस, अमरसिंह, मख, हुग्ग, व्याडि, धनपाल, भागुरि, वाचस्पति और यादव की कृतियाँ तथा धन्वतरिकृत निघटु और लिंगानुशासन।

निघण्टुशेष :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'निघण्टुशेष' नामक वनस्पति कोश-ग्रन्थ की रचना की है। 'निघण्टु' का अर्थ है वैदिक शब्दों का समूह। वनस्पतियो के नामों के सग्रह को भी 'निघण्टु' कहने की परिपाटी प्राचीन है। धन्वन्तरि-निघण्टु, राज-कोश-निघण्टु, सरस्वती-निघण्टु, हनुमन्निघण्टु आदि वनस्पति कोशग्रन्थ प्राचीन काल में प्रचलित थे। 'धन्वन्तरि-निघण्टु' के सिवाय उपर्युक्त कोशग्रन्थ आज दुष्प्राप्य है। आचार्य हेमचन्द्रसूरि के सामने शायद 'धन्वन्तरि-निघण्टु' कोश था। अपने कोशग्रन्थ की रचना के विषय मे आचार्य ने इस प्रकार लिखा है:

विहितैकार्थ-नानार्थ-देश्यशब्दसमुच्चयः ।
निघण्टुशेषं वक्ष्येऽहं नत्वाऽर्हत्पदपङ्कजम् ॥

अर्थात् एकार्थककोश (अभिधानचिन्तामणि), नानार्थकोश (अनेकार्थ-सग्रह) और देश्यकोश (देशीनाममाला) की रचना करने के पश्चात् अर्हत्—तीर्थंकर के चरणकमल को नमस्कार करके 'निघण्टुशेष' नामक कोश कहूँगा।

इस 'निघण्टुशेष' मे छः काड इस प्रकार है: १. वृक्षकाड श्लोक १८१, २. गुल्मकाड १०५, ३. लताकाड ४४, ४. शाककाड ३४, ५. तृणकाड १७, ६. धान्यकाड १५—कुल मिलाकर ३९६ श्लोक हैं।

यह कोशग्रन्थ आयुर्वेदशास्त्र के लिए उपयोगी है।

'अभिधानचिंतामणि' में इन शब्दो को निबद्ध न करते हुए विद्यार्थियों की अनुकूलता के लिये ये 'निघण्टुशेष' नाम से अलग से सकलित किये गये हैं।[2]

---

१. यह टीकाग्रथ मूल के साथ श्री जाचारिया (बम्बई) ने सन् १८९३ में सम्पादित किया है।

२. यह ग्रन्थ सटीक लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से सन् १९६८ में प्रकाशित हुआ है।

निघण्टुशेष-टीका :

खरतरगच्छीय श्रीवल्लभगणि ने १७ वीं शती मे 'निघण्टुशेष' पर टीका लिखी है।

देशीशब्दसंग्रह :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'देशीशब्द सग्रह" नाम मे देश्य शब्दों के सग्रहात्मक कोशग्रथ की रचना की है। इसका दूसरा नाम 'देशीनाममाला' भी है। इसे रयणावली (रत्नावली) भी कहते है। देश्य शब्दों का ऐसा कोश अभी तक देखने मे नहीं आया। इसमे कुल ७८३ गाथाएँ हैं, जो आठ वर्गों मे विभक्त की गई है। इन वर्गों के नाम ये हैं : १. स्वरादि, २. कवर्गादि, ३. चवर्गादि, ४ टवर्गादि, ५ तवर्गादि, ६. पवर्गादि, ७ यकारादि और ८. सकारादि। सातवे वर्ग के आदि मे कहा है कि इस प्रकार की नाम-व्यवस्था यद्यपि ज्योतिषशास्त्र मे प्रसिद्ध है परतु व्याकरण मे नहीं है। इन वर्गों मे भी शब्द उनकी अक्षरसख्या के क्रम मे रखे गये हैं और अक्षर सख्या मे भी अकारादि वर्णानुक्रम से शब्द बताये गये है। इस क्रम से एकार्थवाची शब्द देने के बाद अनेकार्थवाची शब्दो का आख्यान किया गया है।

इस कोश ग्रन्थ की रचना करते समय ग्रन्थकार के सामने अनेक कोश-ग्रन्थ विद्यमान थे, ऐसा मालूम होता है। प्रारभ की दूसरी गाथा मे कोशकार ने कहा है कि पादलिप्ताचार्य आदि द्वारा विरचित देशी शास्त्रो के होते हुए भी उन्होने किस प्रयोजन से यह ग्रथ लिखा। तीसरी गाथा मे बताया गया है :

> जे लक्खणे ण सिद्धा ण पसिद्धा सक्कयाहिहाणेसु।
> ण य गउडलक्खणासत्तिसंभवा ते इह णिबद्धा ॥ ३ ॥

अर्थात् जो शब्द न तो उनके सस्कृत-प्राकृत व्याकरणो के नियमो द्वारा सिद्ध होते, न सस्कृत कोशो मे मिलते और न अलकारशास्त्रप्रसिद्ध गौडी लक्षणाशक्ति से अभीष्ट अर्थ प्रदान करते है उन्हे ही देशी मान कर इस कोश म निबद्ध किया गया है।

---

१. पिशल और बुहर द्वारा सम्पादित—बम्बई संस्कृत सिरीज, सन् १८८०, बनर्जी द्वारा सम्पादित—कलकत्ता, सन् १९३१, Studies in Hemacandra's Desīnāmamālā by Bhayani—P. V Research Institute, Varanasi, 1966

इस कोश पर स्वोपज्ञ टीका है, जिसमे अभिमानचिह्न, अवन्तिसुन्दरी, गोपाल, देवराज, द्रोण, धनपाल, पादोदूखल, पादलिप्ताचार्य, राहुलक, शाम्ब, शीलाङ्क और सातवाहन के नाम दिये गये है।

शिलोञ्छकोशः

आचार्य हेमचन्द्रसूरि-रचित 'अभिधानचिन्तामणि' कोश के दूसरे परिशिष्ट के रूप मे श्री जिनदेव मुनि ने 'शिलोंछ' नाम से १४० श्लोकों की रचना की है। कर्ता ने रचना का समय 'त्रि-वसु-इन्दु' (?) निर्देश किया है परतु इसमे एक अक का शब्द छूटता है। 'जिनरत्नकोश' पृ० ३८३ मे वि० स० १४३३ मे इसकी रचना हुई, ऐसा निर्देश है। यह समय किस आधार से लिखा गया यह सूचित नहीं किया है। शिलोछकोश छप गया है।

शिलोञ्छ-टीका :

इस 'शिलोञ्छ' पर ज्ञानविमलसूरि के शिष्य श्रीवल्लभ ने वि० स० १६५४ मे टीका की रचना की है। यह टीका छपी है।

नामकोश :

खरतरगच्छीय वाचक रत्नसार के शिष्य सहजकीर्ति ने छः काडों में लिंग-निर्णय के साथ 'नामकोश' या 'नाममाला' नामक कोश-ग्रथ की रचना की है। इस कोश का आदि श्लोक इस प्रकार है .

स्मृत्वा सर्वज्ञमात्मानं सिद्धशब्दार्णवान् जिनान्।
सलिङ्गनिर्णयं नामकोशं सिद्धं स्मृति नये॥

अन्त का पद्य इस प्रकार है :

कृतशब्दार्णवै. साङ्गः श्रीसहजादिकीर्तिभिः।
सामान्यकाण्डोऽयं षष्ठः स्मृतिमार्गमनीयत॥

सहजकीर्ति ने 'शतदलकमलालकृतलोद्रपुरीयपार्श्वनाथस्तुति' (सस्कृत) की रचना वि० स० १६८३ मे की है। यह कोश भी उसी समय के आस-पास मे रचा गया होगा। यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।

सहजकीर्ति के अन्य ग्रन्थ इस प्रकार है :

१. शतदलकमलालकृतलोद्रपुरीयपार्श्वनाथस्तुति (स० १६८३),
२. महावीरस्तुति (स० १६८६),

३. कल्पसूत्र पर 'कल्पमञ्जरी' नामक टीका (अपने सतीर्थ्य श्रीसार मुनि के साथ, स० १६८५),
४. अनेकशास्त्रसारसमुच्चय,
५ एकादिदशपर्यन्तशब्द साधनिका,
६ सारस्वतवृत्ति,
७. शब्दार्णवव्याकरण (ग्रन्थाग्र, १७०००),
८. फलवर्द्धिपार्श्वनाथमाहात्म्यमहाकाव्य (२४ सर्गात्मक),
९ प्रीतिषट्त्रिंशिका (स० १६८८) ।

शब्दचन्द्रिका :

इस कोशग्रन्थ के कर्ता का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसकी १७ पत्रों की हस्तलिखित प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर के सग्रह मे है। यह कृति शायद अपूर्ण है। इसका प्रारभ इस प्रकार है :

ध्यायं ध्यायं महावीरं स्मार स्मारं गुरोर्वचः ।
शास्त्रं दृष्ट्वा वयं कुर्मः बालबोधाय पद्धतिम् ॥
पत्रलिखनस्याद्वादमतं ज्ञात्वा वरं किल ।
मनोरमां वयं कुर्मः बालबोधाय पद्धतिम् ॥

इन श्लोको के आधार पर इसका नाम 'बालबोधपद्धति' या 'मनोरमा-कोश' भी हो सकता है। हस्तलिखित प्रति के हाशिये मे 'शब्द चन्द्रिका' उल्लिखित है। इसी से यहा इस कोश का नाम 'शब्द-चन्द्रिका' दिया गया है। इसमे शब्द का उल्लेखकर पर्यायवाची नाम एक साथ गद्य मे दे दिये गये है। विद्यार्थियो के लिए यह कोश उपयोगी है। यह ग्रन्थ छपा नहीं है।

सुन्दरप्रकाश-शब्दार्णव :

नागोरी तपागच्छीय श्री पद्ममेरु के शिष्य पद्मसुन्दर ने पाच प्रकरणों मे 'सुन्दरप्रकाश शब्दार्णव' नामक कोश ग्रथ की रचना वि० स० १६१९ मे की है। इसकी हस्तलिखित प्रति उस समय की याने वि. स १६१९ की लिखी हुई प्राप्त होती है। इस कोश मे २६६८ पद्य हैं। इसकी ८८ पत्रो की हस्तलिखित प्रति सुजानगढ मे श्री पनेचदजी सिंघी के सग्रह मे है।

प० पद्मसुन्दर उपाध्याय १७ वीं शती के विद्वान् थे। सम्राट् अकबर के साथ उनका घनिष्ठ सबध था। अकबर के समक्ष एक ब्राह्मण पडित को शास्त्रार्थ मे पराजित करने के उपलक्ष मे अकबर ने उन्हें सम्मानित किया था तथा

उनके लिये आगरा मे एक धर्मस्थानक बनवा दिया था। उपाध्याय पद्मसुन्दर ज्योतिष, वैद्यक, साहित्य और तर्क आदि शास्त्रो के धुरधर विद्वान् थे। उनके पास आगरा मे विशाल शास्त्रसग्रह था। उनका स्वर्गवास होने के बाद सम्राट् अकबर ने वह शास्त्र सग्रह आचार्य हीरविजयसूरि को समर्पित किया था।

शब्दभेदनाममाला :

महेश्वर नामक विद्वान् ने 'शब्दभेदनाममाला' की रचना की है। इसमे सभवतः थोड़े अन्तर वाले शब्द जैसे—अप्गा, आप्गा, अगार, आगार, अराति, आराति आदि एकार्थक शब्दो का सग्रह होगा।

शब्दभेदनाममाला-वृत्ति :

'शब्दभेदनाममाला' पर खरतरगच्छीय भानुमेरु के शिष्य ज्ञानविमलसूरि ने वि. स. १६५४ मे ३८०० श्लोक-प्रमाण वृत्तिग्रन्थ की रचना की है।

नामसंग्रह :

उपाध्याय भानुचन्द्रगणि ने 'नामसग्रह' नामक कोश की रचना की है। इसे 'नाममाला-सग्रह' अथवा 'विविक्तनाम-सग्रह' भी कहते हैं। इस 'नाममाला' को कई विद्वान् 'भानुचन्द्र नाममाला' के नाम से भी पहिचानते हैं।[1] इस कोश मे 'अभिधान-चिन्तामणि' के अनुसार ही छः काड हैं और काडो के शीर्षक भी उसी प्रकार है। उपाध्याय भानुचन्द्र मुनि सूरचन्द्र के शिष्य थे। उनको वि. स. १६४८ मे लाहौर में उपाध्याय की पदवी दी गई। वे सम्राट् अकबर के सामने स्वरचित 'सूर्यसहस्रनाम' प्रत्येक रविवार को सुनाया करते थे। उनके रचे हुए अन्य ग्रथ इस प्रकार हैं .

१. रत्नपालकथानक (वि. स. १६६२), २. सूर्यसहस्रनाम, ३. कादम्बरी-वृत्ति, ४. वसन्तराजशाकुन वृत्ति, ५. विवेकविलास वृत्ति, ६. सारस्वत-व्याकरण वृत्ति।

शारदीयनाममाला :

नागपुरीय तपागच्छ के आचार्य चद्रकीर्तिसूरि के शिष्य हर्षकीर्तिसूरि ने 'शारदीयनाममाला' या 'शारदीयाभिधानमाला' नामक कोश-ग्रन्थ की रचना १७ वीं शताब्दी मे की है। इसमे करीब ३०० श्लोक हैं।

---

१. देखिए—जैन ग्रन्थावली, पृ ३११.

आचार्य हर्षकीर्तिसूरि व्याकरण और वैद्यक में निपुण थे। उनके निम्नोक्त ग्रन्थ हैं :

१. योगचिन्तामणि, २. वैद्यकसारोद्धार, ३. धातुपाठ, ४ सेट् अनिट्-कारिका, ५. कल्याणमंदिरस्तोत्र-टीका, ६ बृहच्छांतिस्तोत्र टीका, ७. सिन्दूर-प्रकर, ८. श्रुतबोध-टीका आदि।

शब्दरत्नाकर :

खरतरगच्छीय साधुसुन्दरगणि ने वि० स० १६८० में 'शब्दरत्नाकर' नामक कोशग्रथ की रचना की है। साधुसुंदर साधुकीर्ति के शिष्य थे।

शब्दरत्नाकर पद्यात्मक कृति है। इसमे छः कांड—१. अर्हत्, २ देव, ३. मानव, ४ तिर्यक्, ५ नारक और ६. सामान्य कांड—हैं।[1]

इस ग्रंथ के कर्ता ने 'उक्तिरत्नाकर' और क्रियाकलापवृत्तियुक्त 'धातुरत्नाकर' की रचना भी की है। इनका जैसलमेर के किले में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ तीर्थंकर की स्तुतिरूप स्तोत्र भी प्राप्त होता है।

अव्ययैकाक्षरनाममाला :

मुनि सुधाकलशगणि ने 'अव्ययैकाक्षरनाममाला' नामक ग्रथ १४ वीं शताब्दी में रचा है। इसकी १ पत्र की १७ वीं शती में लिखी गई प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद में विद्यमान है।

शेषनाममाला

खरतरगच्छीय मुनि श्री साधुकीर्ति ने 'शेषनाममाला' या 'शेषसंग्रहनाममाला' नामक कोशग्रथ की रचना की है। इन्हीं के शिष्यरत्न साधुसुन्दरगणि ने वि०स० १६८० में 'क्रियाकलाप' नामक वृत्तियुक्त 'धातुरत्नाकर', 'शब्दरत्नाकर' और 'उक्तिरत्नाकर' नामक ग्रथों की रचना की है।

मुनि साधुकीर्ति ने यवनपति बादशाह अकबर की सभा में अन्यान्य धर्मपथों के पंडितों के साथ वाद-विवाद में खूब ख्याति प्राप्त की थी। इसलिये बादशाह

---

१. यह ग्रथ यशोविजय जैन ग्रथमाला, भावनगर से वी० स० २४३९ में प्रकाशित हुआ है।

ने इनको 'वादिसिंह' की पदवी से विभूषित किया था। ये हजारो शास्त्रों का सार जाननेवाले असाधारण विद्वान् थे।[1]

शब्दसंदोहसंग्रह :

जैन ग्रथावली, पृ० ३१३ मे 'शब्दसदोहसग्रह' नामक कृति की ४७९ पत्रों की ताडपत्रीय प्रति होने का उल्लेख है।

शब्दरत्नप्रदीप :

'शब्दरत्नप्रदीप' नामक कोशग्रथ के कर्ता का नाम ज्ञात नहीं हुआ है, परन्तु सुमतिगणि की वि० स० १२९५ मे रची हुई 'गणधरसार्धशतक वृत्ति' मे इस ग्रथ का नामोल्लेख बार-बार आता है। कल्याणमल्ल नामक किसी विद्वान् ने भी 'शब्दरत्नप्रदीप' नामक ग्रथ की रचना की है। यदि उक्त ग्रथ यही हो तो यह ग्रथ जैनेतरकृत होने से यहाँ नहीं गिनाया जा सकता।

विश्वलोचनकोश :

दिगम्बर मुनि धरसेन ने 'विश्वलोचनकोश' अपर नाम 'मुक्तावलीकोश' की सस्कृत मे रचना की है। इस अनेकार्थककोश मे कुल २४५३ पद्य हैं। इसके रचनाक्रम मे स्वर और ककार आदि वर्णों के क्रम से शब्द के आदि का निर्णय किया गया है और द्वितीय वर्ण मे भी ककारादि का क्रम रखा गया है। इसमे शब्दो को कान्त से लेकर हान्त तक के ३३ वर्ग, क्षान्त वर्ग और अव्यय वर्ग—इस प्रकार कुल मिलाकर ३५ वर्गों मे विभक्त किया गया है।

मुनि धरसेन सेन-वंश मे होनेवाले कवि, आन्वीक्षिकी विद्या मे निष्णात और वादी मुनिसेन के शिष्य थे। वे समस्त शास्त्रों के पारगामी, राजाओं के विश्वासपात्र और काव्यशास्त्र के मर्मज्ञ थे। यह अनेकार्थककोश विविध कवीश्वरों के कोशो को देखकर रचा गया है, ऐसा इसकी प्रशस्ति में कहा गया है।[2]

इन धरसेन के समय के बारे मे कोई प्रमाण नहीं मिलता। यह कोश चौदहवीं शताब्दी मे रचा गया, ऐसा अनुमान होता है।

---

१ खरतरगणपाथोराशिवृद्धौ मृगाङ्का यवनपतिसभाया ख्यापितार्हन्मताज्ञा.।
प्रहतकुमतिदर्पाः पाठकाः साधुकीर्तिप्रवरसदभिधाना वादिसिंहा जयन्तु ॥
तेषा शास्त्रसहस्रसारविदुषा • ॥—उक्तिरत्नाकर-प्रशस्ति

२. यह ग्रथ 'गाधी नाथारग जैन ग्रंथमाला' मे सन् १९१२ में छप चुका है।

नानार्थकोश :

'नानार्थकोश' के रचयिता असग नामक कवि थे, ऐसा मात्र उल्लेख प्राप्त होता है। वे शायद दिगंबर जैन गृहस्थ थे। वे कब हुए और ग्रंथ की रचना-शैली कैसी है, यह ग्रंथ प्राप्त नहीं होने से कहा नहीं जा सकता।

पञ्चवर्गसंग्रहनाममाला :

आचार्य मुनिसुन्दरसूरि के शिष्य शुभशीलगणि ने वि० सं० १५२५ में 'पंचवर्गसंग्रह नाममाला' की रचना की है।

ग्रंथकर्ता के अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं :

१. भरतेश्वरबाहुबली-सवृत्ति, २. पञ्चशतीप्रबन्ध, ३. शत्रुंजयकल्पकथा (वि० सं० १५१८), ४. शालिवाहन-चरित्र (वि० सं० १५४०), ५. विक्रम-चरित्र आदि कई कथाग्रंथ।

अपवर्गनाममाला :

इस ग्रंथ का 'जिनरत्नकोश' पृ० २७७ में 'पञ्चवर्गपरिहारनाममाला' नाम दिया गया है परंतु इसका आदि और अन्त भाग देखते हुए 'अपवर्ग-नाममाला'[1] ही वास्तविक नाम मालूम पड़ता है।

इस कोश में पाँच वर्ग याने क से म तक के वर्गों को छोड़ कर य, र, ल, व, श, ष, स, ह—इन आठ वर्णों में से कम-ज्यादा वर्णों से बने हुए शब्दों को बताया गया है।

इस कोश के रचयिता जिनभद्रसूरि हैं। इन्होंने अपने को जिनवल्लभसूरि और जिनदत्तसूरि के सेवक के रूप में बताया है और अपना जिनप्रिय (वल्लभ) सूरि के विनेय—शिष्य के रूप में परिचय दिया है।[2] इसलिए ये १२ वीं शती में हुए, ऐसा अनुमान होता है, लेकिन यह समय विचारणीय है।

अपवर्गनाममाला :

जैन ग्रन्थावली, पृ० ३०९ में अज्ञातकर्तृक 'अपवर्गनाममाला' नामक ग्रंथ का उल्लेख है जो २१५ श्लोक-प्रमाण है।

---

१ अपवर्गपदाध्यासितमपवर्गत्रितयमार्हतं नत्वा।
अपवर्गनाममाला विधीयते मुग्धबोधधिया॥

२. श्रीजिनवल्लभ जिनदत्तसूरिसेवो जिनप्रियविनेयः।
अपवर्गनाममालामकरोज्जिनभद्रसूरिरिमाम्॥

एकाक्षरी-नानार्थकाण्ड :

दिगम्बर धरसेनाचार्य ने 'एकाक्षरी नानार्थकाण्ड' नामक कोश की भी रचना की है।[1] इसमें ३५ पद्य हैं। क से लेकर क्ष पर्यंत वर्णों का अर्थ-निर्देश प्रथम २८ पद्यों में है और स्वरों का अर्थ-निर्देश बाद के ७ पद्यों में है।

एकाक्षरनाममालिका :

अमरचन्द्रसूरि ने 'एकाक्षरनाममालिका' नामक कोश-ग्रंथ की रचना १३ वीं शताब्दी में की है। इस कोश के प्रथम पद्य में कर्ता ने अमर कवीन्द्र नाम दर्शाया है और सूचित किया है कि विश्वाभिधानकोशों का अवलोकन करके इस 'एकाक्षरनाममालिका' की रचना की है। इसमें २१ पद्य हैं।

अमरचन्द्रसूरि ने गुजरात के राजा विसलदेव की राजसभा को विभूषित किया था। इन्होंने अपनी शीघ्रकवित्वशक्ति से संस्कृत में काव्य-समस्यापूर्ति करके समकालीन कविसमाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त किया था।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं :

१. बालभारत, २ काव्यकल्पलता (कविशिक्षा), ३. पद्मानन्द-महाकाव्य, ४. स्यादिशब्दसमुच्चय।

एकाक्षरकोश :

महाक्षपणक ने 'एकाक्षरकोश' नाम से ग्रंथ की रचना की है। कवि ने प्रारम्भ में ही आगमों, अभिधानों, धातुओं और शब्दशासन से यह एकाक्षर-नामाभिधान किया है। ४१ पद्यों में क से क्ष तक के व्यञ्जनों के अर्थप्रतिपादन के बाद स्वरों के अर्थों का दिग्दर्शन किया है।

एक प्रति में कर्ता के सम्बन्ध में इस प्रकार पाठ मिलता है : एकाक्षरार्थ-संलाप: स्मृतः क्षपणकादिभि:। इस प्रकार नाम के अलावा इस ग्रन्थकार के बारे में कोई परिचय प्राप्त नहीं होता। यह कोश-ग्रंथ प्रकाशित है।[2]

---

१ पं० नन्दलाल शर्मा की भाषा-टीका के साथ सन् १९१२ में आकलूज-निवासी नाथारंगजी गांधी द्वारा यह अनेकार्थकोश प्रकाशित किया गया है।

२. एकाक्षरनाम-कोषसंग्रह : संपादक—पं० मुनि श्री रमणीकविजयजी; प्रकाशक—राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, वि० सं० २०२१.

एकाक्षरनाममाला :

'एकाक्षरनाममाला'[1] मे ५० पद्य है। विक्रम की १५ वीं शताब्दी मे इसकी रचना सुधाकलश मुनि ने की है। कर्त्ता ने श्री वर्धमान तीर्थंकर को प्रणाम करके अन्तिम पद्य मे अपना परिचय देते हुए अपने को मलधारिगच्छभर्त्ता गुरु राजशेखरसूरि का शिष्य बताया है।

राजशेखरसूरि ने वि० स० १४०५ मे 'प्रबन्धकोश' (चतुर्विंशतिप्रबन्ध) नामक ग्रथ की रचना की है।

उपाध्याय समयसुन्दरगणि ने स० १६४९ मे रचित 'अष्टलक्षार्थी—अर्थरत्नावली' मे इस कोश का नामनिर्देश किया है और अवतरण दिया है।

सुधाकलशगणिरचित 'सगीतोपनिषत्' (स० १३८०) और उसका सार–सारोद्धार (स० १४०६) प्राप्त होता है जो सन् १९६१ मे डा० उमाकान्त प्रेमानद शाह द्वारा सपादित होकर गायकवाड ओरियन्टल सिरीज, १३३, मे 'सगीतोपनिषत्सारोद्धार' नाम से प्रकाशित हुआ है।

आधुनिक प्राकृत-कोश :

आचार्य विजयराजेन्द्रसूरि ने साढे चार लाख श्लोक-प्रमाण 'अभिधानराजेन्द्र' नामक प्राकृत कोश ग्रथ की रचना का प्रारम्भ वि० स० १९४६ मे सियाणा में किया था और स० १९६० मे सूरत मे उसकी पूर्णाहुति की थी। यह कोश सात विशालकाय भागो मे है। इसमे ६०००० प्राकृत शब्दों का मूल के साथ संस्कृत मे अर्थ दिया है और उन शब्दो के मूल स्थान तथा अवतरण भी दिये है। कहीं कहीं तो अवतरणो मे पूरे ग्रथ तक दे दिये गये हैं। कई अवतरण सस्कृत मे भी हैं। आधुनिक पद्धति से इसकी सकलना हुई है।[2]

इसी प्रकार इन्हीं विजयराजेन्द्रसूरि का 'शब्दाम्बुधिकोश' प्राकृत मे है, जो अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

---

१ यह 'एकाक्षरनाममाला' हेमचन्द्राचार्य की 'अभिधानचिन्तामणि' की अनेक आवृत्तियो के साथ परिशिष्टो में (देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, विजयकस्तूरसूरिसपादित 'अभिधानचिन्तामणि-कोश', पृ० २३६-२४०) और 'अनेकार्थरत्नमञ्जूषा' परिशिष्ट क (देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, ग्रन्थ ८१) में भी प्रकाशित है।

२ यह कोश रतलाम से प्रकाशित हुआ है।

प० हरगोविन्ददास त्रिकमचद शेठ ने 'पाइयसद्दमहण्णव' (प्राकृतशब्द-महार्णव) नामक प्राकृत-हिन्दी-शब्द-कोश रचा है जो प्रकाशित है।

शतावधानी श्री रत्नचद्रजी मुनि ने 'अर्धमागधी-डिक्शनरी' नाम से आगमो के प्राकृत शब्दों का चार भाषाओं में अर्थ देकर प्राकृत-कोशग्रथ बनाया है जो प्रकाशित है।

आगमोद्धारक आचार्य आनन्दसागरसूरि के 'अल्पपरिचितसैद्धान्तिक-शब्दकोश' के दो भाग प्रकाशित हुए हैं।

तौरुष्कीनाममाला :

सोममत्री के पुत्र (जिनका नाम नहीं बताया गया है) ने 'तौरुष्की-नाममाला' अपर नाम 'यवननाममाला' नामक सस्कृत-फारसी-कोशग्रथ की रचना की है, जिसकी वि० स० १७०६ मे लिखित ६ पत्रो की एक प्रति अहम-दाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर के सग्रह में है। इसके अत मे इस प्रकार प्रशस्ति है :

> राजर्षेर्देशरक्षाकृत् गुमास्त्यु स च कथ्यते।
> ह्रीमतिः सत्त्वमित्युक्ता यवनीनाममालिका ॥

इति श्रीजैनधर्मीय श्रीसोममन्त्रीश्वरात्मजविरचिते यवनीभाषायां तौरुष्कीनाममाला समाप्ता। सं० १७०६ वर्षे शाके १५७२ वर्तमाने ज्येष्ठशुक्लाष्टमीघस्रे श्रीसमालखानडेरके लिपिकृता महिमासमुद्रेण।

मुस्लिम राजकाल मे सस्कृत-फारसी के व्याकरण और कोशग्रथों की जैन-जैनेतरकृत बहुत-सी रचनाएँ मिलती हैं। बिहारी कृष्णदास, वेदागराय और दो अज्ञात विद्वानो की व्याकरण-ग्रन्थो की रचनाएँ अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर में हैं। प्रतापभट्टकृत 'यवननाममाला' और अज्ञातकर्तृक एक फारसी कोश की हस्तलिखित प्रतियाँ भी उपर्युक्त विद्यामदिर के सग्रह मे हैं।

फारसी-कोश :

किसी अज्ञातनामा विद्वान् ने इस 'फारसी-कोश' की रचना की है। इसकी २० वीं सदी मे लिखी गई ६ पत्रो की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लाल-भाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर मे है।

तीसरा प्रकरण

अलङ्कार

वामन ने अपने 'काव्यालकारसूत्र' में 'अलकार' शब्द के दो अर्थ बताये है : १. सौन्दर्य के रूप मे (सौन्दर्यमलकारः) और २ अलकरण के रूप में (अलंक्रियतेऽनेन, करणव्युत्पत्त्या पुनरलंकारशब्दोऽयमुपमादिषु वर्तते)। इनके मत मे काव्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ को काव्यालकार इसलिये कहते हैं कि उसमे काव्यगत सौन्दर्य का निर्देश और आख्यान किया जाता है। इससे हम 'काव्यं ग्राह्यमलङ्कारात्' काव्य को ग्राह्य और श्रेष्ठ मानते है।

'अलकार' शब्द के दूसरे अर्थ का इतिहास देखा जाय तो रुद्रदामन् के शिलालेख के अनुसार द्वितीय शताब्दी ईस्वी सन् में साहित्यिक गद्य और पद्य को अलकृत करना आवश्यक माना जाता था।

'नाट्यशास्त्र' (अ० १७, १-५) में ३६ लक्षण गिनाये गये हैं। नाट्य मे प्रयुक्त काव्य में इनका व्यवहार होता था। धीरे-धीरे ये लक्षण लुप्त होते गये और इनमे से कुछ लक्षणो को दण्डी आदि प्राचीन आलकारिको ने अलकार के रूप में स्वीकार किया। भूषण[1] अथवा विभूषण नामक प्रथम लक्षण मे अलकारो और गुणों का समावेश हुआ।

'नाट्यशास्त्र' में उपमा, रूपक, दीपक, यमक—ये चार अलकार नाटक के अलकार माने गये हैं।

जैनो के प्राचीन साहित्य में 'अलकार' शब्द का प्रयोग और उसका विवेचन कहाँ हुआ है और अलकार-सम्बन्धी प्राचीन ग्रन्थ कौन-सा है, इसकी खोज करनी होगी।

जैन सिद्धात ग्रथों मे व्याकरण की सूचना के अलावा काव्यरस, उपमा आदि विविध अलकारो का उपयोग हुआ है। ५ वीं शताब्दी में रचित नन्दिसूत्र मे

---

१. भूषण की व्याख्या—अलंकारैर्गुणैश्चैव बहुभिः समलङ्कृतम्।
भूषणैरिव चित्रार्थैस्तद् भूषणमिति स्मृतम्॥

काव्यरस का उल्लेख है। 'स्वरपाहुड' में ११ अलकारो का उल्लेख है और 'अनुयोगद्वारसूत्र' मे नौ रसो के ऊहापोह के अलावा सूत्र का लक्षण बताते हुए कहा गया है :

निद्दोसं सारमंतं च हेउजुत्तमलंकियं।
उवणीअं सोवयारं च मियं महुरमेव च ॥

अर्थात् सूत्र निर्दोष, सारयुक्त, हेतुवाला, अलकृत, उपनीत—प्रस्तावना और उपसहारवाला, सोपचार—अविरुद्धार्थक और अनुप्रासयुक्त और मित—अल्पाक्षरी तथा मधुर होना चाहिये।

विक्रम सवत् के प्रारभ के पूर्व ही जैनाचार्यों ने काव्यमय कथाएँ लिखने का प्रयत्न किया है। आचार्य पादलिप्त की तरगवती, मलयवती, मगधसेना, सघदासगणिविरचित वसुदेवहिंडी तथा धूर्त्ताख्यान आदि कथाओं का उल्लेख विक्रम की पाचवीं-छठी सदी मे रचित भाष्यों मे आता है। ये ग्रन्थ अलकार और रस से युक्त है।

विक्रम की ७ वीं शताब्दी के विद्वान् जिनदासगणि महत्तर और ८ वीं शताब्दी मे विद्यमान आचार्य हरिभद्रसूरि के ग्रन्थों में 'कव्वालकारेहिं जुत्तम लंकियं' काव्य को अलकारो से युक्त और अलंकृत कहा है।

हरिभद्रसूरि ने 'आवश्यकसूत्र-वृत्ति' (पत्र ३७५) मे कहा है कि सूत्र बत्तीस दोषों से मुक्त और 'छवि' अलकार से युक्त होना चाहिये। तात्पर्य यह है कि सूत्र आदि की भाषा भले ही सीधी-सादी स्वाभाविक हो परन्तु वह शब्दालकार और अर्थालकार से विभूषित होनी चाहिये। इससे काव्य का कलेवर भाव और सौंदर्य से देदीप्यमान हो उठता है। चाहे जैसी रुचिवाले को ऐसी रचना हृदयगम होती है।

प्राचीन कवियों में पुष्पदत ने अपनी रचना में रुद्रट आदि काव्यालकारिको का स्मरण किया है। जिनवल्लभसूरि, जिनका वि० स० ११६७ में स्वर्गवास हुआ, रुद्रट, दडी, भामह आदि आलकारिकों के शास्त्रों मे निपुण थे, ऐसा कहा गया है।

जैन साहित्य में विक्रम की नवीं शताब्दी के पूर्व किसी अलंकारशास्त्र की स्वतत्र रचना हुई हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। नवीं शताब्दी में विद्यमान आचार्य बप्पभट्टिसूरिरचित 'कवि-शिक्षा' नामक रचना उपलब्ध नहीं है। प्राकृत भाषा में रचित 'अलकारदर्पण' यद्यपि वि० स० ११६५ के पूर्व की रचना है परंतु यह

किस संवत् या शताब्दी मे रचा गया, यह निश्चित नहीं है। यदि इसे दसवीं शताब्दी का ग्रन्थ माना जाय तो यह अलङ्कारविषयक सर्वप्रथम रचना मानी जा सकती है। विक्रम की १० वीं शताब्दी में मुनि अजितसेन ने 'शृङ्गारमञ्जरी' ग्रथ की रचना की है परन्तु वह ग्रन्थ अभी तक देखने मे नहीं आया। उसके बाद थारापद्रीयगच्छ के नमिसाधु ने रुद्रट कवि के 'काव्यालकार' पर वि० स० ११२५ में टीका लिखी है। उसके बाद की तो आचार्य हेमचन्द्रसूरि, महामात्य अम्बाप्रसाद और अन्य विद्वानों की कृतियाँ उपलब्ध होती है।

आचार्य रत्नप्रभसूरिरचित 'नेमिनाथचरित' मे अलङ्कारशास्त्र की विस्तृत चर्चा आती है। इस प्रकार अन्य विषयों के ग्रन्थों में प्रसगवशात् अलकार और रसविषयक उल्लेख मिलते है।

जैन विद्वानों की इस प्रकार की कृतियों पर जैनेतर विद्वानों ने टीका-ग्रथों की रचना की हो, ऐसा 'वाग्भटालकार' के सिवाय कोई ग्रन्थ सुलभ नहीं है। जैनेतर विद्वानों की कृतियों पर जैनाचार्यों के अनेक व्याख्याग्रथ प्राप्त होते है। ये ग्रंथ जैन विद्वानो के गहन पाण्डित्य तथा विद्याविषयक व्यापक दृष्टि के परिचायक हैं।

अलङ्कारदर्पण (अलंकारदप्पण) :

'अलकारदप्पण' नाम की प्राकृत भाषा में रची हुई एकमात्र कृति, जोकि वि० स० ११६१ में तालपत्र पर लिखी गई है, जैसलमेर के भण्डार में मिलती है। उसका आन्तर निरीक्षण करने से पता लगता है कि यह ग्रन्थ सक्षिप्त होने पर भी अलकार ग्रन्थों में अति प्राचीन उपयोगी ग्रन्थ है। इसमे अलकार का लक्षण बताकर करीब ४० उपमा, रूपक आदि अर्थालकारों और शब्दालकारों के प्राकृत भाषा में लक्षण दिये हैं। इसमे कुल १३४ गाथाएँ हैं। इसके कर्ता के विषय मे इस ग्रन्थ में या अन्य ग्रन्थो में कोई सूचना नहीं मिलती। कर्ता ने मंगलाचरण में श्रुतदेवी का स्मरण इस प्रकार किया है .

सुंदरपअविण्णासं विमलालंकाररेहिअसरीरं।
सुह (?य) देविअ च कव्व पणवियं पवरवण्णड्ढं॥

इस पद्य से मालूम पड़ता है कि इस ग्रन्थ के रचयिता कोई जैन होगे जो वि० स० ११६१ के पूर्व हुए होंगे।

मुनिराज श्री पुण्यविजयजी द्वारा जैसलमेर की प्रति के आधार पर की हुई प्रतिलिपि देखने में आई है।

कविशिक्षा :

आचार्य बप्पभट्टिसूरि (वि० स० ८०० से ८९५) ने 'कविशिक्षा' या ऐसे ही नाम का कोई साहित्यग्रन्थ रचा हो, ऐसा विनयचन्द्रसूरिरचित 'काव्यशिक्षा' के उल्लेखो से ज्ञात होता है। आचार्य विनयचन्द्रसूरि ने 'काव्यशिक्षा' के प्रथम पद्य में 'बप्पभट्टिगुरोर्गिरम्' (पृष्ठ १) और 'लक्षणैर्जायते काव्य बप्पभट्टि प्रसादतः' (पृष्ठ १०९) इस प्रकार उल्लेख किये हैं। बप्पभट्टसूरि का 'कविशिक्षा' या इसी प्रकार के नाम का अन्य कोई ग्रन्थ आज तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

आचार्य बप्पभट्टिसूरि ने अन्य ग्रन्थो की भी रचना की थी। इनके 'तारागण' नामक काव्य का नाम लिया जाता है परन्तु वह अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

शृङ्गारमंजरी :

मुनि अजितसेन ने 'शृङ्गारमञ्जरी' नाम की कृति की रचना की है। इसमे ३ अध्याय है और कुल मिलाकर १२८ पद्य हैं। यह अलकारशास्त्र सम्बन्धी सामान्य ग्रन्थ है। इसमे दोष, गुण और अर्थालकारो का वर्णन है।

कर्ता के विषय मे कुछ भी जानकारी नहीं मिलती। सिर्फ रचना से ज्ञात होता है कि यह ग्रन्थ विक्रम की १० वीं शताब्दी मे लिखा गया होगा।

इसकी हस्तलिखित प्रति सूरत के एक भण्डार मे है, ऐसा 'जिनरत्नकोश' पृ० ३८६ में उल्लेख है। कृष्णमाचारियर ने भी इसका उल्लेख किया है।[1]

काव्यानुशासन :

'सिद्धहेमचन्द्रशब्दानुशासन' वगैरह अनेक ग्रन्थो के निर्माण से सुविख्यात, गुर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिंह से सम्मानित और परमार्हत कुमारपाल नरेश के धर्माचार्य कलिकालसर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'काव्यानुशासन' नामक अलकार-ग्रन्थ की वि० स० ११९६ के आसपास मे रचना की है।[2]

---

१. देखिए—हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर, पृ० ७५२.

२ यह ग्रन्थ निर्णयसागर प्रेस, बम्बई की 'काव्यमाला' ग्रन्थावली मे स्वोपज्ञ दोनों वृत्तियों के साथ प्रकाशित हुआ था। फिर महावीर जैन विद्यालय, बम्बई से सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ। इसकी दूसरी आवृत्ति वहीं से सन् १९६५ में प्रकाशित हुई है।

संस्कृत के सूत्रबद्ध इस ग्रन्थ में आठ अध्याय हैं। पहले अध्याय में काव्य का प्रयोजन और लक्षण है। दूसरे मे रस का निरूपण है। तीसरे मे शब्द, वाक्य, अर्थ और रस के दोष बताये गए हैं। चतुर्थ में गुणों की चर्चा की गई है। पाँचवें अध्याय मे छ प्रकार के शब्दालंकारो का वर्णन है। छठे में २९ अर्थालंकारो के स्वरूप का विवेचन है। सातवे अध्याय मे नायक, नायिका और प्रतिनायक के विषय मे चर्चा की गई है। आठवें मे नाटक के प्रेक्ष्य और श्रव्य—ये दो भेद और उनके उपभेद बताये गए हैं। इस प्रकार २०८ सूत्रों मे साहित्य और नाट्य शास्त्र का एक ही ग्रन्थ में समावेश किया गया है।

कई विद्वान् आचार्य हेमचद्र के 'काव्यानुशासन' पर मम्मट के 'काव्यप्रकाश' की अनुकृति होने का आक्षेप लगाते है। बात यह है कि आचार्य हेमचद्र ने अपने पूर्वज विद्वानो की कृतियों का परिशीलन कर उनमें से उपयोगी दोहन कर विद्यार्थियों के शिक्षण को लक्ष्य मे रखकर 'काव्यानुशासन' को सरल और सुबोध बनाने की भरसक कोशिश की है। मम्मट के 'काव्यप्रकाश' में जिन विषयों की चर्चा १० उल्लास और २१२ सूत्रों में की गई है उन सब विषयो का समावेश ८ अध्यायों और २०८ सूत्रों में मम्मट से भी सरल शैली में किया है। नाट्यशास्त्र का समावेश भी इसी मे कर दिया है, जबकि 'काव्यप्रकाश' में यह विभाग नहीं है।

भोजराज के 'सरस्वती-कण्ठाभरण' में विपुल सख्या में अलकार दिये गये हैं। आचार्य हेमचद्र ने इस ग्रन्थ का उपयोग किया है, ऐसा उनकी 'विवेकवृत्ति' से मालूम पड़ता है, लेकिन उन अलकारों की व्याख्याएँ सुधार सॅवार कर अपनी दृष्टि से श्रेष्ठतर बनाने का कार्य भी आचार्य हेमचद्र ने किया है।

जहाँ मम्मट ने 'काव्यप्रकाश' मे ६१ अलकार बताये हैं वहाँ हेमचंद्र ने छठे अध्याय मे सकर के साथ २९ अर्थालकार बताये हैं। इससे यही व्यक्त होता है कि हेमचद्र ने अलकारों की सख्या को कम करके अत्युपयोगी अलकार ही बताये हैं। जैसे, इन्होने ससृष्टि का अन्तर्भाव सकर मे किया है। दीपक का लक्षण ऐसा दिया है जिससे इसमे तुल्ययोगिता का समावेश हो। परिवृत्ति नामक अलंकार का जो लक्षण दिया है उसमें मम्मट के पर्याय और परिवृत्ति दोनों का अन्तर्भाव हो जाता है। रस, भाव इत्यादि से सबद्ध रसवत्, प्रेयस्, ऊर्जस्विन्, समाहित आदि अलकारों का वर्णन नहीं किया गया। अनन्वय और उपमेयोपमा को उपमा के प्रकार मानकर अत में उल्लेख कर दिया गया। प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त तथा दूसरे लेखकों द्वारा निरूपित निदर्शना का अन्तर्भाव

इन्होने निदर्शन मे ही कर दिया है। स्वभावोक्ति और अप्रस्तुतप्रशसा को इन्होंने क्रमशः जाति और अन्योक्ति नाम दिया है।

हेमचद्र की साहित्यिक विशेषताएँ निम्नलिखित है .

१. साहित्य रचना का एक लाभ अर्थ की प्राप्ति, जो मम्मट ने कहा है, हेमचद्र को मान्य नहीं है।
२. मुकुल भट्ट और मम्मट की तरह लक्षणा का आधार रूढि या प्रयोजन न मानते हुए सिर्फ प्रयोजन का ही हेमचद्र ने प्रतिपादन किया है।
३. अर्थशक्तिमूलक ध्वनि के १. स्वतःसभवी, २. कविप्रौढोक्तिनिष्पन्न और ३. कविनिबद्धवक्तृप्रौढोक्तिनिष्पन्न—ये तीन भेद दर्शानेवाले ध्वनिकार से हेमचद्र ने अपना अलग मत प्रदर्शित किया है।
४. मम्मट ने 'पुस्त्वादपि प्रविचलेत्' पद्य श्लेषमूलक अप्रस्तुतप्रशसा के उदाहरण में लिया है, तो हेमचद्र ने इसे शब्दशक्तिमूलक ध्वनि का उदाहरण बताया है।
५. रसों में अलकारों का समावेश करके बड़े-बड़े कवियों ने नियम का उल्लघन किया है। इस दोष का ध्वनिकार ने निर्देश नहीं किया, जबकि हेमचद्र ने किया है।

'काव्यानुशासन' मे कुल मिलाकर १६३२ उद्धरण दिये गये हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि आचार्य हेमचन्द्र ने साहित्य शास्त्र के अनेको ग्रन्थो का गहरा परिशीलन किया था।

हेमचद्र ने भिन्न-भिन्न ग्रन्थो के आधार पर अपने 'काव्यानुशासन' की रचना की है अतः इसमे कोई विशेषता नहीं है, यह सोचना भी हेमचद्र के प्रति अन्याय ही होगा, क्योंकि हेमचद्र का दृष्टिकोण व्यापक एव शैक्षणिक था।

काव्यानुशासन-वृत्ति (अलङ्कारचूडामणि) :

'काव्यानुशासन' पर आचार्य हेमचद्र ने शिष्यहितार्थ 'अलकारचूडामणि' नामक स्वोपज्ञ लघुवृत्ति की रचना की है। हेमचद्र ने इस वृत्ति रचना का हेतु बताते हुए कहा है : **आचार्यहेमचन्द्रेण विद्वत्प्रीत्यै प्रतन्यते।**

यह वृत्ति विद्वानो की प्रीति सपादन करने के हेतु बनाई है। यह सरल है। इसमे कर्ता ने विवादग्रस्त बातो की सूक्ष्म विवेचना नहीं की है। यह भी कहना ठीक होगा कि इस वृत्ति से अलकारविषयक विशिष्ट ज्ञान सपन्न नहीं हो सकता। वृत्तिकार ने इसमें ७४० उदाहरण और ६७ प्रमाण दिये हैं।

काव्यानुशासन-वृत्ति (विवेक) :

विशिष्ट प्रकार के विद्वानों के लिए हेमचंद्र ने स्वयं इसी 'काव्यानुशासन' पर 'विवेक' नामक वृत्ति की रचना की है। इस वृत्तिरचना का हेतु बताते हुए हेमचंद्र ने इस प्रकार कहा है :

> विवरीतुं क्वचिद् दृब्धं नवं संदर्भितुं क्वचित्।
> काव्यानुशासनस्यायं विवेकः प्रवितन्यते॥

इस 'विवेक' वृत्ति में आचार्य ने ६२४ उदाहरण और २०१ प्रमाण दिये हैं। इसमें सभी विवादास्पद विषयों की चर्चा की गई है।

अलङ्कारचूडामणि-वृत्ति (काव्यानुशासन-वृत्ति) :

उपाध्याय यशोविजयगणि ने आचार्य हेमचंद्रसूरि के 'काव्यानुशासन' पर 'अलङ्कारचूडामणि-वृत्ति' की रचना की है, ऐसा उनके 'प्रतिमाशतक' की स्वोपज्ञ वृत्ति में उल्लिखित 'प्रपञ्चित चैतदलङ्कारचूडामणिवृत्तावस्माभिः' से मालूम पड़ता है। यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

काव्यानुशासन-वृत्ति :

'काव्यानुशासन' पर आचार्य विजयलावण्यसूरि ने स्वोपज्ञ दोनों वृत्तियों के आधार पर एक नई वृत्ति की रचना की है, जिसका प्रथम भाग प्रकाशित हो चुका है।

काव्यानुशासन-अवचूरि :

'काव्यानुशासन' पर आचार्य विजयलावण्यसूरि के प्रशिष्य आचार्य विजयसुशीलसूरि ने छोटी-सी 'अवचूरि' की रचना की है।

कल्पलता :

'कल्पलता' नामक साहित्यिक ग्रन्थ पर 'कल्पलतापल्लव' और 'कल्पपल्लवशेष' नामक दो वृत्तियाँ लिखी गईं, ऐसा 'कल्पपल्लवशेष' की हस्तलिखित प्रति से ज्ञात होता है। यह प्रति वि० सं० १२०५ में तालपत्र पर लिखी हुई जैसलमेर के हस्तलिखित ग्रन्थभण्डार से प्राप्त हुई है। अतः कल्पलता का रचनाकाल वि० सं० १२०५ से पूर्व मानना उचित है।

'कल्पलता' के रचयिता कौन थे, इसका 'कल्पपल्लवशेष' मे उल्लेख न होने से रचनाकार के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। वादी देवसूरि ने जो

'प्रमाणनयतत्त्वालोक' नामक दार्शनिक ग्रथ निर्माण किया है उसपर उन्होने 'स्याद्वादरत्नाकर' नामक स्वोपज्ञ विस्तृत वृत्ति की रचना की है। उसमे[1] उन्होने इस ग्रन्थ के विषय मे इस प्रकार उल्लेख किया है :

श्रीमदम्बाप्रसादसचिवप्रवरेण कल्पलतायां तत्सङ्केते कल्पपल्लवे च प्रपञ्चितमस्तीति तत एवावसेयम्।

यह उल्लेख सूचित करता है कि 'कल्पलता' और उसकी दोनो वृत्तियॉ—इन तीनो ग्रन्थो के कर्ता महामात्य अम्बाप्रसाद थे। इन महामात्य के विषय मे एक दानपत्र-लेख मिला है,[2] जिसके आधार पर निर्णय हो सकता है कि वे गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह के महामात्य थे और कुमारपाल के समय मे भी महामात्य के रूप मे विद्यमान थे।[3]

वादी देवसूरि जैसे प्रौढ़ विद्वान् ने महामात्य अम्बाप्रसाद के ग्रथो का उल्लेख किया है, इससे मालूम होता है कि अम्बाप्रसाद के इन ग्रन्थो का उन्होंने अवलोकन किया था तथा उनकी विद्वत्ता के प्रति सूरिजी का आदरभाव था। वादी देवसूरि के प्रति अम्बाप्रसाद को भी वैसा ही आदरभाव था, इसका सकेत 'प्रभावकचरित'[4] के निम्नोक्त उल्लेख से होता है :

देवबोध नामक भागवत विद्वान् जब पाटन मे आया तब उसने पाटन के विद्वानो को लक्ष्य करके एक श्लोक का अर्थ करने की चुनौती दी। जब छः महीने तक कोई विद्वान् उसका अर्थ नहीं बता सका तब महामात्य अम्बाप्रसाद ने सिद्धराज को वादी देवसूरि का नाम बताया कि वे इसका अर्थ बता सकते हैं।[5] सिद्धराज ने सूरिजी को सादर आमन्त्रण भेजा और उन्होंने श्लोक की स्पष्ट व्याख्या कह सुनाई। उसे सुनकर सब आनन्दित हुए।

---

१. परिच्छेद १, सूत्र २, पृ० २९; प्रकाशक—आर्हतमतप्रभाकर, पूना, वीर-सं० २४५३.

२. गुजरातना ऐतिहासिक शिलालेखो, लेख १४४.

३. गुजरातनो मध्यकालीन राजपूत इतिहास, पृ० ३३२.

४. वादिदेवसूरिचरित, श्लोक ६१ से ६६.

५. षण्मासान्ते तदा चाम्बप्रसादो भूपतेः पुरः।
देवसूरिप्रभुं सिद्धराज दर्शयति स्म च ॥ ६५ ॥
—प्रभावक-चरित, वादिदेवसूरिचरित.

अभिप्राय यह है कि जब वादी देवसूरि ने 'स्याद्वादरत्नाकर' की रचना की इसके पहले ही अम्बाप्रसाद ने अपने तीनों ग्रन्थों की रचना पूरी कर ली थी। चूंकि 'स्याद्वादरत्नाकर' अभी तक पूरा प्राप्त नहीं हुआ है इसलिए उसकी रचना का ठीक समय अज्ञात है। 'कल्पलता' ग्रन्थ भी अभी तक नहीं मिला है।

कल्पलतापल्लव (सङ्केत) :

'कल्पलता' पर महामात्य अम्बाप्रसादरचित 'कल्पपल्लव' नामक वृत्ति ग्रन्थ था परन्तु वह अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसलिये उसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता।

कल्पपल्लवशेष (विवेक) :

'कल्पलता' पर 'कल्पपल्लवशेष' नामक वृत्ति की ६,५०० श्लोक-परिमाण हस्तलिखित प्रति जैसलमेर के भंडार से प्राप्त हुई है। इसके कर्ता भी महामात्य अम्बाप्रसाद ही हैं। इसका आदि पद्य इस प्रकार है :

यत् पल्लवे न विवृतं दुर्बोधं मन्दबुद्धेश्चापि।
क्रियते कल्पलतायां तस्य विवेकोऽयमतिसुगमः ॥

इस ग्रन्थ में अलंकार, रस और भावों के विषय में दार्शनिक चर्चा की गई है। इसमें कई उदाहरण अन्य कवियों के हैं और कई स्वनिर्मित हैं। संस्कृत के अलावा प्राकृत के भी अनेक पद्य हैं।

'कल्पलता' को विष्णुमंदिर, 'पल्लव' को मंदिर का कलश और 'विवेक' को उसका ध्वज कहा गया है।

वाग्भटालङ्कार :

'वाग्भटालंकार' के कर्ता वाग्भट हैं। प्राकृत में उनको वाहड कहते थे[1]। ये गुर्जरनरेश सिद्धराज के समकालीन और उनके द्वारा सम्मानित थे। उनके पिता का नाम सोम था और वे महामंत्री थे। कई विद्वान् उदयन महामंत्री का दूसरा नाम सोम था, ऐसा मानते हैं। यह बात ठीक हो तो ये वाग्भट वि० सं० ११७९ से १२१३ तक विद्यमान थे[2]।

---

१. यम०दसुत्तिमपुड–मुत्तिअमणिणोपहासमसुह व्व ।
सिरिवाहड त्ति तणओ आसि बुहो तस्स सोमस्स ॥ (४. १४८, पृ ७२)

२. 'प्रबन्धचिन्तामणि' शृंग २२, श्लोक ४७२, ४७४

इस ग्रथ में ५ परिच्छेद हैं। कुल २६० पद्य हैं।-अधिकाश पद्य अनुष्टुप् में है। परिच्छेद के अन्त में कतिपय पद्य अन्य छदों में रचे गये हैं। इसमें ओज-गुण (३.१४) का चित्रण करनेवाला एकमात्र गद्य का अवतरण है।

प्रथम परिच्छेद मे काव्य का लक्षण, काव्य की रचना में प्रतिभाहेतु का निर्देश, प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास की व्याख्या, काव्यरचना के लिये अनुकूल परिस्थिति और कवियो का पालन करने के नियमो की चर्चा है।

दूसरे परिच्छेद में काव्य की रचना सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश और भूत-भाषा—इन चार भाषाओं में की जा सकती है, यह वर्णित है। काव्य के छन्द-निबद्ध और गद्य निबद्ध—ये दो तथा गद्य, पद्य और मिश्र—ये तीन प्रकार के भेद किये गये हैं। इसके बाद पद और वाक्य के आठ दोषों के लक्षण का उदाहरणों के साथ विवेचन करके अर्थ-दोषों का निरूपण किया गया है।

तीसरे परिच्छेद में काव्य के दस गुण और लक्षण उदाहरणसहित दिये गये हैं।

चौथे परिच्छेद में चित्र, वक्रोक्ति, अनुप्रास और यमक—इन चार शब्दा-लकारो तथा उनके उपभेदों का, ३५ अर्थालकारो और वैदर्भी तथा गौडीया—इन दो रीतियों का विवेचन किया गया है।

पाचवे परिच्छेद में नौ रस, नायक और नायिकाओं के भेद और तत्सम्बन्धी अन्य विषयो का निरूपण है।

इस ग्रन्थ में जो उदाहरण दिये गये हैं वे सब कर्ता के स्वरचित मालूम पड़ते हैं। चतुर्थ परिच्छेद के ४९, ५३, ५४, ७४, ७८, १०६, १०७ और १४८ सख्यक उदाहरण प्राकृत में हैं। इसमे 'नेमिनिर्वाण-काव्य' के छः पद्य उद्धृत है।

१. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

आचार्य सोमसुदरसूरि (स्व० वि० स० १४९९) के सतानीय सिंहदेवगणि ने 'वाग्भटालकार' पर १३३१ श्लोक-परिमाण वृत्ति की रचना की है।[1]

२. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

तपागच्छीय आचार्य विशालराज के शिष्य सोमोदयगणि ने 'वाग्भटालकार' पर ११६४ श्लोक-परिमाण वृत्ति बनाई है।[2]

---

१. यह वृत्ति निर्णयसागर प्रेस, बबई से छपी है।

२. इसकी हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है।

३. वाग्भटालंकार-वृत्ति :

खरतरगच्छीय जिनप्रभसूरि के सतानीय जिनतिलकसूरि के शिष्य उपाध्याय राजहस (सन् १३५०–१४००) ने 'वाग्भटालकार' पर वृत्ति की रचना की है।[१]

४. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

खरतरगच्छीय सागरचद्र के सतानीय वाचनाचार्य रत्नधीर के शिष्य ज्ञान प्रमोदगणि वाचक ने वि० स० १६८१ में 'वाग्भटालकार'[२] पर २९५६ श्लोक-परिमाण वृत्ति की रचना की है।[३]

५. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

खरतरगच्छीय आचार्य जिनराजसूरि के शिष्य आचार्य जिनवर्धनसूरि (सन् १४०५–१४१९) ने 'वाग्भटालकार' पर १०३५ श्लोक परिमाण वृत्ति की रचना की है, जिसकी चार हस्तलिखित प्रतिया अहमदाबाद के लालभाई दल-पतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर में हैं, जिनमे से एक प्रति वि० स० १५३९ में और दूसरी वि० स० १६९८ मे लिखी गई है।

६. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

खरतरगच्छीय सकलचद्र के शिष्य उपाध्याय समयसुदरगणि ने 'वाग्भटालकार' पर वि० स० १६९२ में १६५० श्लोक परिमाण वृत्ति की रचना की है जिसकी हस्तलिखित प्रति प्राप्त है।

७ वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

मुनि क्षेमहसगणि ने 'वाग्भटालकार' पर 'समासान्वय' नामक टिप्पण की रचना की है।

---

१ देखिए–'भाडारकर रिपोर्ट' सन् १८८३–८४, पृ० १५६, २७९.
"इति श्रीखरतरगच्छप्रभुश्रीजिनप्रभु(भ)सूरिसंतान्य(नीय)पूज्य श्रीजिनतिलकसूरि-शिष्यश्रीराजहंसोपाध्यायविरचितायां श्रीवाग्भटालङ्कार-टीकाया पञ्चमः परिच्छेदः।" इसकी हस्तलिखित प्रति वि० सं० १४८६ की भाडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना मे है।

२. सवद् विक्रमनृपतेः विधु-वसु-रस-शशिभिरङ्किते।
ज्ञानप्रमोदवाचकगणिभिरियं विरचिता वृत्ति.॥

३. इसकी हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के डेला भंडार में है।

८. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

आचार्य वर्धमानसूरि ने 'वाग्भटालकार' पर वृत्ति की रचना की है, ऐसा जैन ग्रन्थावली मे उल्लेख है।

९. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

मुनि कुमुदचन्द्र ने 'वाग्भटालकार' पर वृत्ति की रचना की है।

१०. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

मुनि साधुकीर्ति ने 'वाग्भटालकार' पर वि० स० १६२०–२१ मे वृत्ति की रचना की है।[1]

११. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

'वाग्भटालकार' पर किसी अज्ञात नामा मुनि ने वृत्ति की रचना की है।

१२. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

दिगम्बर विद्वान् वादिराज ने 'वाग्भटालकार' पर टीका की रचना वि० स० १७२९ की दीपमालिका के दिन गुरुवार को चित्रा नक्षत्र मे वृश्चिक लग्न के समय पूर्ण की।

वादिराज खडेलवालवशीय श्रेष्ठी पोमराज (पद्मराज) के पुत्र थे। वे खुद को अपने समय के धनजय, आशाधर और वाग्भट के पदधारक याने उनके जैसा विद्वान् बताते हैं। वे तक्षकनगरी के राजा भीम के पुत्र राजसिंह राजा के मन्त्री थे।

१३–५. वाग्भटालङ्कार-वृत्ति :

प्रमोदमाणिक्यगणि ने भी 'वाग्भटालकार' पर वृत्ति की रचना की है।

जैनेतर विद्वानो मे अनन्तभट्ट के पुत्र गणेश तथा कृष्णवर्मा ने 'वाग्भटालकार' पर टीकाएँ लिखी है।

कविशिक्षा :

वादी देवसूरि के शिष्य आचार्य जयमङ्गलसूरि ने 'कविशिक्षा' नामक ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ ३०० श्लोक-परिमाण गद्य में लिखा हुआ है। इसमे अलकार के विषय में अति सक्षेप में निर्देश करते हुए अनेक तथ्यपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

---

१. देखिए—जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास, ५८१–२.

इस कृति में गुर्जरनरेश सिद्धराज जयसिंह के प्रशसात्मक पद्य दृष्टान्त रूप मे दिये गये हैं। यह कृति विक्रम की १३ वीं शताब्दी में रची गयी है।'

आचार्य जयमङ्गलसूरि ने मारवाड़ में स्थित सुधा की पहाड़ी के सस्कृत शिलालेख की रचना की है। इनकी अपभ्रंश और जूनी गुजराती भाषा की रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

अलङ्कारमहोदधि :

'अलङ्कारमहोदधि' नामक अलंकारविषयक ग्रन्थ हर्षपुरीय गच्छ के आचार्य नरचन्द्रसूरि के शिष्य नरेन्द्रप्रभसूरि ने महामात्य वस्तुपाल की विनती से वि० सं० १२८० में बनाया।

यह ग्रन्थ आठ तरंगों में विभक्त है। मूल ग्रन्थ के ३०४ पद्य है। प्रथम तरग में काव्य का प्रयोजन और उसके भेदों का वर्णन, दूसरे में शब्द-वैचित्र्य का निरूपण, तीसरे में ध्वनि का निर्णय, चतुर्थ में गुणीभूत व्यंग्य का निर्देश, पञ्चम में दोषों की चर्चा, छठे में गुणों का विवेचन, सातवें में शब्दालंकार और आठवें में अर्थालंकार का निरूपण किया है। ग्रन्थ विद्यार्थियों के लिये उपयोगी है।[२]

अलङ्कारमहोदधि-वृत्ति :

'अलङ्कारमहोदधि' ग्रन्थ पर आचार्य नरेन्द्रप्रभसूरि ने स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना वि० सं० १२८२ में की है। यह वृत्ति ४५०० श्लोक-प्रमाण है। इसमे प्राचीन महाकवियों के ९८२ उदाहरणरूप विविध पद्य नाटक, काव्य आदि ग्रन्थों से उद्धृत किये गये हैं।

अहमदाबाद के डेला भण्डार की ३९ पत्रों की 'अर्थालङ्कार-वर्णन' नामक कृति कोई स्वतंत्र ग्रन्थ नहीं है अपितु इस 'अलंकारमहोदधि' ग्रन्थ के आठवें तरंग और इसकी स्वोपज्ञ टीका की ही नकल है।

---

१. इस ग्रन्थ की तालपत्रीय प्रति खंभात के शान्तिनाथ भण्डार में है। इसकी प्रेस कॉपी मुनिराज श्री पुण्यविजयजी के पास है।

२. यह 'अलंकारमहोदधि' ग्रन्थ गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज में छप गया है।

आचार्य नरेन्द्रप्रभसूरि की अन्य रचनाएँ इस प्रकार हैं :—१. काकुत्स्थ-केलि[1], २. विवेककलिका, ३. विवेकपादप[2], ४. वस्तुपालप्रशस्तिकाव्य—श्लोक ३७, ५. वस्तुपालप्रशस्तिकाव्य—श्लोक १०४[3], ६. गिरनार के मन्दिर का शिला-लेख[4]।

काव्यशिक्षा :

आचार्य रविप्रभसूरि के शिष्य आचार्य विनयचन्द्रसूरि ने 'काव्यशिक्षा'[5] नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसमे उन्होंने रचना-समय नहीं दिया है परन्तु आचार्य उदयसिंहसूरिरचित 'धर्मविधि वृत्ति' का सशोधन इन्हीं आचार्य विनय-चन्द्रसूरि ने वि० स० १२८६ मे किया था, ऐसा उल्लेख प्राप्त होने से यह ग्रन्थ भी उस समय के आसपास में रचा गया होगा, ऐसा मान सकते हैं।

इस ग्रन्थ मे छ. परिच्छेद हैं : १. शिक्षा, २. क्रियानिर्णय, ३. लोककौशल्य, ४ बीजव्यावर्णन, ५. अनेकार्थशब्दसग्रह और ६. रसभावनिरूपण। इसमे उदाहरण के लिये अनेक ग्रन्थों के उल्लेख और सदर्भ लिये हैं। आचार्य हेमचन्द्रसूरिरचित 'काव्यानुशासन' की विवेक टीका मे से अनेक पद्य और बाण के 'हर्षचरित' मे से अनेक गद्यसन्दर्भ लिये हैं। कवि बनने के लिये आवश्यक जो सौ गुण रविप्रभसूरि ने बताये है उनका विस्तार से

---

१. 'पुरातत्त्व' त्रैमासिक : पुस्तक २, पृ० २४६ में दी हुई 'बृहट्टिप्पनिका' में काकुत्स्थकेलि के १५०० श्लोक-प्रमाण नाटक होने की सूचना है। आचार्य राजशेखरकृत 'न्यायकन्दलीपञ्जिका' में दो ग्रन्थों का उल्लेख इस प्रकार है :

"तस्य गुरोः प्रियशिष्य प्रभुनरेन्द्रप्रभः प्रभवाढ्य.।
योऽलङ्कारमहोदधिमकरोत् काकुत्स्थकेलिं च ॥"
—पिटर्सन रिपोर्ट ३, २७५.

२. विवेककलिका और विवेकपादप—ये दोनो सूक्ति-सग्रह हैं।

३. 'अलकारमहोदधि' ग्रन्थ में ये दोनों प्रशस्तियाँ परिशिष्टरूप में छप गई हैं।

४. यह लेख 'प्राचीन जैन लेखसग्रह' मे छप गया है।

५. यह लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से प्रकाशित है।

उल्लेख किया गया है। इससे मालम होता है कि आचार्य रविप्रभसूरि ने अलंकारसम्बन्धी किसी ग्रन्थ की रचना की होगी, जो आज उपलब्ध नहीं है। काव्यशिक्षा में ८४ देशों के नाम, राजा भोज द्वारा जीते हुए देशों के नाम, कवियों की प्रौढोक्तियों से उत्पन्न उपमाएँ और लोक व्यवहार के ज्ञान का भी परिचय दिया गया है। इस विषय में आचार्य ने इस प्रकार कहा है:।

इति लोकव्यवहारं गुरुपदविनयादवाप्य कविः सारम्।
नवनवभणितिश्रव्यं करोति सुतरां क्षणात् काव्यम्॥

चतुर्थ परिच्छेद में सारभूत वस्तुओं का निर्देश करके उन-उन नामों के निर्देशपूर्वक प्राचीन महाकवियों के काव्यों का और जैनगुरुओं के रचित शास्त्रों का अभ्यास करना आवश्यक बताया है। दूसरा क्रियानिर्णय परिच्छेद व्याकरण के धातुओं का और पाँचवाँ अनेकार्थशब्दसग्रह-परिच्छेद शब्दों के एकाधिक अर्थों का ज्ञान कराता है। छठे परिच्छेद में रसों का निरूपण है। इससे यह मालूम होता है कि आचार्य विनयचन्द्रसूरि अलकार-विषय के अतिरिक्त व्याकरण और कोश के विषय में भी निष्णात थे। अनेक ग्रन्थों के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि वे एक बहुश्रुत विद्वान् थे।

कविशिक्षा और कवितारहस्य :

महामात्य वस्तुपाल के जीवन और उनके सुकृतों से सम्बन्धित 'सुकृत-सकीर्तनकाव्य' (सर्ग ११, श्लोक-सख्या ५५५) के रचयिता और ठक्कुर लावण्यसिंह के पुत्र महाकवि अरिसिंह महामात्य वस्तुपाल के आश्रित कवि थे। ये १३ वीं शताब्दी में विद्यमान थे। ये कवि वायडगच्छीय आचार्य जीवदेवसूरि के भक्त थे और कवीश्वर आचार्य अमरचन्द्रसूरि के कलागुरु थे।

आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने 'कविशिक्षा 'नामक जो सूत्रबद्ध ग्रन्थ रचा है तथा उसपर जो 'काव्यकल्पलता' नामक स्वोपज्ञ वृत्ति बनाई है उसमे कई सूत्र इन अरिसिंह के रचे हुए होने का आचार्य अमरसिंहसूरि ने स्वय उल्लेख किया है·

सारस्वतामृतमहार्णवपूर्णिमेन्दो-
मत्वाऽरिसिंहसुकवेः कवितारहस्यम्।
किञ्चिच्च तद्रचितमात्मकृतं च किञ्चिद्
व्याख्यास्यते त्वरितकाव्यकृतेऽत्र सूत्रम्॥

इस पद्य से यह भी ज्ञात होता है कि कवि अरिसिंह ने 'कवितारहस्य' नामक साहित्यिक ग्रन्थ की रचना की थी, परन्तु यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है।

कवि जल्हण की 'सूक्तिमुक्तावली' में अरसी ठक्कुर के चार सुभाषित उद्धृत हैं। इससे अरिसिंह के ही 'अरसी' होने का कई विद्वान् अनुमान करते हैं।

'कविशिक्षा' मे ४ प्रतान, २१ स्तबक एव ७९८ सूत्र हैं।

काव्यकल्पलता-वृत्ति :

सस्कृत साहित्य के अनेक ग्रंथों की रचना करनेवाले, जैन-जैनेतर वर्ग में अपनी विद्वत्ता से ख्याति पानेवाले और गुर्जरनरेश विशलदेव (वि० स० १२४३ से १२६१) की राजसभा को अलकृत करनेवाले वायडगच्छीय आचार्य जिनदत्त-सूरि के शिष्य आचार्य अमरचद्रसूरि ने अपने कलागुरु कवि अरिसिंह के 'कविता-रहस्य' को ध्यान में रखकर 'कविशिक्षा' नामक ग्रन्थ की श्लोकमय सूत्रबद्ध रचना की, जिसमे कई सूत्र कवि अरिसिंह ने और कुछ सूत्र आचार्य अमरचन्द्र-सूरि ने बनाये हैं।

इस 'कविशिक्षा' पर आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने स्वय ३३५७ श्लोक-परिमाण काव्यकल्पलता वृत्ति[1] की रचना की है। इसमे ४ प्रतान, २१ स्तबक और ७९८ सूत्र इस प्रकार हैं :

प्रथम छन्दःसिद्धि प्रतान है। इसमे १. अनुष्टुप्शासन, २. छन्दोऽभ्यास, ३ सामान्यशब्द, ४. वाद और ५. वर्ण्यस्थिति—इस प्रकार ५ स्तबक ११३ श्लोकबद्ध सूत्रों मे हैं।

दूसरा शब्दसिद्धि प्रतान है। इसमे १. रूढ-यौगिक-मिश्रशब्द, २. यौगिक-नाममाला, ३. अनुप्रास और ४. लाक्षणिक—इस प्रकार ४ स्तबक २०६ श्लोक-बद्ध सूत्रों में है।

तीसरा श्लेष-सिद्धि प्रतान है। इसमे १. श्लेषव्युत्पादन, २. सर्ववर्णन, ३. उद्दिष्टवर्णन, ४. अद्भुतविधि और ५. चित्रप्रपञ्च—इस प्रकार पाच स्तबक १८९ श्लोकबद्ध सूत्रो मे है।

---

१. यह 'कविकल्पलतावृत्ति' नाम से चौखबा सस्कृत-सिरीज, काशी से छप गयी है।

चौथा अर्थसिद्धि प्रतान है। इसमे १. अलङ्काराभ्यास, २ वर्ण्यार्थोत्पत्ति, ३ आकारार्थोत्पत्ति, ४. क्रियार्थोत्पत्ति, ५ प्रकीर्णक, ६ सख्या नामक और ७ समस्याक्रम—इस प्रकार सात स्तबक २९० श्लोक-बद्ध सूत्रो मे है।

• कवि-सप्रदाय की परपरा न रहने से और तद्विषयक अज्ञानता के कारण कविता की उत्पत्ति मे सौदर्य नहीं आ पाता। उस विषय की साधना के लिये आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने उपर्युक्त विषयो से भरी हुई इस 'काव्यकल्पलता वृत्ति' की रचना की है।

कविता-निर्माण विधि पर राजशेखर की 'काव्य-मीमासा' कुछ प्रकाश अवश्य डालती है परतु पूर्णतया नहीं। कवि क्षेमेन्द्र का 'कविकण्ठाभरण' मूल तत्त्वो का बोध कराता है परतु वह पर्याप्त नहीं है। कवि हलायुध का 'कविरहस्य' सिर्फ क्रिया-प्रयोगों की विचित्रताओ का बोध कराता है इसलिए वह भी एकदेशीय है। जयमगलाचार्य की 'कविशिक्षा' एक छोटा सा ग्रथ है अत वह भी पर्याप्त नहीं है। विनयचद्र की 'काव्य-शिक्षा' मे कुछ विषय अवश्य है परतु वह भी पूर्ण नहीं है।

इससे यह स्पष्ट है कि काव्य-निर्माण के अभ्यासियो के लिये अमरचन्द्रसूरि की 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' और देवेश्वर की 'काव्यकल्पलता' ये दोनो ग्रन्थ उपयोगी है। देवेश्वर ने अपनी काव्यकल्पलता की अमरचन्द्रसूरि की वृत्ति के आधार पर सक्षेप मे रचना की है।[1]

आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने सरस्वती की साधना करके सिद्धकवित्व प्राप्त किया था। उनके आशुकवित्व के बारे मे प्रबन्धों मे कई बाते उल्लिखित है।

जब आचार्य अमरचद्रसूरि विशलदेव राजा की विनती से उनके राजदरबार मे आये तब सोमेश्वर, सोमादित्य, कमलादित्य, नानाक पडित वगैरह महाकवि उपस्थित थे। उन सभी ने उनसे समस्याएँ पूछीं। उस समय उन्होंने १०८ समस्याओ की पूर्ति की थी जिससे वे आशुकवि के रूप मे प्रसिद्ध हुए। नानाक पडित ने 'गीत न गायतितरां युवतिर्निशासु' यह पाद देकर समस्या पूर्ण करने को कहा तब अमरचद्रसूरि ने झट से इस प्रकार समस्यापूर्ति कर दी •

---

१ प्रथम प्रतान के पांचवें स्तबक का 'असतोऽपि निबन्धेन' से लेकर 'ऐक्यमेवाभिसमतम्' तक का पूरा पाठ देवेश्वर ने अपनी 'काव्यकल्पलता' मे लिया है।

श्रुत्वा ध्वनेर्मधुरतां सहसावतीर्णे
भूमौ मृगे विगतलाञ्छन एव चन्द्रः।
मा गान्मदीयवदनस्य तुलामतीव-
गीतं न गायतितरां युवतिर्निशासु॥

इस समस्यापूर्ति से सब प्रसन्न हुए और आचार्य अमरचद्रसूरि समस्त कवि-मडल मे श्रेष्ठ कवि के रूप में मान पाने लगे। ये 'वेणीकृपाण अमर' नाम से भी प्रख्यात हैं।

इन्होंने कई ग्रन्थो की रचना की है, जिनके आधार पर मालूम होता है कि ये व्याकरण, अलकार, छद इत्यादि विषयों मे बड़े प्रवीण थे। इनकी रचना-शैली सरल, मधुर, स्वस्थ और नैसर्गिक है। इनकी रचनाएँ शब्दालकारो और अर्थालकारो से मनोहर बनी है। इनके अन्य ग्रन्थ ये हैं: १. स्यादिशब्द-समुच्चय, २ पद्मानन्दकाव्य, ३ बालभारत, ४ छदोरत्नावली, ५. द्रौपदी-स्वयवर,[1] ६. काव्यकल्पलतामञ्जरी, ७. काव्यकल्पलता परिमल, ८ अलकार-प्रबोध, ९ सूक्तावली, १०. कलाकलाप आदि।

काव्यकल्पलतापरिमल-वृत्ति तथा काव्यकल्पलतामञ्जरी-वृत्ति :

'काव्यकल्पलता वृत्ति' पर ही आचार्य अमरचद्रसूरि ने स्वोपज्ञ 'काव्यकल्प-लतामञ्जरी', जो अभीतक प्राप्त नहीं हुई है, तथा ११२२ श्लोक परिमाण 'काव्य-कल्पलतापरिमल' वृत्तियो की रचना की है।[2]

काव्यकल्पलतावृत्ति-मकरन्दटीका :

'काव्यकल्पलतावृत्ति' पर आचार्य हीरविजयसूरि के शिष्य शुभविजयजी ने वि० स० १६६५ मे (जहाँगीर बादशाह के राज्यकाल मे) आचार्य विजय-देवसूरि की आज्ञा से ३१९६ श्लोक-परिमाण एक टीका रची है।[3]

---

१ यह ग्रथ अनुपलब्ध है।

२. 'काव्यकल्पलतापरिमल' की दो हस्तलिखित अपूर्ण प्रतियाँ अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामदिर मे हैं।

३. इसकी प्रतियाँ जैसलमेर के भंडार में और अहमदाबादस्थित हाजा पटेल की पोल के उपाश्रय में हैं। यह टीका प्रकाशित नहीं हुई है।

इनके रचे अन्य ग्रथ इस प्रकार है: १ हैमनाममाला-बीजक, २ तर्कभाषा-वार्तिक (स० १६६३), ३. स्याद्वादभाषा—वृत्तियुत (स० १६६७), ४ कल्पसूत्र-टीका, ५. प्रश्नोत्तररत्नाकर (सेनप्रश्न) ।

काव्यकल्पलतावृत्ति-टीका :

जिनरत्नकोश के पृ० ८९ मे उपाध्याय यशोविजयजी ने ३२५० श्लोक-परिमाण एक टीका की आचार्य अमरचद्रसूरि की 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' पर रचना की है, ऐसा उल्लेख है ।'

काव्यकल्पलतावृत्ति-बालावबोध :

नेमिचद्र भडारी नामक विद्वान् ने 'काव्यकल्पलतावृत्ति' पर जूनी गुजराती मे 'बालावबोध' की रचना की है । इन्होने 'षष्टिशतक' प्रकरण भी बनाया है ।

काव्यकल्पलतावृत्ति-बालावबोध :

खरतरगच्छीय मुनि मेरुसुन्दर ने वि० स० १५३५ मे 'काव्यकल्पलतावृत्ति' पर जूनी गुजराती मे एक अन्य 'बालावबोध' की रचना की है । इन्होने षष्टि-शतक, विदग्धमुखमडन, योगशास्त्र इत्यादि ग्रथो पर बालावबोधो की रचना की है ।

अलङ्कारप्रबोध :

आचार्य अमरचन्द्रसूरि ने 'अलङ्कारप्रबोध' नामक ग्रथ की रचना वि० स० १२८० के आसपास मे की है । इस ग्रथ का उल्लेख आचार्य ने अपनी 'काव्य-कल्पलता वृत्ति' (पृ० ११६) मे किया है । यह ग्रथ अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है ।

काव्यानुशासन :

महाकवि वाग्भट ने 'काव्यानुशासन' नामक अलकार-ग्रन्थ की रचना १४ वीं शताब्दी मे की है । वे मेवाड देश मे प्रसिद्ध जैन श्रेष्ठी नेमिकुमार के पुत्र और राहड के लघु बन्धु थे ।

यह ग्रन्थ पॉच अध्यायो मे गद्य मे सूत्रबद्ध है । प्रथम अध्याय मे काव्य का प्रयोजन और हेतु, कवि समय, काव्य का लक्षण और गद्य आदि तीन

---

१. इसकी प्रति अहमदाबाद के विमलगच्छ के उपाश्रय में है, ऐसा सूचित किया गया है ।

भेद, महाकाव्य, आख्यायिका, कथा, चपू, मिश्रकाव्य, रूपक के दस भेद और गेय—इस प्रकार विविध विषयो का सग्रह है।

दूसरे अध्याय में पद और वाक्य के दोष, अर्थ के चौदह दोष, दूसरो द्वारा निर्दिष्ट दस गुण, तीन गुणों के सम्बन्ध मे अपना स्पष्ट अभिप्राय और तीन रीतियों के बारे मे उल्लेख है।

तीसरे अध्याय मे ६३ अलकारो का निरूपण है। इसमे अन्य, अपर, आशिष्, उभयन्यास, पिहित, पूर्व, भाव, मत और लेश—इस प्रकार कितने ही विरल अलकारो का निर्देश है।

चतुर्थ अध्याय मे शब्दालकार के चित्र, श्लेष, अनुप्रास, वक्रोक्ति, यमक और पुनरुक्तवदाभास—ये भेद और उनके उपभेद बताये गए हैं।

पञ्चम अध्याय मे नव रस, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी, नायक और नायिका के भेद, काम की दस दशाएँ और रस के दोष—इस प्रकार विविध विषयो की चर्चा है।

इन सूत्रो पर स्वोपज्ञ 'अलकारतिलक' नामक वृत्ति की रचना वाग्भट ने की है। इसमे काव्य-वस्तु का स्फुट निरूपण और उदाहरण दिये गए हैं। चन्द्रप्रभकाव्य, नेमिनिर्वाण-काव्य, राजीमती-परित्याग, सीता नामक कवयित्री और अब्धिमथन जैसे (अपभ्रंश) ग्रन्थो के पद्य उदाहरण के रूप मे दिये गए हैं। काव्यमीमासा और काव्यप्रकाश का इसमे खूब उपयोग किया गया है। इसमें 'वाग्भटालकार' का भी उल्लेख है। विविध देशों, नदियों और वनस्पतियों का उल्लेख तथा मेदपाट, राहडपुर और नलोटकपुर का निर्देश किया गया है। कवि के पिता नेमिकुमार का भी उल्लेख है। इनके दो अन्य ग्रन्थों—छदोनुशासन और ऋषभचरित—का भी उल्लेख मिलता है।

कवि ने टीका के अन्त में अपनी नम्रता प्रकट की है।[1] वे अपने को द्वितीय वाग्भट बताते हुए लिखते हैं कि राजा राजसिंह दूसरे जयसिंहदेव हैं, तक्षकनगर दूसरा अणहिल्लपुर है और मैं वादिराज दूसरा वाग्भट हूँ।

---

१. श्रीमद्भीमनृपालजस्य बलिन. श्रीराजसिंहस्य मे
सेवायामवकाशमाप्य विहिता टीका शिशूनां हिता।
हीनाधिक्यवचो यदत्र लिखित तद् वै बुधै क्षम्यता
गार्हस्थ्यावनिनाथमेवनधिय क. स्वस्थतामाप्नुयात् ॥

शृंगारार्णवचन्द्रिका :

दिगम्बर जैनमुनि विजयकीर्ति के शिष्य विजयवर्णी[1] ने 'शृंगारार्णवचन्द्रिका' नामक अलंकार-ग्रन्थ की रचना की है। दक्षिण कनाडा जिले में राज करनेवाले जैन राजवंशो मे बंगवंशीय (गंगवंशीय) राजा कामराय बंग जो शक सं० ११८६ (सन् १२६४, वि० सं० १३२०) में सिंहासनारूढ हुआ था, की प्रार्थना से कविवर विजयवर्णी ने इस ग्रंथ की रचना की। वे स्वयं कहते हैं :

> इत्थं नृपप्रार्थितेन मयाऽलङ्कारसंग्रहः।
> क्रियते सूरिणा (? वर्णिना) नाम्ना शृंगारार्णवचन्द्रिका ॥

इस ग्रंथ मे काव्य के गुण, रीति, दोष, अलंकार वगैरह का निरूपण करते हुए जितने भी पद्यमय उदाहरण दिये गये है वे सब राजा कामराय बंग के प्रशंसात्मक हैं। अन्त मे वर्णीजी कहते हैं :

श्रीवीरनरसिंहकामरायबङ्गनरेन्द्रशरदिन्दुसन्निभकीर्तिप्रकाशके शृङ्गारार्णवचन्द्रिकानाम्नि अलंकारसंग्रहे ॥

कवि ने प्रारंभ मे ७ पद्यों में सुप्रसिद्ध कन्नड़ कवि गुणवर्मा का स्मरण किया है। अन्य पद्यों से बंगवाड़ी की तत्काल समृद्धि की स्पष्ट झलक मिलती है तथा कदंब राजवंश के विषय मे भी सूचना मिलती है।

'शृंगारार्णवचंद्रिका' मे दस परिच्छेद इस प्रकार हैं : १. वर्ण-गण-फल-निर्णय, २ काव्यगतशब्दार्थनिर्णय, ३. रसभावनिर्णय, ४. नायकभेदनिर्णय, ५ दशगुणनिर्णय, ६ रीतिनिर्णय, ७. वृत्ति (त्त) निर्णय, ८ शय्याभागनिर्णय, ९ अलंकारनिर्णय, १०. दोष गुणनिर्णय। यह सरल और स्वतन्त्र ग्रन्थ है।

अलङ्कारसंग्रह :

कन्नड जैनकवि अमृतनन्दी ने 'अलङ्कारसंग्रह' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसे 'अलंकारसार' भी कहते है। 'कन्नडकविचरिते' (भा० २, पृ० ३३) से ज्ञात होता है कि अमृतनन्दी १३ वीं शताब्दी में हुए थे।

'रसरत्नाकर' नामक कन्नड़ अलंकारग्रन्थ की भूमिका मे ए० वेंकटराव तथा एच० टी० शेष आयंगर ने 'अलंकारसंग्रह' के बारे मे इस प्रकार परिचय दिया है :

---

१. श्रीमद्विजयकीर्त्याख्यगुरुराजपदाम्बुजम् ॥ ५ ॥

अमृतनदी का 'अलकारसग्रह' नामक एक ग्रन्थ है । उसके प्रथम परिच्छेद मे वर्णगणविचार, दूसरे मे शब्दार्थनिर्णय, तीसरे मे रसनिर्णय, चतुर्थ मे नेतृभेद-विचार, पञ्चम मे अलकार-निर्णय, छठे में दोषगुणालकार, सातवे में सन्ध्यङ्गनिरूपण, आठवे मे वृत्ति (त्त) निरूपण और नवम परिच्छेद मे काव्यालकारनिरूपण है।[१]

यह उनका कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। प्राचीन आलकारिको के ग्रन्थो को देखकर मन्व भूपति की अनुमति से उन्होने यह सग्रहात्मक ग्रन्थ बनाया। ग्रन्थकार स्वय इस बात को स्वीकार करते हुए कहते है :

संचित्यैकत्र कथय सौकर्याय सतामिति।
मया तत्प्रार्थितेनेत्थममृतानन्दयोगिना ॥ ८ ॥

मन्व भूपति के पिता, वश, धर्म तथा काव्यविषयक जिज्ञासा के बारे में भी ग्रन्थकार ने कुछ परिचय दिया है।[२] मन्व भूपति का समय सन् १२९९ (वि० स० १३५५) के आसपास माना जाता है।

अलंकारमंडन :

मालवा—माडवगढ के सुलतान आलमशाह के मत्री मडन ने विविध विषयो पर अनेक ग्रथ लिखे हैं। उनमे अलकार-साहित्य विषय का 'अलकारमंडन' भी है। इसका रचना-समय वि० १५ वीं शताब्दी है। इसमे पॉच परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में काव्य के लक्षण, उसके प्रकार और रीतियो का निरूपण है। द्वितीय परिच्छेद मे दोषो का वर्णन है। तीसरे परिच्छेद मे गुणो का स्वरूपदर्शन है। चौथे परिच्छेद मे रसो का निदर्शन है। पॉचवे परिच्छेद में अलकारो का विवरण है।

---

१. वर्णशुद्धिं काव्यवृत्तिं रसान् भावानन्तरम्।
नेतृभेदानलङ्कारान् दोषानपि च तद्गुणान् ॥ ६ ॥
नाट्यधर्मान् रूपकोपरूपकाणां भिदा लप्सि (?)।
चाटुप्रबन्धभेदाश्च विकीर्णास्तत्र तत्र तु ॥ ७ ॥

२ उद्दामफलदां गुर्वीमुदधिमेखलाम् (?)।
भक्तिभूमिपति शास्ति जिनपादाब्जषट्पद ॥ ३ ॥
तस्य पुत्रस्त्यागमहासमुद्रविरुदाङ्कित ।
सोमसूर्यकुलोत्तसमहितो मन्वभूपति ॥ ४ ॥
स कदाचित् सभामध्ये काव्यालापकथान्तरे।
अपृच्छदमृतानन्दमादरेण कवीश्वरम् ॥ ५ ॥

मंत्री मण्डन श्रीमालवंशीय सोनगरा गोत्र के थे। वे जालोर के मूल निवासी थे परन्तु उनकी सातवीं-आठवीं पीढी के पूर्वज माडवगढ में आकर रहने लगे थे। उनके वश मे मत्री पद भी परपरागत चला आता था। मडन भी आलमशाह (हुशगगोरी—वि० स० १४६१–१४८८) का मत्री था। आलमशाह विद्याप्रेमी था अतः मडन पर उसका अधिक स्नेह था। वह व्याकरण, अलकार, सगीत और साहित्यशास्त्र मे प्रवीण तथा कवि था।

उसका चचेरा भाई धनद भी बड़ा विद्वान् था। उसने भर्तृहरि की 'सुभाषितत्रिशती' के समान नीतिशतक, शृगारशतक और वैराग्यशतक—इन तीन शतको की रचना की थी।

उनके वश मे विद्या के प्रति जैसा अनुराग था वैसी ही धर्म मे उत्कट श्रद्धा-भक्ति थी। वे सब जैनधर्मावलम्बी थे। आचार्य जिनभद्रसूरि के उपदेश से मत्री मण्डन नें प्रचुर धन व्यय करके जैन सिद्धात-ग्रन्थों का सिद्धान्तकोश लिखवाया था।

मत्री मडन विद्वान् होने के साथ ही धनी भी था। वह विद्वानो के प्रति अत्यन्त स्नेह रखता था और उनका उचित सम्मान कर दान देता था।

महेश्वर नामक विद्वान् कवि ने मडन और उसके पूर्वजों का ब्योरेवार वर्णन करनेवाला 'काव्यमनोहर' ग्रन्थ लिखा है। उससे उसके जीवन की बहुत-कुछ बातों का पता लगता है। मडन ने अपने प्राय. सब ग्रन्थो के अन्त में मण्डन शब्द जोड़ा है। मडन के अन्य ग्रन्थ ये हैं:

१. सारस्वतमडन, २ उपसर्गमडन, ३. शृगारमडन, ४ काव्यमडन, ५. चपूमडन, ६ कादम्बरीमडन, ७ सगीतमडन, ८. चद्रविजय, ९. कविकल्पद्रुमस्कन्ध।

काव्यालंकारसार :

कालिकाचार्य-सतानीय खडिलगच्छीय आचार्य जिनदेवसूरि के शिष्य आचार्य भावदेवसूरि ने पद्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ मे 'काव्यालकारसार'[1] नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस पद्यात्मक कृति के प्रथम पद्य मे इसका 'काव्यालकारसारसकलना', प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका मे 'अलकारसार' और आठवे अध्याय के अतिम पद्य में 'अलकारसग्रह' नाम से उल्लेख किया है:

---

१. यह ग्रन्थ 'अलंकारमहोदधि' के अन्त में गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा से प्रकाशित हुआ है।

आचार्यभावदेवेन प्राच्यशास्त्रमहोदधेः ।
आदाय साररत्नानि कृतोऽलंकारसंग्रहः ॥

यह छोटा सा परन्तु अत्यन्त उपयोगी ग्रंथ है। इसमे ८ अध्याय और १३१ श्लोक हैं। ८ अध्यायो का विषय इस प्रकार है :

१. काव्य का फल, हेतु और स्वरूपनिरूपण, २. शब्दार्थस्वरूपनिरूपण, ३ शब्दार्थदोषप्रकटन, ४ गुणप्रकाशन, ५. शब्दालकारनिर्णय, ६. अर्थालकार-प्रकाशन, ७. रीतिस्वरूपनिरूपण, ८. भावाविर्भाव ।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार मालूम होते है : १. पार्श्वनाथ चरित (वि० स० १४१२), २. जइदिणचरिया (यतिदिनचर्या), ३ कालिकाचार्यकथा ।

अकबरसाहिशृंगारदर्पण :

जैनाचार्य भट्टारक पद्ममेरु के शिष्यरत्न पद्मसुन्दरगणि ने 'अकबरसाहिशृङ्गार-दर्पण' नामक अलकार-ग्रन्थ की रचना की है। ये नागौरी तपागच्छ के भट्टारक यति थे। उनकी परम्परा के हर्षकीर्तिसूरि ने 'धातुतरङ्गिणी' मे उनकी योग्यता का परिचय इस प्रकार दिया है.[1]

मुगल सम्राट अकबर की विद्वत्सभा मे पद्मसुन्दर ने किसी महापण्डित को शास्त्रार्थ मे परास्त किया था। अकबर ने अपनी विद्वत्सभा मे उनको समान्य विद्वानो मे स्थान दिया था। उन्हे रेशमी वस्त्र, पालकी और गॉव भेट मे दिया था। वे जोधपुर के राजा मालदेव के सम्मान्य विद्वान् थे।

'अकबरसाहिशृङ्गारदर्पण' नाम से ही मालूम होता है कि यह ग्रन्थ बादशाह अकबर को लक्षित कर लिखा गया है। ग्रन्थकार ने रुद्र कवि के 'शृङ्गारतिलक' की शैली का अनुसरण करके इसकी रचना की है परन्तु इसका प्रस्तुतीकरण मौलिक है। कई स्थलो मे तो यह ग्रन्थ सौन्दर्य और शैली मे उससे बढकर है। लक्षण और उदाहरण ग्रथकर्ता के स्वनिर्मित है।

यह ग्रन्थ चार उल्लासो मे विभक्त है। कुल मिलाकर इसमे ३४५ छोटे बड़े

---

१ साहे ससदि पद्मसुन्दरगणिर्जित्वा महापण्डित
क्षौम ग्राम सुखासनाद्यकबरश्रीसाहितो लब्धवान् ।
हिन्दूकाधिपमालदेवनृपतेर्मान्यो वदान्योऽधिक
श्रीमद्योधपुरे सुरेप्सितवचा. पद्माह्वयं पाठकम् ॥

रत्नमंडनगणि ने उपदेशतरङ्गिणी आदि ग्रन्थों की भी रचना की है।

मुग्धमेधालंकार-वृत्ति :

'मुग्धमेधालकार' पर किसी विद्वान् ने टीका लिखी है।[1]

काव्यलक्षण :

अज्ञातकर्तृक 'काव्यलक्षण' नामक २५०० श्लोक-परिणाम एक कृति का उल्लेख जैन ग्रथावली, पृ० ३१६ पर है।

कर्णालंकारमञ्जरी :

त्रिमल्ल नामक विद्वान् ने 'कर्णालकारमञ्जरी' नामक अलकार ग्रथ की रचना की है, ऐसा उल्लेख जैन ग्रथावली पृ० ३१५ में है।

प्रक्रान्तालंकार-वृत्ति :

जिनहर्ष के शिष्य ने 'प्रक्रान्तालकार-वृत्ति' नामक ग्रन्थ की रचना की है, जिसकी हस्तलिखित ताडपत्रीय प्रति पाटन के भडार मे विद्यमान है। इसका उल्लेख जिनरत्नकोश, पृ० २५७ मे है।

अलंकार-चूर्णि :

'अलकार-चूर्णि' नामक ग्रथ किसी अज्ञातनामा रचनाकार की रचना है, जिसका उल्लेख जिनरत्नकोश, पृ० १७ मे है।

अलंकारचिंतामणि :

दिगबर विद्वान् अजितसेन ने 'अलकारचिंतामणि'[2] नामक ग्रथ की रचना १८ वीं शताब्दी मे की है। उसमे पाच परिच्छेद हैं और विषय वर्णन इस प्रकार है :

१ कविशिक्षा, २. चित्र (शब्द)-अलकार, ३. यमकादिवर्णन, ४. अर्थालकार और ५. रस आदि का वर्णन।

अलंकारचिंतामणि-वृत्ति :

'अलकारचिंतामणि' पर किसी अज्ञातनामा विद्वान् ने वृत्ति की रचना की है, यह उल्लेख जिनरत्नकोश, पृ० १७ मे है।

---

१. इसकी ३ पत्रों की प्रति भांडारकर ओरियंटल इन्स्टीट्यूट में है।

२. यह ग्रथ सोलापुर से प्रकाशित हो गया है।

वक्रोक्तिपंचाशिका :

रत्नाकर ने 'वक्रोक्तिपचाशिका' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसका उल्लेख जैन ग्रन्थावली, पृ० ३१२ में है। इसमें वक्रोक्ति के पचास उदाहरण हैं या वक्रोक्ति अलकारविषयक पचास पद्य है, यह जानने में नहीं आया।

रूपकमञ्जरी :

गोपाल के पुत्र रूपचद्र ने १०० श्लोक परिमाण एक कृति की रचना वि० स० १६४४ में की है। इसका उल्लेख जैन ग्रन्थावली, पृ० ३१२ में है। जिन-रत्नकोश में इसका निर्देश नहीं है, परतु यह तथ्य उसमें पृ० ३३२ पर 'रूप-मञ्जरीनाममाला' के लिये निर्दिष्ट है। ग्रथ का नाम देखते हुए उसमें रूपक अलकार के विषय मे निरूपण होगा, यह अनुमान होता है। इस दृष्टि से यह ग्रथ अलकार-विषयक माना जा सकता है।

रूपकमाला :

'रूपकमाला' नाम की तीन कृतियों के उल्लेख मिलते हैं :

१. उपाध्याय पुण्यनन्दन ने 'रूपकमाला' की रचना की है और उस पर समयसुन्दरगणि ने वि० स० १६६३ में 'वृत्ति' की रचना की है।

२ पार्श्वचद्रसूरि ने वि० सं० १५८६ में 'रूपकमाला' नामक कृति की रचना की है।

३. किसी अज्ञातनामा मुनि ने 'रूपकमाला' की रचना की है।

ये तीनों कृतियाँ अलकारविषयक हैं या अन्यविषयक, यह शोधनीय है।

काव्यादर्श-वृत्ति :

महाकवि दडी ने करीब वि० स० ७०० में 'काव्यादर्श' ग्रथ की रचना की है। उसमें तीन परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में काव्य की व्याख्या, प्रकार तथा वैदर्भी और गौडी—ये दो रीतिया, दस गुण, अनुप्रास और कवि बनने के लिये त्रिविध योग्यता आदि की चर्चा है। दूसरे परिच्छेद में ३५ अलकारों का निरूपण है। तीसरे में यमक का विस्तृत निरूपण, भाँति-भाँति के चित्रबध, सोलह प्रकार की प्रहेलिका और दस दोषों के विषय में विवरण है।

इस 'काव्यादर्श' पर त्रिभुवनचद्र अपरनाम वादी सिंहसूरि ने[1] टीका की

---

१ ये वादी सिंहसूरि शायद वि० स० १३२४ में 'प्रश्नशतक' की रचना करनेवाले कासद्रह गच्छ के नरचद्रसूरि के गुरु हैं। देखिए—जैन साहित्यनो सक्षिप्त इतिहास, पृ० ४१३.

रचना की है। इसकी वि० स० १७५८ की हस्तलिखित प्रति बगला लिपि मे है।

काव्यालंकार-वृत्ति :

महाकवि रुद्रट ने करीब वि० स० ९५० मे 'काव्यालकार' की १६ अध्यायो मे रचना की है। कवि भामह और वामन ने भी अपने अलकार-ग्रथो का नाम 'काव्यालकार' रखा है। रुद्रट ने अलकारो के वर्गीकरण के लिए सैद्धातिक व्यवस्था की है। अलकारो का वर्णन ही इस ग्रथ की विशेषता है। ग्रथ मे दिये हुए उदाहरण इनके अपने है। नौ रसो के अतिरिक्त दसवे 'प्रेयस्' नामक रस का निर्देश किया गया है। तीसरे अध्याय मे यमक के विषय मे ५८ पद्य है। पाँचवें अध्याय मे चित्रबधो का विवरण है।

इस 'काव्यालकार' पर नमिसाधु ने वि० स० ११२५ मे वृत्ति, जिसे 'टिप्पन' कहते है, की रचना की है। ये नमिसाधु थारापद्रगच्छीय शालिभद्र के शिष्य थे। इन्होने अपने पूर्व के कवियो और आलकारिको तथा उनके ग्रथो का नामनिर्देश किया है।

नमिसाधु ने अपभ्रश के १. उपनागर, २. आभीर और ३. ग्राम्य—इन तीन भेदो से सबधित मान्यताओं के विषय मे उल्लेख किया है जिनका रुद्रट ने निरास करते हुए अपभ्रश के अनेक प्रकार बताये है। देश-प्रदेशभेद से अपभ्रश भाषा भी तत्तत् प्रकार की होती है। उनके लक्षण उन-उन देशो के लोगों से जाने जा सकते हैं।

नमिसाधु ने 'आवश्यकचैत्यवदन-वृत्ति' की रचना वि० स० ११२२ मे की है।

काव्यालंकार-निबन्धनवृत्ति :

दिगम्बर विद्वान् आशाधर ने रुद्रट के 'काव्यालकार' पर 'निबधन' नामक वृत्ति[1] की रचना वि० स० १२९६ के आस-पास मे की है।

काव्यप्रकाश-संकेतवृत्ति :

महाकवि मम्मट ने करीब वि० स० १११० मे 'काव्यप्रकाश' नामक काव्यशास्त्र के अतीव उपयोगी ग्रथ की रचना की है। इसमे १० उल्लास हैं और १४३ कारिकाओ मे सारे काव्यशास्त्र की लाक्षणिक बातो का समावेश किया गया है। इस ग्रथ पर स्वय मम्मट ने वृत्ति रची है। उसमे उन्होंने अन्य ग्रथ-

---

१ रौद्रटस्य व्यधात् काव्यालंकारस्य निबन्धनम् ॥—सागारधर्मामृत, प्रशस्ति.

कारों के ६२० पद्य उदाहरणरूप में दिये हैं। अपने पूर्व के ग्रन्थकार भामह, वामन, अभिनवगुप्त, रुद्रट वगैरह के अभिप्रायों का उल्लेख कर अपना भिन्न मत भी प्रदर्शित किया है। मम्मट के बाद में होनेवाले आलंकारिकों ने 'काव्यप्रकाश' का यथेष्ट उपयोग किया है और उस पर अनेक टीकाएँ बनाई हैं, यही उसकी लोकप्रियता का प्रमाण है।

इस 'काव्यप्रकाश' पर राजगच्छीय आचार्य सागरचन्द्र के शिष्य माणिक्य-चंद्रसूरि ने संकेत नाम की टीका की रचना की है जो उपलब्ध टीकाओं में सबसे प्राचीन है। इन्होंने वि० सं० 'रस-वक्त्र-ग्रहाधीश' का उल्लेख किया है, जिससे कोई १२१६, कोई १२४६, और कोई १२६६ करते हैं। आचार्य माणिक्यचन्द्रसूरि वस्तुपाल के समकालीन थे इसलिये वि० सं० १२६६ उपयुक्त जँचता है।

आचार्य माणिक्यचन्द्र ने अपने पूर्वकालीन ग्रन्थकारों की रचनाओं का भी पर्याप्त उपयोग किया है। आचार्य हेमचन्द्रसूरि के 'काव्यानुशासन' की स्वोपज्ञ 'अलङ्कारचूडामणि' और 'विवेक' टीकाओं से भी उपयोगी सामग्री उद्धृत की है।

काव्यप्रकाश-टीका :

तपागच्छीय मुनि हर्षकुल ने 'काव्यप्रकाश' पर एक टीका रची है। वे विक्रम की सोलहवीं शताब्दी में हुए थे।

सारदीपिका-वृत्ति :

खरतरगच्छीय आचार्य जिनमाणिक्यसूरि के शिष्य विनयसमुद्रगणि के शिष्य गुणरत्नगणि ने 'काव्यप्रकाश' पर १०००० श्लोक प्रमाण 'सारदीपिका'[1] नामक टीका की रचना[2] अपने शिष्य रत्नविशाल के लिये की थी।

काव्यप्रकाश वृत्ति :

आचार्य जयानन्दसूरि ने 'काव्यप्रकाश' पर एक वृत्ति लिखी है जिसका श्लोक प्रमाण ४४०० है।

---

१. इसकी हस्तलिखित प्रति पूना के भाण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट में है।

२. विलोक्य विविधाः टीका अधीत्य च गुरोर्मुखात्।
काव्यप्रकाशटीकेयं रच्यते सारदीपिका ॥

काव्यप्रकाश-वृत्ति :

उपाध्याय यशोविजयगणि ने 'काव्यप्रकाश' पर एक वृत्ति १७ वीं सदी मे बनाई थी, जिसका थोड़ा सा अश अभी तक मिला है।

काव्यप्रकाश-खण्डन (काव्यप्रकाश-विवृति) :

महोपाध्याय सिद्धिचन्द्रगणि ने मम्मटरचित 'काव्यप्रकाश' की टीका लिखी है, जिसका नाम उन्होने ग्रन्थ के प्रारभ के पद्य ३ मे 'काव्यप्रकाश विवृति' बताया है' परतु पद्य ५ मे **'खण्डनताण्डवं कुर्मः'** और **'तत्रादावनुवादपूर्वक काव्यप्रकाशखण्डनमारभ्यते'** ऐसे उल्लेख होने से इस टीका का नाम 'काव्य-प्रकाशखण्डन' ही मालूम पड़ता है। रचना-समय वि० स० १७१४ के करीब है।

इस टीका मे दो स्थलो पर **'अस्मत्कृतबृहट्टीकातोऽवसेय.'** और **'गुरुनाम्ना बृहट्टीकातः'** ऐसे उल्लेख होने से प्रतीत होता है कि इन्होंने इस खण्डनात्मक टीका के अलावा विस्तृत व्याख्या की भी रचना की थी, जो अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।

टीकाकार ने यह रचना आलोचनात्मक दृष्टि से बनाई है। आलोचना भी काव्यप्रकाशगत सब विचारो पर नहीं की गई है परतु जिन विषयो मे टीका-कार का कुछ मतभेद है उन विचारो का इसमे खण्डन करने का प्रयास किया गया है।

काव्य की व्याख्या, काव्य के भेद, रस और अन्य साधारण विषयो के जिन उल्लेखो को टीकाकार ने ठीक नहीं माना उन विषयो मे अपने मन्तव्य को व्यक्त करने के लिये उन्होने प्रस्तुत टीका का निर्माण किया है।[2]

सिद्धिचद्रगणि की अन्य रचनाएँ इस प्रकार है :

१ कादम्बरी–(उत्तरार्ध) टीका, २ शोभनस्तुति-टीका, ३. वृद्धप्रस्तावोक्ति-रत्नाकर, ४ भानुचन्द्रचरित, ५. भक्तामरस्तोत्र-वृत्ति, ६. तर्कभाषा-टीका, ७. सप्तपदार्थी-टीका, ८ जिनशतक-टीका, ९ वासवदत्ता वृत्ति अथवा व्याख्या-टीका, १० अनेकार्थोपसर्ग-वृत्ति, ११ धातुमञ्जरी, १२ आख्यातवाद-टीका, १३. प्राकृतसुभाषितसग्रह, १४. सूक्तिरत्नाकर, १५. मङ्गलवाद, १६. सप्तस्मरण-

---

१. शाहेरकब्बरधराधिपमौलिमौलेश्चेत सरोरुहविलासषडङ्घ्रितुल्य. ।
विद्वच्चमत्कृतकृते बुधसिद्धिचन्द्र. काव्यप्रकाशविवृतिं कुरुतेऽस्य शिष्य. ॥

२ यह ग्रन्थ 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' में छप गया है।

वृत्ति, १७. लेखलिखनपद्धति, १८. सक्षिप्तकादम्बरीकथानक, १९ काव्य-प्रकाश-टीका।

सरस्वतीकण्ठाभरण वृत्ति (पदप्रकाश) :

अनेक ग्रन्थों के निर्माता मालवा के विद्याप्रिय भोजराज ने 'सरस्वतीकण्ठाभरण' नामक काव्यशास्त्रसबधी ग्रथ का निर्माण वि० स० ११५० के आसपास में किया है। यह विशालकाय कृति ६४३ कारिकाओ मे मोटे तौर से सग्रहात्मक है। इसमे काव्यादर्श, ध्वन्यालोक इत्यादि ग्रन्थो के १५०० पद्य उदाहरणरूप मे दिये गये हैं। इसमे पाच परिच्छेद हैं।

प्रथम परिच्छेद मे काव्य का प्रयोजन, लक्षण और भेद, पद, वाक्य और वाक्यार्थ के सोलह-सोलह दोष तथा शब्द के चौबीस गुण निरूपित हैं।

द्वितीय परिच्छेद में २४ शब्दालकारो का वर्णन है।

तृतीय परिच्छेद मे २४ अर्थालकारो का वर्णन है।

चतुर्थ परिच्छेद मे शब्द और अर्थ के उपमा आदि अलकारो का निरूपण है।

पञ्चम परिच्छेद में रस, भाव, नायक और नायिका, पाच सधिया, चार वृत्तिया वगैरह निरूपित है।

इस 'सरस्वतीकण्ठाभरण' पर भाण्डागारिक पार्श्वचन्द्र के पुत्र आजड ने 'पदप्रकाश' नामक टीका-ग्रथ[1] की रचना की है। ये आचार्य भद्रेश्वरसूरि को गुरु मानते थे। इन्होने भद्रेश्वरसूरि को बौद्ध तार्किक दिङ्नाग के समान बताया है। इस टीका-ग्रन्थ मे प्राकृत भाषा की विशेषता के उदाहरण हैं तथा व्याकरण के नियमो का उल्लेख है।

विदग्धमुखमण्डन-अवचूर्णि :

बौद्धधर्मी धर्मदास ने वि० स० १३१० के आसपास मे 'विदग्धमुखमडन' नामक अलकारशास्त्रसबधी कृति चार परिच्छेदों मे रची है। इसमे प्रहेलिका और चित्रकाव्यसबधी जानकारी भी दी गई है।

इस ग्रन्थ पर जैनाचार्यो ने अनेक टीकाएँ रची है।

१४ वीं शताब्दी मे विद्यमान खरतरगच्छीय आचार्य जिनप्रभसूरि ने 'विदग्धमुखमडन' पर अवचूर्णि रची है।

---

१. इसकी हस्तलिखित ताडपत्रीय प्रति पाटन के भडार में खंडित अवस्था में विद्यमान है।

विदग्धमुखमण्डन-टीका :

खरतरगच्छीय आचार्य जिनसिंहसूरि के शिष्य लब्धिचन्द्र के शिष्य शिवचद्र ने 'विदग्धमुखमडन' पर वि. स. १६६९ मे 'सुबोधिका' नामकी टीका रची है। इस टीका का परिमाण २५०४ श्लोक है। टीका के अन्त मे कर्ता ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

श्रीलब्धिवर्धनमुनेर्विनयी विनेयो
विद्यावता क्रमसरोजपरीष्टिपूतः।
चक्रे यथामति शुभां शिवचन्द्रनामा
वृत्ति विदग्धमुखमण्डनकाव्यसत्काम् ॥ १ ॥

नन्दर्तु-भूपाल (१६६९) विशालवर्षे हर्षेण वर्षात्ययहर्षदत्तौ।
मेवातिदेशे लवराभिधाने पुरे समारब्धमिदं समासीत् ॥ २ ॥

विदग्धमुखमण्डन-वृत्ति :

खरतरगच्छीय सुमतिकलश के शिष्य मुनि विनयसागर ने वि स १६९९ मे 'विदग्धमुखमडन' पर एक वृत्ति की रचना की है।

विदग्धमुखमण्डन-वृत्ति :

मुनि विनयसुदर के शिष्य विनयरत्न ने १७ वीं शताब्दी मे 'विदग्धमुख-मडन' पर वृत्ति बनाई है।

विदग्धमुखमण्डन टीका :

मुनि भीमविजय ने 'विदग्धमुखमडन' पर एक टीका की रचना की है।

विदग्धमुखमण्डन-अवचूरि :

'विदग्धमुखमडन' पर किसी अज्ञातनामा मुनि ने 'अवचूरि' की रचना की है। अवचूरि का प्रारभ 'स्मृत्वा जिनेन्द्रमपि' से होता है, इससे स्पष्ट होता है कि यह जैनमुनिकृत अवचूरि है।

विदग्धमुखमण्डन-टीका :

ककुदाचार्य-सतानीय किसी मुनि ने 'विदग्धमुखमडन' पर एक टीका रची है। श्री अगरचदजी नाहटा ने भारतीय विद्या, वर्ष २, अक ३ मे 'जैनेतर ग्रथों पर जैन विद्वानो की टीकाएँ' शीर्षक लेख मे इसका उल्लेख किया है।

विदग्धमुखमण्डन-बालावबोध :

आचार्य जिनचद्रसूरि (वि स १४८७–१५३०) के शिष्य उपाध्याय मेरुसुन्दर ने 'विदग्धमुखमण्डन' पर जूनी गुजराती मे 'बालावबोध' की १४५४ श्लोक-प्रमाण रचना की है। इन्होने षष्टिशतक, वाग्भटालकार, योगशास्त्र इत्यादि ग्रथो पर भी बालावबोध रचे है।

अलंकारावचूर्णि :

काव्यशास्त्रविषयक किसी ग्रन्थ पर 'अलकारावचूर्णि' नामक टीका की १२ पत्रो की हस्तलिखित प्रति प्राप्त होती है। यह ३५० श्लोकों की पाच परिच्छेदात्मक किसी कृति पर १५०० श्लोक परिमाण वृत्ति—अवचूरि है। इसमे मूल कृति के प्रतीक ही दिये गये हैं। मूल कृति कौन सी है, इसका निर्णय नहीं हुआ है। इस अवचूरि के कर्ता कौन हैं, यह भी अज्ञात है। अवचूरि मे एक जगह (१२ वें पत्र मे) 'जिन' का उल्लेख है। इससे तथा 'अवचूरि' नाम से भी यह टीका किसी जैन की कृति होगी, ऐसा अनुमान होता है।

———

चौथा प्रकरण

छन्द

'छन्द' शब्द कई अर्थो मे प्रयुक्त हुआ है। पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' मे 'छन्दस्' शब्द वेदो का बोधक है। 'भगवद्गीता' मे वेदो को छन्दस् कहा गया है :

ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित्॥ (१५.१)

'अमरकोश' (छठी शताब्दी) मे 'अभिप्रायश्छन्द आशय.' (३ २०)—'छन्द' का अर्थ 'मन की बात' या 'अभिप्राय' किया गया है। उसी मे अन्यत्र (३ ८८) 'छन्द' शब्द का 'वश' अर्थ बताया गया है। उसी मे 'छन्दः पद्येऽभिलाषे च' (३ २३२)—छन्द का अर्थ 'पद्य' और 'अभिलाप' भी किया गया है।

इससे 'छन्द' शब्द का प्रयोग पद्य के अर्थ मे भी अति प्राचीन मालूम पड़ता है। शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष् और छन्दस्—इन छः वेदागो मे छन्द.शास्त्र को गिनाया गया है।

'छन्द' शब्द का पर्यायवाची 'वृत्त' शब्द है परन्तु यह शब्द छन्द की तरह व्यापक नहीं है।

'छन्दःशास्त्र' का अर्थ है अक्षर या मात्राओं के नियम से उद्भूत विविध वृत्तो की शास्त्रीय विचारणा। सामान्यतया हमारे देश मे सर्वप्रथम पद्यात्मक कृति की रचना हुई इसलिये प्राचीनतम 'ऋग्वेद' आदि के सूक्त छन्द मे ही रचित हैं। वैसे जैनो के आगमग्रथ भी अशतः छन्द मे रचित है। जैनाचार्यों ने छन्द शास्त्र के अनेक ग्रथ लिखे हैं। उन ग्रन्थों के विषय में यहाँ हम विचार करेंगे।

रत्नमञ्जूषा :

सस्कृत मे रचित 'रत्नमञ्जूषा'[1] नामक छन्द ग्रन्थ के कर्ता का नाम अज्ञात है। इसके प्रत्येक अध्याय के अन्त में टीकाकार ने 'इति रत्नमञ्जूषायां छन्दो-

---

१ यह ग्रन्थ 'सभाष्य-रत्नमञ्जूषा' नाम से भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से सन् १९४९ में प्रो॰ वेलणकर द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हुआ है।

विचित्या भाष्यत ' ऐसा निर्देश किया है अतएव इसका नाम 'छन्दोविचिति' भी है, यह मालूम होता है।

सूत्रबद्ध इस ग्रथ मे छोटे-छोटे आठ अध्याय है और कुल मिलाकर २३० सूत्र है। यह ग्रथ मुख्यत वर्णवृत्त-विषयक है। इसमे वैदिक छन्दो का निरूपण नहीं किया गया है। इसमे दिये गये कई छन्दो के नाम आचार्य हेमचन्द्र के 'छन्दोऽनुशासन' के सिवाय दूसरे ग्रथो मे उपलब्ध नहीं होते। इस ग्रन्थ के उदाहरणो मे जैनत्व का असर देखने मे आता है और इसके टीकाकार जैन है अत. मूलकार के भी जैन होने की सम्भावना की जारही है।

प्रथम अध्याय मे विविध सज्ञाओ का निरूपण है। 'छन्द.शास्त्र' मे पिंगल ने गणो के लिये म्, य्, र्, स्, त्, ज्, भ्, न्—ये आठ चिह्न बताये है, जबकि इस ग्रन्थ मे उनके बजाय क्रमश क्, च्, त्, प्, श्, ष्, स्, ह्—ये आठ व्यञ्जन और आ, ए, औ, ई, अ, उ, ऋ, इ—ये आठ स्वर—इस तरह दो प्रकार की सज्ञाओ की योजना की गई है। फिर, दो दीर्घ वर्णों के लिए य्, एक ह्रस्व और एक दीर्घ के लिये र्, एक दीर्घ और एक ह्रस्व के लिये ल्, दो ह्रस्व वर्णों के लिये व्, एक दीर्घ वर्ण के लिये म् और एक ह्रस्व वर्ण के लिये न् सज्ञाओ का प्रयोग किया गया है। इसमे १, २, ३, ४ अको के लिये द, दा, दि, दी, इत्यादि का, कहीं-कहीं ण् के प्रक्षेप के साथ, प्रयोग किया है, जैसे द—दण्=१, दा—दाण्=२।

दूसरे अध्याय मे आर्या, गीति, आर्यागीति, गलितक और उपचित्रक वर्ग के अर्धसमवृत्तो के लक्षण दिये गये है।

तीसरे अध्याय मे वैतालीय, मात्रावृत्तो के मात्रासमक वर्ग, गीत्यार्या, विशिखा, कुलिक, नृत्यगति और नटचरण के लक्षण बताये है। आचार्य हेमचन्द्र के सिवाय नृत्यगति और नटचरण का निर्देश किसी छन्द-शास्त्री ने नहीं किया है।

चतुर्थ अध्याय मे विषमवृत्त के १ उद्गता, २ दामावारा याने पदचतुरूर्ध्व और ३ अनुष्टुभ्वक्त्र का विचार किया है।

पिंगल आदि छन्द-शास्त्री तीन प्रकार के भेदो का अनुष्टुभ्वर्ग के छन्द के प्रतिपादन के समय ही निर्देश करते है, जबकि प्रस्तुत ग्रन्थकार विषमवृत्तो का प्रारम्भ करते ही उसमे अनुष्टुभ्वक्त्र का अन्तर्भाव करते हैं। इससे ज्ञात होता है कि ग्रन्थकार का यह विभाग हेमचन्द्र से पुरस्कृत जैन परम्परा को ही ज्ञात है।

पञ्चम-षष्ठ सप्तम अध्यायों मे वर्णवृत्तो का निरूपण है। इनका छ.-छ अक्षर-

वाले चार चरणो से युक्त गायत्री से लेकर उत्कृति तक के २१ वर्गों मे विभक्त करके विचार किया गया है।

इन अध्यायों में दिये गये ८५ वर्णवृत्तो मे से २१ वर्णवृत्तों का निर्देश न तो पिंगल ने किया है और न केदार भट्ट ने ही। उसी प्रकार रत्नमञ्जूषाकार ने भी पिंगल के सोलह छन्दों का उल्लेख नहीं किया है।

पाचवे अध्याय के प्रारम्भ में समग्र वर्णवृत्तो को समान, प्रमाण और वितान—इन तीन वर्गों में विभक्त किया है, परन्तु अध्याय ५–७ मे दिये गये समस्त वृत्त वितान वर्ग के हैं। इस प्रकार २१ वर्गों के वृत्तो का ऐसा विभाजन किसी अन्य छन्द-ग्रथ मे नहीं है, यही इस ग्रथ की विशेषता है।

आठवें अध्याय मे १ प्रस्तार, २. नष्ट, ३. उद्दिष्ट, ४. लगक्रिया, ५. सख्यान और ६. अध्वन्—इस तरह छः प्रकार के प्रत्ययो का निरूपण है।

रत्नमञ्जूषा-भाष्य :

'रत्नमञ्जूषा' पर वृत्तिरूप भाष्य मिलता है, परन्तु इसके कर्ता कौन थे यह अज्ञात है। इसमे दिये गये मगलाचरण और उदाहरणों से भाष्यकार का जैन होना प्रमाणित होता है।

इसमे दिये गये ८५ उदाहरणों में से ४० तो उन-उन छन्दों के नामसूचक हैं। इससे यह कह सकते हैं कि छदों के यथावत् ज्ञान के लिये भाष्य की रचना के समय भाष्यकार ने ही उदाहरणों की रचना की हो और छन्दों के नामरहित कई उदाहरण अन्य कृतिकारों के हों।

इसमे 'अभिज्ञानशाकुन्तल' (अक १, श्लोक ३३), 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' (२, ३) इत्यादि के पद्य उद्धृत किये गये हैं। भाष्य में तीन स्थानों पर सूत्रकार का 'आचार्य' कहकर निर्देश किया गया है।

अध्याय ८ के अतिम उदाहरण मे निर्दिष्ट '**एकच्छन्दसि खण्डमेरुरमलः पुन्नाग**-चन्द्रोदित.' वाक्य से मालूम होता है कि इसके कर्ता शायद पुन्नागचद्र या नागचद्र हो। धनञ्जय कविरचित 'विषापहारस्तोत्र' के टीकाकार का नाम भी नागचद्र है। वही तो इसके कर्ता नहीं हैं ? अन्य प्रमाणो के अभाव मे कुछ कहा नहीं जा सकता।

छन्दःशास्त्र :

बुद्धिसागरसूरि (११ वीं शती) ने 'छन्दःशास्त्र' की रचना की, ऐसा उल्लेख वि० स० ११३९ मे गुणचद्रसूरिरचित 'महावीरचरिय' की प्रशस्ति मे है।

प्रशस्ति मे कहा गया है कि बुद्धिसागरसूरि ने उत्तम व्याकरण और 'छन्दःशास्त्र' की रचना की।

इन्होंने वि० स० १०८० मे 'पञ्चग्रन्थी' नामक सस्कृत व्याकरण की रचना की। यह ग्रथ जैसलमेर के ग्रथभडार मे है, परतु उनके रचे हुए 'छन्दःशास्त्र' का अभी तक पता नहीं लगा। इसलिये इसके बारे मे विशेष कहा नहीं जा सकता।

सवत् ११४० मे वर्धमानसूरि-रचित 'मनोरमाकहा' की प्रशस्ति मे मालूम होता है कि जिनेश्वरसूरि और उनके गुरुभाई बुद्धिसागरसूरि ने व्याकरण, छन्द, काव्य, निघण्टु, नाटक, कथा, प्रबन्ध इत्यादिविषयक ग्रथो की रचना की है, परन्तु उनके रचे हुए काव्य, नाटक, प्रबन्ध आदि के विषय मे अभी तक कुछ जानने मे नहीं आया है।

छन्दोनुशासन :

'छन्दोनुशासन'[1] ग्रथ के रचयिता जयकीर्ति कन्नड प्रदेशनिवासी दिगबर जैनाचार्य थे। इन्होने अपने ग्रथ मे सन् ९५० मे होनेवाले कवि असग का स्पष्ट उल्लेख किया है। अत. ये सन् १००० के आसपास मे हुए, ऐसा निर्णय किया जा सकता है।

सस्कृतभाषा मे निबद्ध जयकीर्ति का 'छन्दोनुशासन' पिङ्गल और जयदेव की परपरा के अनुसार आठ अध्यायों मे विभक्त है। इस रचना मे ग्रन्थकार ने जनाश्रय, जयदेव, पिंगल, पादपूज्य (पूज्यपाद), माडव्य और सैतव की छदोविषयक कृतियो का उपयोग किया है। जयकीर्ति के समय मे वैदिक छदो का प्रभाव प्रायः समाप्त हो चुका था। इसलिये तथा एक जैन होने के नाते भी उन्होंने अपने ग्रथ मे वैदिक छदों की चर्चा नहीं की।

यह समस्त ग्रथ पद्यबद्ध है। ग्रथकार ने सामान्य विवेचन के लिये अनुष्टुप्, आर्या और स्कन्धक (आर्यागीति)—इन तीन छदो का आधार लिया है, किन्तु छदो के लक्षण पूर्णतः या अशतः उन्हीं छदो मे दिये गये है जिनके वे लक्षण है। अलग से उदाहरण नहीं दिये गये हैं। इस प्रकार इस ग्रथ मे लक्षण-उदाहरणमय छदों का विवेचन किया गया है।

---

१. यह 'जयदामन्' नामक सग्रह-ग्रन्थ में छपा है।

ग्रंथ के पृ० ४५ मे 'उपजाति' के स्थान मे 'इन्द्रमाला' नाम दिया गया है। पृ० ४६ मे मुनि द्मसागर, पृ० ५२ मे श्री पाल्यकीर्तांश और स्वयभूवेग तथा पृ० ५६ मे कवि चारुकीर्ति के मतो के विषय में उल्लेख किया गया है।

प्रथम अध्याय मे सज्ञा, द्वितीय मे सम-वृत्त, तृतीय मे अर्ध-सम-वृत्त, चतुर्थ मे विषम वृत्त, पञ्चम मे आर्या-जाति-मात्रासमक-जाति, छठे मे मिश्र, सातवे मे कर्णाटविषयभाषाजात्यधिकार (जिसमे वैदिक छदो के बजाय कन्नड़ भाषा के छद निर्दिष्ट है), आठवे मे प्रस्तारादि-प्रत्यय से सम्बन्धित विवेचन है।

जयकीर्ति ने ऐसे बहुत से मात्रिक छदो का उल्लेख किया है जो जयदेव के ग्रंथ मे नहीं है। हॉ, विरहाक ने ऐसे छदो का उल्लेख किया है, फिर भी सस्कृत के लक्षणकारो मे उन छदो के प्रथम उल्लेख का श्रेय जयकीर्ति को ही है।

छन्दःशेखर :

'छन्दःशेखर' के कर्ता का नाम है राजशेखर। वे ठक्कुर दुद्दक और नागदेवी के पुत्र थे और ठक्कुर यश के पुत्र लाहर के पौत्र थे।

कहा जाता है कि यह 'छन्द.शेखर' ग्रन्थ भोजदेव को प्रिय था।

इस ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति वि० स० ११७९ की मिलती है।

हेमचन्द्राचार्य ने इस ग्रन्थ का अपने 'छन्दोऽनुशासन' मे उपयोग किया है।

कहा जाता है कि जयशेखरसूरि नामक विद्वान् ने भी 'छन्दःशेखर' नामक छन्दोग्रथ की रचना की थी लेकिन वह प्राप्य नहीं है।

छन्दोनुशासन :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने 'शब्दानुशासन' और 'काव्यानुशासन' की रचना करने के बाद 'छन्दोऽनुशासन' की रचना की है।[१]

यह 'छन्दोऽनुशासन' आठ अध्यायो मे विभक्त है और इसमे कुल मिलाकर ७६४ सूत्र है।

इसकी स्वोपज्ञ वृत्ति मे सूचित किया गया है कि इसमे वैदिक छन्दो की चर्चा नहीं की गई है।

---

१ शब्दानुशासनविरचनानन्तर तत्फलभूत काव्यमनुशिष्य तदङ्गभूत 'छन्दोऽनुशासन' मारिप्सुमान. शास्त्रकार इष्टाधिकृतदेवतानमस्कारपूर्वकमुपक्रमते।

यह एक विचारणीय प्रश्न है कि मुनि नदिषेण के 'अजित-शान्तिस्तव' (प्राकृत) मे प्रयुक्त छन्दो के नाम हेमचन्द्र के 'छन्दोऽनुशासन' में क्यो नहीं है?

छन्दोनुशासन-वृत्ति :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने अपने 'छन्दोऽनुशासन' पर स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है, जिसका अपर नाम 'छन्दश्चूडामणि' भी है। इस स्वोपज्ञ वृत्ति मे दिया गया स्पष्टीकरण और उदाहरण 'छन्दोऽनुशासन' की महत्ता को बढाते है। इसमे भरत, सैतव, पिंगल, जयदेव, काश्यप, स्वयभू आदि छन्दशास्त्रियो का और सिद्धसेन (दिवाकर), सिद्धराज, कुमारपाल आदि का उल्लेख है। कुमारपाल के उल्लेख से यह वृत्ति उन्हीं के समय मे रची गई, ऐसा फलित होता है।

इस वृत्ति मे जो सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश के पद्य हैं उनका ऐतिहासिक और शास्त्रीय चर्चा की दृष्टि से महत्त्व होने से उन सब के मूल आधारस्थान ढूँढने चाहिए।

१. 'नमोऽस्तु वर्धमानाय' से शुरू होनेवाला पद्य यति के उदाहरण मे अ० १, सू० १५ की वृत्ति मे दिया गया है।

२ 'जयति विजितान्यतेजा. ' पद्य अ० ४, सू० ५५ की वृत्ति मे है।

३. उपजाति के चौदह प्रकार अ० २, सू०, १५५ की वृत्ति मे बताकर 'दशवैकालिक' अ० २ का पाचवा पद्य और अ० ९, उ० १ के दूसरे पद्य का अश उद्धृत किया गया है।

४. अ० ४, सू० ५ की वृत्ति के 'कमला' से शुरू होनेवाले तीन पद्य 'गाहालक्खण' के ४० से ४२ पद्य के रूप मे कुछ पाठभेदपूर्वक देखे जाते हैं।

५. अ० ५, सू० १६ की वृत्ति मे 'तिलकमञ्जरी' का 'शुष्कशिखरिणी' से शुरू होनेवाला पद्य उद्धृत किया गया है।

६. अ० ६, सू० १ की वृत्ति मे मुञ्ज के पाच दोहे मुख्य प्रतीकरूप से देकर उन्हे कामदेव के पच बाणों के तौर पर बताया गया है।

७. अ० ७ मे द्विपदी खड का उदाहरण हर्ष की 'रत्नावली' से दिया गया है।

यह एक ज्ञातव्य बात है कि अ० ४, सू० १ की वृत्ति मे 'आर्या' को सस्कृतेतर भाषाओं में 'गाथा' कहा गया है।

उपाध्याय यशोविजयगणि ने इस 'छन्दोऽनुशासन' मूल पर या उसकी स्वोपज्ञ वृत्ति पर वृत्ति की रचना की है, ऐसा माना जाता है। यह वृत्ति उपलब्ध नहीं है।

वर्धमानसूरि ने भी इस 'छन्दोऽनुशासन' पर वृत्ति रची है, ऐसा एक उल्लेख मिलता है। यह वृत्ति भी अनुपलब्ध है।

आचार्य विजयलावण्यसूरि ने भी इस 'छन्दोऽनुशासन' पर एक वृत्ति की रचना की है जो लावण्यसूरि जैन ग्रन्थमाला, बोटाद से प्रकाशित हुई है।

छन्दोरत्नावली :

संस्कृत मे अनेक ग्रन्थो की रचना करनेवाले 'वेणीकृपाण' विरुद्धारी आचार्य अमरचन्द्रसूरि वायडगच्छीय आचार्य जिनदत्तसूरि के शिष्य थे। वे गुर्जरनरेश विशलदेव (वि० स० १२४३ से १२६१) की राजसभा के सम्मान्य विद्वद्रत्न थे।

इन्हीं अमरचन्द्रसूरि ने संस्कृत मे ७०० श्लोक प्रमाण 'छन्दोरत्नावली' ग्रंथ की रचना पिंगल आदि पूर्वाचार्यों के छन्दग्रंथो के आधार पर की है। इसमे नौ अध्याय हैं जिनमे सज्ञा, समवृत्त, अर्धसमवृत्त, विषमवृत्त, मात्रावृत्त, प्रस्तार आदि, प्राकृतछन्द, उत्साह आदि, षट्पदी, चतुष्पदी, द्विपदी आदि के लक्षण उदाहरणपूर्वक बताये गये हैं। इसमे कई प्राकृत भाषा के भी उदाहरण है। इस ग्रंथ का उल्लेख खुद ग्रंथकार ने अपनी 'काव्यकल्पलतावृत्ति' मे किया है।

यह ग्रंथ अभी तक अप्रकाशित है।

छन्दोनुशासन :

महाकवि वाग्भट ने अपने 'काव्यानुशासन' की तरह 'छन्दोऽनुशासन' की भी रचना[1] १४ वीं शताब्दी मे की है। वे मेवाड़ देश मे प्रसिद्ध जैन श्रेष्ठी नेमिकुमार के पुत्र और राहड के लघुबन्धु थे।

संस्कृत मे निबद्ध इस ग्रन्थ मे पाच अध्याय हैं। प्रथम सज्ञासम्बन्धी, दूसरा समवृत्त, तीसरा अर्धसमवृत्त, चतुर्थ मात्रासमक और पञ्चम मात्राछन्दसम्बन्धी है। इसमे छन्दविषयक अति उपयोगी चर्चा है।

---

१ श्रीमन्नेमिकुमारसूनुरखिलप्रज्ञालचूडामणि-
श्छन्दःशास्त्रमिदं चकार सुधियामानन्दकृद् वाग्भटः ॥

इस ग्रथ पर ग्रथकार ने स्वोपज्ञ वृत्ति की रचना की है। यह सब मिलाकर ५४० श्लोकात्मक कृति है।

छन्दोविद्या :

कवि राजमल्लजी आचारशास्त्र, अध्यात्म, काव्य और न्यायशास्त्र के प्रकाड पडित थे, यह उनके रचे हुए अन्यान्य ग्रथो से विदित होता है। छन्दःशास्त्र पर भी उनका असाधारण अधिकार था। उनके रचित 'छन्दोविद्या' (पिंगल) ग्रथ की २८ पत्रो की हस्तलिखित प्रति देहली के दिगम्बरीय शास्त्र-भडार मे है। इस ग्रथ की श्लोक-सख्या ५५० है।

कवि राजमल्लजी १६ वीं शताब्दी मे हुए थे। 'छन्दोविद्या' की रचना राजा भारमल्लजी के लिये की गई थी। छदो के लक्षण प्रायः भारमल्लजी को सम्बोधन करते हुए बताये गये हैं। ये भारमल्लजी श्रीमालवश के श्रावकरत्न, नागोरी तपागच्छीय आम्नाय के माननेवाले तथा नागोर देश के सघाधिपति थे। इतना ही नहीं, वे शाकभरी देश के शासनाधिकारी भी थे।

छन्दोविद्या अपने ढग का अनूठा ग्रथ है। यह सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश और हिंदी मे निबद्ध है। इनमे भी प्राकृत और अपभ्रश मुख्य है। इसमे ८ से ६४ पद्यो मे छदशास्त्र के नियम, उपनियम बताये गये हैं, जिनमे अनेक प्रकार के छद-भेद, उनका स्वरूप, फल और प्रस्तारो का वर्णन है। कवि राजमल्लजी के सामने पूज्यपाद का छन्दशास्त्रविषयक कोई ग्रथ मौजूद था। छन्दोविद्या में बादशाह अकबर के समय की अनेक घटनाओ का उल्लेख है।

यह ग्रन्थ अभी अप्रकाशित है।[1]

कवि राजमल्लजी ने १ लाटीसहिता, २ जम्बूस्वामिचरित, ३. अध्यात्मकमलमार्तण्ड एव ४. पञ्चाध्यायी की भी रचना की है।

पिङ्गलशिरोमणि :

'पिङ्गलशिरोमणि' नामक छन्द-विषयक ग्रन्थ की रचना मुनि कुशललाभ ने की है। इन्होंने जूनी गुजराती-राजस्थानी में अनेक ग्रन्थों की रचना की है परन्तु सस्कृत मे इनकी यही एक रचना उपलब्ध हुई है। कवि कुशललाभ खरतरगच्छीय उपाध्याय अभयधर्म के शिष्य थे। उनकी भाषा से मालूम पड़ता

---

1. इस ग्रथ का कुछ परिचय 'अनेकात' मासिक (सन् १९४१) में प्रकाशित हुआ है।

है कि उनका जन्म मारवाड़ मे हुआ होगा। उनके गृहस्थ जीवन के सबध मे कुछ भी जानकारी नहीं मिलती। 'पिङ्गलशिरोमणि' ग्रन्थ की रचना का समय ग्रन्थ की प्रशस्ति में वि० स० १५७५ बताया गया है।

'पिङ्गलशिरोमणि' में छन्दों के सिवाय कोश और अलकारों का भी वर्णन है। आठ अध्यायों मे विभक्त इस ग्रन्थ मे अधोलिखित विषय वर्णीकृत हैं

१ वर्णावर्णछन्दसज्ञाकथन, २–३ छन्दोनिरूपण, ४. मात्राप्रकरण, ५. वर्णप्रस्तार—उद्दिष्ट-नष्ट-निरूपताका-मर्कटी आदि षोडशलक्षण, ६. अलङ्कार-वर्णन, ७. डिङ्गलनाममाला और ८. गीतप्रकरण।

इस ग्रन्थ से मालूम पड़ता है कि कवि कुशललाभ का डिंगलभाषा पर पूर्ण अधिकार था।

कवि के अन्य ग्रन्थ इस प्रकार हैं :

१. ढोला-मारूगी चौपाई (स० १६१७), २. माधवानलकामकन्दला चौपाई (स० १६१७), ३ तेजपालरास (स० १६२४), ४. अगडदत्त-चौपाई (स० १६२५), ५. जिनपालित-जिनरक्षितसधि–गाथा ८९ (स० १६२१), ६. स्तम्भनपार्श्वनाथस्तवन, ७. गौडीछन्द, ८. नवकारछन्द, ९. भवानी-छन्द, १० पूज्यवाहणगीत आदि।

आर्यासख्या–उद्दिष्ट–नष्टवर्तनविधि :

उपाध्याय समयसुन्दर ने छन्द-विषयक 'आर्यासख्या-उद्दिष्ट-नष्टवर्तनविधि' नामक ग्रन्थ की रचना की है।[१] इसमें आर्या छन्द की सख्या और उद्दिष्ट-नष्ट विषयों की चर्चा है। इसका प्रारभ इस प्रकार है :

> जगणविहीना विषमे चत्वारः पञ्चयुजि चतुर्मात्राः।
> द्वौ षष्ठाविति चगणास्तद्घातात् प्रथमदलसंख्या॥

१७ वीं शताब्दी मे विद्यमान उपाध्याय समयसुन्दर ने सस्कृत और जूनी गुजराती मे अनेक ग्रन्थों की रचना की है।

---

१ इसकी तीन पत्रों की प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय सस्कृति विद्यामदिर के सग्रह में है। यह प्रति १८ वीं शताब्दी में लिखी गई मालूम होती है।

वृत्तमौक्तिक :

उपाध्याय मेघविजय ने छन्द विषयक 'वृत्तमौक्तिक' नामक ग्रथ की रचना संस्कृत मे की है। इसकी १० पत्रो की प्रति मिलती है।[1] उपाध्यायजी ने व्याकरण, काव्य, ज्योतिष, सामुद्रिक, रमल, यत्र, दर्शन और अध्यात्म आदि विषयो पर अनेक ग्रन्थो की रचना की है, जिनसे उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे ग्रथकार ने प्रस्तार-सख्या, उद्दिष्ट, नष्ट आदि का विशद वर्णन किया है।[2] विषय को स्पष्ट करने के लिये यत्र भी दिये गए हैं। यह ग्रथ वि० स० १७५५ मे मुनि भानुविजय के अध्ययनार्थ रचा गया है।[3]

छन्दोवतंस :

'छन्दोऽवतस' नामक ग्रथ के कर्ता उपाध्याय लालचद्रगणि हैं, जो शाति-हर्षवाचक के शिष्य थे।[4] इन्होने वि० स० १७७१ मे इस ग्रथ की रचना की।[5]

यह कृति सस्कृत भाषा मे है। इन्होने केदारभट्ट के 'वृत्तरत्नाकर' का अनुसरण किया है परतु उसमे से अति उपयोगी छन्दो पर ही विशद शैली में विवेचन किया है।

कवि लालचन्द्रगणि ने अपनी रचना मे नम्रता प्रदर्शित करते हुए विद्वानो से ग्रथ मे रही हुई त्रुटियो को शुद्ध करने की प्रार्थना की है।[6]

प्रस्तारविमलेन्दु :

मुनि बिहारी ने 'प्रस्तारविमलेन्दु' नामक छन्द-विषयक ग्रन्थ की रचना की है।

---

१. जैन सत्यप्रकाश, वर्ष १२, अक ५-६.

२. 'प्रस्तारपिण्डसंख्येयं विवृता वृतमौक्तिके ॥

३. समित्यर्थाश्व-भू (१७५५) वर्षे प्रौढिरेषाऽभवत् श्रिये ।
भान्वादिविजयाध्यायहेतुतः सिद्धिमाश्रितः ॥

४. तत् सर्वं गुरुराजवाचकवरश्रीशान्तिहर्षप्रभो ।
शिष्यस्तत्कृपया व्यधत्त सुगम श्रीलालचन्द्रो गणिः ॥

५. विक्रमराज्यात् शशि-हय-भूधर-दशवाजिभि (१७७१) मिते वर्षे ।
माधवसिततृतीयायां रचितः छन्दोऽवतंसोऽयम् ॥

६ क्वचित् प्रमादाद् वितथ मयाऽस्मिंश्छन्दोवतंसे स्वकृते यदुक्तम् ।
संशोध्य तन्निर्मलयन्तु सन्तो विद्वत्सु विज्ञप्तिरियं मदीया ॥

१८ वीं शताब्दी मे विद्यमान बिहारी मुनि ने अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपि की है।[1] इनके विषय मे और जानकारी नहीं मिलती। प्रस्तारविमलेन्दु की प्रति के अंत मे इस प्रकार उल्लेख है . बिहारिमुनिना चक्रे। इति प्रस्तारविमलेन्दु. समाप्तः। स० १९७४ मिति अश्विन् वदि १४ चतुर्दशी लिपीकृत देवेन्द्र-ऋषिणा वैरोवालमध्ये केपरऋषिनिमित्तार्थम् ॥

छन्दोद्वात्रिंशिका :

शीलशेखरगणि ने सस्कृत मे ३२ पद्यो मे छन्दोद्वात्रिंशिका नामक एक छोटी-सी परतु उपयोगी रचना की है।[2] इसमे महत्त्व के छन्दो के लक्षण बताये गये है। इसका प्रारम्भ इस प्रकार है . विद्युन्माला गी गी. प्रमाणी स्याज्जरौ लगौ। अन्त मे इस प्रकार उल्लेख है छन्दोद्वात्रिंशिका समाप्ता। कृति. पण्डितपुरन्दराणा शीलशेखरगणिविबुधपुङ्गवानामिति ॥

शीलशेखरगणि कब हुए और उनकी दूसरी रचनाएँ कौन-सी थीं, यह अभी ज्ञात नहीं है।

जयदेवछन्दस् :

छन्दशास्त्र के 'जयदेवछन्दस्' नामक ग्रथ के कर्ता जयदेव नामक विद्वान् थे। उन्होने अपने नाम से ही इस ग्रन्थ का नाम 'जयदेवछन्दस्' रखा है। ग्रथ के मगलाचरण में अपने इष्टदेव वर्धमान को नमस्कार करने से प्रतीत होता है कि वे जैन थे। इतना ही नहीं, वे श्वेताबर जैनाचार्य थे, ऐसा हलायुध[3] और केदार भट्ट के 'वृत्तरत्नाकार' के टीकाकार सुल्हण[4] (वि० स० १२४६) के जयदेव को 'श्वेतपट' विशेषण से उल्लिखित करने से जान पड़ता है।

जयदेव कब हुए, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, फिर भी

---

१. ऐसी बहुत-सी प्रतियाँ अहमदाबाद के ला० द० भारतीय सस्कृति विद्या-मंदिर के संग्रह में हैं। १५ पत्रों की प्रस्तारविमलेन्दु की एक-प्रति वि० स० १९७४ में लिखी हुई मिली है।

२. इस ग्रन्थ की एक पत्र की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामंदिर के हस्तलिखित सग्रह में है। प्रति १७ वी शताब्दी में लिखी गई मालूम होती है।

३. 'अन्यदतो हि वितान' श्वेतपटेन यदुक्तम्।

४. 'अन्यदतो हि वितान' शूद्रश्वेतपटजयदेवेन यदुक्तम्।

वि० स० ११९० मे लिखित हस्तलिखित प्रति के (जैसलमेर के भडार से) मिलने से उसके पहले कभी हुए हैं, यह निश्चित है ।

कवि स्वयभू ने 'स्वयभूच्छन्दस्' मे जयदेव का उल्लेख किया है । वे 'पउमचरिय' के कर्ता स्वयभू से अभिन्न हो तो सन् ७९१ (वि० स० ८४७) मे विद्यमान थे, अतः जयदेव उसके पहले हुए, ऐसा माना जा सकता है ।

सभवत: वि० स० ५६२ मे विद्यमान 'पञ्चसिद्धान्तिका' के रचयिता वराहमिहिर को ये जयदेव परिचित होगे । यदि यह ठीक है तो वे छठी शताब्दी के आस-पास या पूर्व हुए, ऐसा निर्णय हो सकता है ।

ईस्वी १०वीं शती के उत्तरार्ध मे विद्यमान भट्ट हलायुध ने जयदेव के मत की आलोचना अपने 'पिङ्गलछन्दःसूत्र' की टीका (पिं० १ १०, ५ ८) में की है । ई० १०वीं शताब्दी के 'नाट्यशास्त्र' के टीकाकार[1] अभिनवगुप्त ने जयदेव के इस ग्रन्थ का अवतरण लिया है । इससे वे ई० १० वीं शती से पूर्व हुए, ऐसा निर्णय कर सकते हैं । तात्पर्य यह है कि वे ई० ६ठी शताब्दी से ई० १०वीं शताब्दी के बीच मे कभी हुए ।

सन् ९६६ मे विद्यमान उत्पल, सन् १००० से पूर्व होनेवाले कन्नड भाषा के 'छन्दोऽम्बुधि' ग्रन्थ के कर्ता नागदेव, सन् १०७० मे होनेवाले नमिसाधु और १२ वीं शताब्दी और उसके बाद मे होनेवाले हेमचद्र, त्रिविक्रम, अमरचद्र, सुल्हण, गोपाल, कविदर्पणकार, नारायण, रामचद्र वगैरह जैन-जैनेतर छन्दशास्त्रियो ने जयदेव से अवतरण लिये हैं, उनकी शैली का अनुसरण किया है या उनके मत की चर्चा की है । इससे जयदेव की प्रामाणिकता और लोकप्रियता का आभास मिलता है । इतना ही क्यो, हर्षट नामक जैनेतर विद्वान् ने 'जयदेवछन्दस्' पर वृत्ति की रचना की है जो जैन ग्रन्थो पर रचित विरल जैनेतर टीकाग्रन्थो मे उल्लेखनीय है ।

जयदेव ने अपना छन्दोग्रन्थ सस्कृत भाषा में पिंगल के आदर्श पर लिखा, ऐसा प्रतीत होता है । पिंगल की तरह जयदेव ने भी अपने ग्रन्थ के आठ अध्यायो मे से प्रथम अध्याय मे सज्ञाएँ, दूसरे-तीसरे मे वैदिक छन्दो का निरूपण और चतुर्थ से लेकर अष्टम तक के अध्यायो मे लौकिक छन्दो के लक्षण दिये हैं ।

---

१. देखिए—गायकवाड ग्रथमाला मे प्रकाशित टीका, पृ० २४४.

जयदेव ने अध्यायो का आरभ ही नहीं, उनकी समाप्ति भी पिंगल की तरह ही की है। वैदिक छन्दों के लक्षण सूत्ररूप मे ही दिये हैं, परन्तु लौकिक छन्दों के निरूपण की शैली पिंगल से भिन्न है। इन्होने छन्दो के लक्षण, जिनके वे लक्षण है, उनको छन्दो के पाद मे ही बताये हैं, इस कारण लक्षण भी उदाहरणो का काम देते हैं।' इस शैली का अवलम्बन जयदेव के परवर्ती कई छन्दो के लक्षणकारो ने किया है।

जयदेवछन्दोवृत्ति :

मुकुल भट्ट के पुत्र हर्षट ने 'जयदेवछन्दस्' पर वृत्ति की रचना की है। यह वृत्ति जैन विद्वानो के रचित ग्रन्थो पर जैनेतर विद्वानो द्वारा रचित वृत्तियो मे से एक है।

काव्यप्रकाशकार मम्मट ने 'अभिधावृत्ति मातृका' के कर्ता मुकुल भट्ट का उल्लेख किया है। उनका समय सन् ९२५ के आस पास है। सम्भवत. ~प मुकुल भट्ट का पुत्र ही यह हर्षट है।

हर्षटरचित वृत्ति की हस्तलिखित प्रति सन् ११२४ की मिली है इससे वे उस समय से पूर्व हुए, यह निश्चित है।

टकारात नाम से अनुमान होता है कि ये कश्मीरी विद्वान् होंगे।

जयदेवछन्दःशास्त्रवृत्ति-टिप्पनक :

शीलभद्रसूरि के शिष्य श्रीचन्द्रसूरि ने वि० १३ वीं शताब्दी मे जयदेवकृत छन्दःशास्त्र की वृत्ति पर टिप्पन की रचना की है। यह टिप्पन किस विद्वान् की वृत्ति पर है, यह ज्ञात नहीं हुआ है। शायद हर्षट की वृत्ति पर ही यह टिप्पन हो। श्रीचन्द्रसूरि का आचार्यावस्था के पूर्व पार्श्वदेवगणि नाम था, ऐसा उन्होने 'न्यायप्रवेशपञ्जिका' की अन्तिम पुष्पिका मे निर्देश किया है।

इनके अन्य ग्रन्थ इस प्रकार है :

---

१ यह ग्रन्थ हर्षट की टीका के साथ 'जयदामन्' नामक छन्दो के सग्रह-ग्रंथ मे हरितोषमाला ग्रंथावली, बम्बई से सन् १९४९ मे प्रो० वेलणकर द्वारा संपादित होकर प्रकाशित हुआ है।

१. न्यायप्रवेश-पञ्जिका, २ निशीथचूर्णि-टिप्पनक, ३. नन्दिसूत्र-हारिभद्रीय-वृत्ति-टिप्पनक, ४. पञ्चोपाङ्गसूत्र-वृत्ति, ५. श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्र वृत्ति, ६ पिण्ड-विशुद्धि-वृत्ति, ७. जीतकल्पचूर्णि-व्याख्या, ८. सर्वसिद्धान्तविषमपदपर्याय ।

स्वयंभूच्छन्दस्:

'स्वयभूच्छन्दस्' ग्रन्थ के कर्ता स्वयभू को वेलणकर 'पउमचरिय' और 'हरिवशपुराण' के कर्ता से भिन्न मानते है, जबकि राहुल साकृत्यायन[1] और हीरालाल जैन इन तीनो ग्रन्थो के कर्ता को एक ही स्वयभू बताते है। 'स्वयभू-च्छन्दस्' मे लिये गये कई अवतरण 'पउमचरिय' मे मिलते हैं।[2] इससे प्रतीत होता है कि हरिवशपुराण, पउमचरिय और स्वयभूच्छन्दस् के कर्ता एक ही स्वयभू हैं। वे जाति के ब्राह्मण थे, कवि माउरदेव और पद्मिनी के पुत्र थे और त्रिभुवनस्वयभू के पिता थे।

'स्वयभूच्छन्दस्' के समाप्तिसूचक पद्यो द्वारा आठ अध्यायो मे विभक्त होने का सकेत मिलता है। प्रथम अध्याय के प्रारभिक २२ पृष्ठ उपलब्ध नहीं हैं। वर्णवृत्त अक्षर-सख्या के अनुसार २६ वर्गों में विभाजित करने की परिपाटी का स्वयभू अनुसरण करते हैं परन्तु इन छन्दों को सस्कृत के छन्द न मानकर प्राकृत काव्य से उनके उदाहरण दिये हैं। द्वितीय अध्याय मे १४ अर्धसमवृत्तों का विचार किया गया है। तृतीय अध्याय मे विषमवृत्तो का प्रतिपादन है। चतुर्थ से अष्टम अध्याय पर्यन्त अपभ्रश के छदो की चर्चा की गई है।

स्वयभू की विशेषता यह है कि उन्होंने सस्कृत वर्णवृत्तों के लक्षण-निर्देश के लिये मात्रागणो का उपयोग किया है। छन्दो के उदाहरण प्राकृत कवियों के नामनिर्देशपूर्वक उनकी रचनाओं से दिये हैं। प्राकृत कवियों के २०६ पद्य उद्धृत किये हैं उनमे से १२८ पद्य सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश छन्दों के उदाहरणरूप मे दिये है।[3]

---

१. 'हिंदी काव्यधारा' पृ० २२

२. प्रो० भायाणी 'भारतीय विद्या' वो० ८, न० ८-१०, उदाहरणार्थ स्वयभूछन्दस् ८,३१, पउमचरिय ११,१.

३. यह ग्रंथ Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society में सन् १९३५ में प्रो० वेलणकर द्वारा सपादित होकर प्रकाशित हुआ है।

वृत्तजातिसमुच्चय :

'वृत्तजातिसमुच्चय' नामक छन्दोग्रन्थ को कई विद्वान् 'कविसिट्ठ', 'कृत-सिद्ध' और 'छन्दोविच्चिति' नाम से भी पहिचानते है। पद्यमय प्राकृत भाषा मे निबद्ध इस कृति[1] के कर्ता का नाम है विरहाक या विरहलाछन।

कर्ता ने सद्भावलाछन, गन्धहस्ती, अवलेपचिह्न और पिंगल नामक विद्वानो को नमस्कार किया है। विरहाक कब हुए, यह निश्चित नहीं है। ये जैन थे या नहीं, यह भी ज्ञात नहीं है।

'काव्यादर्श' मे 'छन्दोविच्चिति' का उल्लेख है, परन्तु वह प्रस्तुत ग्रन्थ है या इससे भिन्न, यह कहना मुश्किल है। सिद्धहेम-व्याकरण (८ ३. १३४) मे दिया हुआ 'इअराइ' से शुरू होनेवाला पद्य इस ग्रन्थ (१. १३) में पूर्वार्धरूप मे दिया हुआ है। सिद्धहेम-व्याकरण (८ २ ४०) की वृत्ति में दिया हुआ 'विद्धकइनिरूविअ' पद्य भी इस ग्रन्थ (२. ८) से लिया गया होगा क्योंकि इसके पूर्वार्ध मे यह शब्द-प्रयोग है। इससे इस छदोग्रन्थ की प्रामाणिकता का परिचय मिलता है।

इस ग्रन्थ में मात्रावृत्त और वर्णवृत्त की चर्चा है। यह छ नियमो मे विभक्त है। इनमे से पाचवा नियम, जिसमे सस्कृत साहित्य मे प्रयुक्त छन्दों के लक्षण दिये गये हैं, सस्कृत भाषा मे है, बाकी के पाच नियम प्राकृत मे निबद्ध हैं।

छठे नियम मे श्लोक ५२-५३ मे एक कोष्ठक दिया गया है, जो इस प्रकार है :[2]

४ अगुल = १ राम
३ राम = १ वितस्ति
२ वितस्ति = १ हाथ
२ हाथ = १ धनुर्धर
२००० धनुर्धर = १ कोश
८ कोश = १ योजन

---

१. इसकी हस्तलिखित प्रति वि० स० ११९२ की मिलती है।
२. यह ग्रंथ Journal of the Bombay Branch of the Royal Asiatic Society में छप गया है।

वृत्तजातिसमुच्चय-वृत्ति :

'वृत्तजातिसमुच्चय' पर भट्ट चक्रपाल के पुत्र गोपाल ने वृत्ति की रचना की है। इस वृत्ति मे टीकाकार ने कात्यायन, भरत, कम्बल और अश्वतर का स्मरण किया है।

गाथालक्षण :

'गाहालक्खण' के प्रथम पद्य मे ग्रन्थ और उसके कर्ता का उल्लेख है, पद्य ३१ और ६३ मे भी ग्रन्थ का 'गाहालक्खण' नाम निर्दिष्ट है। इससे नदिताढ्य इस प्राकृत 'गाथालक्षण' के निर्माता थे यह स्पष्ट है।

नदियड्ढ (नदिताढ्य) कब हुए, यह उनकी अन्य कृतियो और प्रमाणो के अभाव मे कहा नहीं जा सकता। सभवतः वे हेमचद्राचार्य से पूर्व हुए हो। हो सकता है कि वे विरहाक के समकालीन या इनके भी पूर्ववर्ती हो।

नदियड्ढ ने मगलाचरण मे नेमिनाथ को वदन किया है। पद्य १५ मे मुनिपति वीर की, ६८, ६९ मे शातिनाथ की, ७०, ७१ मे पार्श्वनाथ की, ५७ मे ब्राह्मीलिपि की, ६७ में जैनधर्म की, २१, २२, २५ मे जिनवाणी की, २३ मे जिनशासन की व ३७ मे जिनेश्वर की स्तुति की है। पद्य ६२ मे मेरुशिखर पर ३२ इद्रो ने वीर का जन्माभिषेक किया, यह निर्देश है। इन प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि वे श्वेताम्बर जैन थे।

यह ग्रथ मुख्यतया गाथाछद से सबद्ध है, ऐसा इसके नाम से ही प्रकट है। प्राकृत के इस प्राचीनतम गाथाछन्द का जैन तथा बौद्ध आगम-ग्रन्थो मे व्यापक रूप से प्रयोग हुआ है। सम्भवतः इसी कारण नन्दिताढ्य ने गाथा-छन्द को एक लक्षण-ग्रन्थ का विषय बनाया।

'गाथा-लक्षण' मे ९६ पद्य हैं, जो अधिकाशतः गाथा-निबद्ध हैं। इनमे से ४७ पद्यों मे गाथा के विविध भेदों के लक्षण है तथा ४९ पद्य उदाहरणों के हैं। पद्य ६ से १६ तक मुख्य गाथाछन्द का विवेचन है। नन्दिताढ्य ने 'शर' शब्द को चतुर्मात्रा के अर्थ मे लिया है, जबकि विरहाक ने 'वृत्तजातिसमुच्चय' मे इसे पञ्चकल का द्योतक माना है। यह एक विचित्र और असामान्य बात प्रतीत होती है।

पद्य १७ से २० मे गाथा के मुख्य भेद पथ्या, विपुला और चपला का वर्णन तथा पद्य २१ से २५ तक इनके उदाहरण हैं। पद्य २६ से ३० में गीति, उद्गीति, उपगीति और सकीर्णगाथा उदाहृत है। पद्य ३१ में नन्दिताढ्य ने

अवहट्ठ (अपभ्रंश) का तिरस्कार करते हुए अपने भाषासम्बन्धी दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। पद्य ३२ से ३७ तक गाथा के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्गों का उल्लेख है। ब्राह्मण मे गाथा के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दोनो मे गुरुवर्णों का विधान है। क्षत्रिय मे पूर्वार्ध में सभी गुरुवर्ण और उत्तरार्ध मे सभी लघुवर्ण निर्दिष्ट हैं। वैश्य मे इससे उल्टा होता है और शूद्र मे दोनो पादो मे सभी लघुवर्ण आते है।

पद्य ३८–३९ में पूर्वोक्त गाथा-भेदों को दुहराया गया है। पद्य ४० से ४४ तक गाथा में प्रयुक्त लघु-गुरुवर्णों की सख्या के अनुसार गाथा के २६ भेदों का कथन है।

पद्य ४५–४६ मे लघु-गुरु जानने की रीति, पद्य ४७ मे कुल मात्रासख्या, पद्य ४८ से ५१ मे प्रस्तारसख्या, पद्य ५२ मे अन्य छन्दो की प्रस्तारसख्या, पद्य ५३ से ६२ तक गाथासम्बन्धी अन्य गणित का विचार है। पद्य ६३ से ६५ मे गाथा के ६ भेदों के लक्षण तथा पद्य ६६ से ६९ में उनके उदाहरण दिये गये हैं। पद्य ७२ से ७५ तक गाथाविचार है।

यह ग्रन्थ यहाँ (७५ पद्य तक) पूर्ण हो जाना चाहिये था। पद्य ३१ में कर्ता के अवहट्ठ के प्रति तिरस्कार प्रकट करने पर भी इस ग्रन्थ में पद्य ७६ से ९६ तक अपभ्रंश छन्दसम्बन्धी विचार दिये गये हैं, इसलिये ये पद्य परवर्ती क्षेपक मालूम पड़ते हैं। प्रो० वेलणकर ने भी यही मत प्रकट किया है।

पद्य ७६–९६ में अपभ्रंश के कुछ छन्दों के लक्षण और उदाहरण इस प्रकार बताये गये हैं : पद्य ७६–७७ में पद्धति, ७८–७९ में मदनावतार या चन्द्रानन, ८०–८१ में द्विपदी, ८२–८३ मे वस्तुक या साधछन्दस्, ८४ से ९४ मे दूहा, उसके भेद, उदाहरण और रूपान्तर और ९५–९६ में श्लोक।

गाथा-लक्षण के सभी पद्य नंदिताढ्य के रचे हुए हों ऐसा मालूम नहीं होता। इसका चतुर्थ पद्य 'नाट्यशास्त्र' (अ० २७) में कुछ पाठभेदपूर्वक मिलता है। १५ वा पद्य 'सूयगड' की चूर्णि (पत्र ३०४) में कुछ पाठभेदपूर्वक उपलब्ध होता है।

इस 'गाथालक्षण' के टीकाकार मुनि रत्नचन्द्र ने सूचित किया है कि ५७ वा पद्य 'रोहिणी-चरित्र' से, ५९ वा और ६० वा पद्य 'पुष्पदन्तचरित्र' से और ६१ वा पद्य 'गाथासहस्रपथालकार' से लिया गया है।[१]

---

१. यह ग्रन्थ भांडारकर प्राच्यविद्या संशोधन मंदिर त्रैमासिक, पु० १४, पृ० १-३८ में प्रो० वेलणकर ने सपादित कर प्रकाशित किया है।

गाथालक्षण-वृत्ति :

'गाथालक्षण' छद-ग्रन्थ पर रत्नचन्द्र मुनि ने वृत्ति की रचना की है। टीका के अत मे इस प्रकार उल्लेख है : नदिताढ्यस्य च्छन्दसष्टीका कृतिः श्री देवाचार्यस्य शिष्येणाष्टोत्तरशतप्रकरणकर्तुर्महाकवे. पण्डितरत्नचन्द्रेणेति।

माण्डव्यपुरगच्छीयदेवानन्दमुनेर्गिरा ।
टीकेयं रत्नचन्द्रेण नंदिताढ्यस्य निर्मिता ॥

१०८ प्रकरण-ग्रथो के रचयिता महाकवि देवानन्दाचार्य, जो माडव्यपुरगच्छ के थे, उनकी आज्ञा से उन्हीं के शिष्य रत्नचन्द्र ने नन्दिताढ्य के इस गाथा-लक्षण की वृत्ति रची है।

इस वृत्ति से गाथालक्षण मे प्रयुक्त पद्य किन-किन ग्रथो से उद्धृत किये गये हैं इस बात का पता लगता है। टीका की रचना विशद है।

कविदर्पण :

प्राकृत भाषा में ग्रथित इस महत्त्वपूर्ण छन्दःकृति के कर्ता का नाम अज्ञात है। वे जैन विद्वान् होगे, ऐसा कृति मे दिये गये जैन ग्रथकारो के नाम और जैन परिभाषा आदि देखते हुए अनुमान होता है। ग्रथकार आचार्य हेमचद्र के 'छन्दोऽनुशासन' से परिचित है।

'कविदर्पण' मे सिद्धराज जयसिंह, कुमारपाल, समुद्रसूरि, भीमदेव, तिलक-सूरि, शाकभरीराज, यशोघोषसूरि और सूरप्रभसूरि के नाम निर्दिष्ट हैं। ये सभी व्यक्ति १२-१३ वीं शती मे विद्यमान थे। इस ग्रथ मे जिनचद्रसूरि, हेमचद्र-सूरि, सूरप्रभसूरि, तिलकसूरि और (रत्नावली के कर्ता) हर्षदेव की कृतियो से अवतरण दिये गये हैं।

छः उद्देशात्मक इस ग्रथ मे प्राकृत के २१ सम, १५ अर्धसम और १३ सयुक्त छद बताये गये हैं। ग्रथ में ६९ उदाहरण हैं जो स्वय ग्रन्थकार ने ही रचे हों ऐसा मालूम होता है। इसमे सभी प्राकृत छदो की चर्चा नहीं है। अपने समय मे प्रचलित महत्त्वपूर्ण छद चुनने मे आये है। छदो के लक्षणनिर्देश और वर्गीकरण द्वारा कविदर्पणकार की मौलिक दृष्टि का यथेष्ट परिचय मिलता है। इस ग्रन्थ मे छदो के लक्षण और उदाहरण अलग-अलग दिये गये हैं।[1]

---

१. यह ग्रन्थ वृत्तिसहित प्रो० वेलणकर ने संपादित कर पूना के भांडारकर प्राच्यविद्या संशोधन मदिर के त्रैमासिक (पु० १६, पृ० ४४-८९, पु० १७, पृ० ३७-६० और १७५-१८४) में प्रकाशित किया है।

कविदर्पण-वृत्ति :

'कविदर्पण' पर किसी विद्वान् ने वृत्ति की रचना की है, जिसका नाम भी अज्ञात है। वृत्ति में 'छन्द'कन्दली' नामक प्राकृत छन्दोग्रन्थ के लक्षण दिये गये हैं। वृत्ति मे जो ५७ उदाहरण हैं वे अन्यकर्तृक हैं। इसमें सूर, पिंगल और त्रिलोचनदास—इन विद्वानों की संस्कृत और स्वयभू, पादलिप्तसूरि और मनोरथ—इन विद्वानों की प्राकृत कृतियों से अवतरण दिये गये हैं। रत्नसूरि, सिद्धराज जयसिंह, धर्मसूरि और कुमारपाल के नामों का उल्लेख है। इन नामों को देखते हुए वृत्तिकार भी जैन प्रतीत होते है।

छन्दःकोश :

'छन्द.कोश' के रचयिता रत्नशेखरसूरि हैं, जो १५ वीं शताब्दी म हुए। ये बृहद्गच्छीय वज्रसेनसूरि (बाद में रूपांतरित नागपुरीय तपागच्छ के हेमतिलकसूरि) के शिष्य थे।

प्राकृत भाषा मे रचित इस 'छन्दःकोश'' में कुल ७४ पद्य हैं। पद्य-सख्या ५ से ५० तक (४६ पद्य) अपभ्रंश भाषा में रचित हैं। प्राकृत छंदों में से कई प्रसिद्ध छंदों के लक्षण लक्ष्य-लक्षणयुक्त और गण-मात्रादिपूर्वक दिये गये हैं। इसमें अल्हु (अर्जुन) और गुल्हु (गोसल) नामक लक्षणकारों से उद्धरण दिये हैं।

छन्दःकोश-वृत्ति :

इस 'छन्द.कोश' ग्रथ पर आचार्य रत्नशेखरसूरि के सतानीय भट्टारक राजरत्नसूरि और उनके शिष्य चन्द्रकीर्तिसूरि ने १७ वीं शताब्दी मे वृत्ति की रचना की है।

छन्दःकोश-बालावबोध :

'छन्दःकोश' पर आचार्य मानकीर्ति के शिष्य अमरकीर्तिसूरि ने गुजराती भाषा में 'बालावबोध' की रचना की है।[2]

---

१. इसका प्रकाशन डा० शुब्रिंग ने (Z D M G, Vol. 75, pp 97 ff) सन् १९२२ मे किया था। फिर तीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर प्रो० एच० डी० वेलणकर ने इसे सपादित कर बबई विश्वविद्यालय पत्रिका में सन् १९३३ मे प्रकाशित किया था।

२. इसकी एक हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर में है। प्रति १८ वीं शताब्दी मे लिखी गई मालूम पडती है।

बालावबोधकार ने इस प्रकार कहा है :

> तेषां पदे सुविख्याताः सूरयोऽमरकीर्त्तयः।
> तैश्चक्रे बालावबोधोऽयं छन्दःकोशाभिधस्य वै ॥

छन्दःकन्दली :

'छन्दःकन्दली' के कर्ता का नाम अभी तक अज्ञात है। प्राकृत भाषा मे निबद्ध इस ग्रथ मे 'कविदप्पण' की परिभाषा का उपयोग किया गया है।

यह ग्रथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

छन्दस्तत्त्व :

अञ्चलगच्छीय मुनि धर्मनन्दनगणि ने 'छन्दस्तत्त्व' नामक छन्दविषयक ग्रन्थ की रचना की है।[१]

इन ग्रथों के अतिरिक्त रामविजयगणिरचित छन्दःशास्त्र, अज्ञातकर्तृक छन्दोऽलङ्कार जिस पर किसी अज्ञातनामा आचार्य ने टिप्पण लिखा है, मुनि अजितसेनरचित छन्दःशास्त्र, वृत्तवाद और छन्दःप्रकाश—ये तीन ग्रथ, आशाधरकृत वृत्तप्रकाश, चन्द्रकीर्तिकृत छन्दःकोश (प्राकृत) और गाथारत्नाकर, छन्दोरूपक, सगीतसहपिंगल इत्यादि नाम मिलते हैं।

इस दृष्टि से देखा जाय तो छन्दःशास्त्र मे जैनाचार्यों का योगदान कोई कम नहीं है। इतना ही नहीं, इन आचार्यों ने जैनेतर लेखको के छन्दशास्त्र के ग्रन्थो पर टीकाए भी लिखी है।

जैनेतर ग्रन्थो पर जैन विद्वानो के टीकाग्रन्थ :

श्रुतबोध—कई विद्वान् वररुचि को 'श्रुतबोध' के कर्ता मानते हैं और कई कालिदास को। यह शीघ्र ही कठस्थ हो सके ऐसी सरल और उपयोगी ४४ पद्यो की छोटी-सी कृति अपनी पत्नी को संबोधित करके लिखी गई है। छन्दो के लक्षण उन्हीं छन्दो मे दिये गये हैं जिनके वे लक्षण हैं।

इस ग्रथ से पता चलता है कि कवियो ने प्रस्तारविधि से छन्दो की वृद्धि न करके लयसाम्य के आधार पर गुरु लघु वर्णों के परिवर्तन द्वारा ही नवीन छन्दो की रचना की होगी।

---

१. इसकी हस्तलिखित प्रति छाणी के भण्डार मे है।

'श्रुतबोध' मे आठ गणों एव गुरु लघु वर्णों के लक्षण बताकर आर्या आदि छदों से प्रारभ कर यति का निर्देश करते हुए समवृत्तों के लक्षण बताये गये है।

इस कृति पर जैन लेखकों ने निम्नोक्त टीकाओं की रचना की है :

१ नागपुरी तपागच्छ के चन्द्रकीर्तिसूरि के शिष्य हर्षकीर्तिसूरि ने विक्रम की १७ वीं शताब्दी मे वृत्ति की रचना की है। टीका[1] के अन्त मे वृत्तिकार ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

> श्रीमन्नागपुरीयपूर्वकतपागच्छाम्बुजाहस्कराः
> सूरीन्द्राः [चन्द्र]कीर्तिगुरवो विश्वत्रयीविश्रुताः।
> तत्पादाम्बुरुहप्रसादपदतः श्रीहर्षकीर्त्याह्वयो-
> पाध्यायः श्रुतबोधवृत्तिमकरोद् बालावबोधाय वै ॥

२. नयविमलसूरि ने वि० १७ वीं शताब्दी में वृत्ति की रचना की है।

३. वाचक मेघचन्द्र के शिष्य ने वृत्ति रची है।

४. मुनि कांतिविजय ने वृत्ति बनाई है।

५. माणिक्यमल्ल ने वृत्ति का निर्माण किया है।

वृत्तरत्नाकर—शैव शास्त्रो के विद्वान् पव्वेक के पुत्र केदार भट्ट[2] ने सस्कृत पद्यों मे 'वृत्तरत्नाकर' की रचना सन् १००० के आस-पास में की है। इसमे कर्ता ने छद-विषयक उपयोगी सामग्री दी है। यह कृति १ सज्ञा, २. मात्रावृत्त, ३ समवृत्त, ४. अर्धसमवृत्त, ५. विषमवृत्त और ६. प्रस्तार—इन छः अध्यायों में विभक्त है।

इस पर जैन लेखको ने निम्नलिखित टीकाएँ लिखी है :

१. आसड नामक कवि 'वृत्तरत्नाकर' पर 'उपाध्यायनिरपेक्षा' नामक वृत्ति की रचना की है। आसड की नवरसभरी काव्यवाणी को सुनकर राजसभ्यों ने इन्हें 'सभाशृंगार' की पदवी से अलकृत किया था। इन्होंने 'मेघदूत' काव्य पर सुन्दर टीका ग्रन्थ की रचना की थी। प्राकृत भाषा मे 'विवेकमञ्जरी' और 'उपदेशकन्दली' नामक दो प्रकरणग्रन्थ भी रचे थे। ये वि० स० १२४८ में विद्यमान थे।

२. वादी देवसूरि के सतानीय जयमगलसूरि के शिष्य सोमचन्द्रगणि ने

---

१ इस टीका की एक हस्तलिखित ७ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है।

२ वेदार्थशैवशास्त्रज्ञ. पव्वेकोऽभूद् द्विजोत्तमः।
तस्य पुत्रोऽस्ति केदार. शिवपादार्चने रत. ॥

वि० स० १३२९ मे 'वृत्तरत्नाकर' पर वृत्ति की रचना की थी। इसमे इन्होने आचार्य हेमचन्द्र के 'छन्दोनुशासन' की स्वोपज्ञ वृत्ति से उदाहरण लिये हैं। कहीं-कहीं 'वृत्तरत्नाकर' के टीकाकार सुल्हण से भी उदाहरण लिये है। सुल्हण की टीका के मूल पाठ से कहीं-कहीं अन्तर है।

टीकाकार ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है .

वादिश्रीदेवसूरेर्गणगगनविधौ बिभ्रतः शारदायाः,
नाम प्रत्यक्षपूर्वं सुजयपदभृतो मङ्गलाह्वस्य सूरेः।
पादद्वन्द्वारविन्देऽम्बुमधुपहिते भृङ्गभङ्गी दधानो,
वृत्ति सोमोऽभिरामामकृत कृतिमतां वृत्तरत्नाकरस्य ॥'

३. खरतरगच्छीय आचार्य जिनभद्रसूरि के शिष्य मुनि क्षेमहस ने इस पर टिप्पन की रचना की है। ये वि० १५ वीं शताब्दी मे विद्यमान थे।

४. नागपुरी तपागच्छीय हर्षकीर्तिसूरि के शिष्य अमरकीर्ति और उनके शिष्य यशःकीर्ति ने इस पर वृत्ति की रचना की है।

५. उपाध्याय समयसुन्दरगणि ने इस पर वृत्ति की रचना वि० स० १६९४ मे की है।[2]

इसके अन्त मे वृत्तिकार ने अपना परिचय इस प्रकार दिया है :

वृत्तरत्नाकरे वृत्ति गणिः समयसुन्दरः।
षष्ठाध्यायस्य संबद्धा पूर्णीचक्रे प्रयत्नतः॥ १॥
संवति विधिमुख-निधि-रस-शशिसंख्ये दीपपर्वदिवसे च।
जालोरनामनगरे लुणिया-कसलार्पितस्थाने॥ २॥
श्रीमत्खरतरगच्छे श्रीजिनचन्द्रसूरयः।
तेषा सकलचन्द्राख्यो विनेयो प्रथमोऽभवत्॥ ३॥
तच्छिष्यसमयसुन्दरः एतां वृत्ति चकार सुगमतराम्।
श्रीजिनसागरसूरिप्रवरे गच्छाधिराजेऽस्मिन्॥ ४॥

६. खरतरगच्छीय मेरुसुन्दरसूरि ने इस पर बालावबोध की रचना की है। मेरुसुन्दरसूरि वि० १६ वीं शताब्दी में विद्यमान थे।

---

१. इस टीका-ग्रथ की एक हस्तलिखित ३३ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर मे है।

२. इसकी एक हस्तलिखित ३१ पत्रो की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर में है।

पॉचवॉ प्रकरण

नाट्य

दुःखी, शोकार्त, श्रात एव तपस्वी व्यक्तियो को विश्राति देने के लिये नाट्य की सृष्टि की गई है। सुख-दुःख से युक्त लोक का स्वभाव ही आगिक, वाचिक इत्यादि अभिनयो से युक्त होने पर नाट्य कहलाता है :

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुख-दुःख समन्वितः ।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते ॥

नाट्यदर्पण :

कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरि के दो शिष्यो कविकटारमल्ल विरुदधारक रामचन्द्रसूरि और उनके गुरुभाई गुणचद्रगणि ने मिलकर 'नाट्यदर्पण' की रचना वि० स० १२०० के आसपास मे की।

'नाट्यदर्पण' मे चार विवेक है जिनमे सब मिलाकर २०७ पद्य हैं।

प्रथम- विवेक 'नाटकनिर्णय' मे नाटकसबधी सब बातो का निरूपण है। इसमे १. नाटक, ˜ प्रकरण, ३ नाटिका, ४ प्रकरणी, ५ व्यायोग, ६ समवकार, ७ भाण, ८ प्रहसन, ९ डिम, १०. अक, ११. इहामृग और १२. वीथि— ये बारह प्रकार के रूपक बताये गये है। पाच अवस्थाओं और पॉच सधियो का भी उल्लेख है ।

द्वितीय विवेक 'प्रकरणाद्येकादशनिर्णय' मे प्रकरण से लेकर वीथि तक के ११ रूपको का वर्णन है।

तृतीय विवेक 'वृत्ति-रस-भावाभिनयविचार' मे चार वृत्तियो, नव रसों, नव स्थायी भावों, तैंतीस व्यभिचारी भावो, रस आदि आठ अनुभावों और चार अभिनयो का निरूपण है।

चतुर्थ विवेक 'सर्वरूपकसाधारणलक्षणनिर्णय' मे सभी रूपको के लक्षण बताये गये हैं।

आचार्य रामचद्रसूरि समर्थ आशुकवि के रूप मे प्रसिद्ध थे। ये काव्य के गुण-दोषो के बड़े परीक्षक थे। इन्होने नाटक आदि अनेक ग्रन्थो की रचना की है। गुरु हेमचद्रसूरि ने जिन नाटक आदि विषयो पर नहीं लिखा था उन विषयो पर आचार्य रामचद्रसूरि ने अपनी लेखनी चलाई है। ये प्रबन्ध-शतकर्ता भी माने गये है। इसका अर्थ 'सौ प्रबन्धो के कर्ता' नहीं अपितु 'प्रबन्धशत नामक ग्रन्थ के कर्ता' है। यह अर्थ बृहट्टिप्पणिका में सूचित किया गया है। प्रबन्धशत ग्रन्थ अभीतक नहीं मिला है। ऐसे समर्थ कवि की अकाल-मृत्यु स० १२३० के आस-पास राजा अजयपाल के निमित्त हुई, ऐसी सूचना प्रबधो से मिलती है।

इनके गुरुभाई गुणचन्द्रगणि भी समर्थ विद्वान् थे। उन्होने सवृत्तिक द्रव्या-लकार आचार्य रामचन्द्रसूरि के साथ मे रचा है।

आचार्य रामचद्रसूरि ने निम्नलिखित ग्रन्थो की भी रचना की है:

१. कौमुदीमित्राणद (प्रकरण), २. नलविलास (नाटक), ३. निर्भयभीम (व्यायोग), ४ मल्लिकामकरन्द (प्रकरण), ५. यादवाभ्युदय (नाटक), ६. रघुविलास (नाटक), ७. राघवाभ्युदय (नाटक), ८. रोहिणीमृगाक (प्रकरण), ९. वनमाला (नाटिका), १०. सत्यहरिश्चन्द्र (नाटक), ११ सुधाकलश (कोश), १२. आदिदेवस्तवन, १३. कुमार-विहारशतक, १४ जिनस्तोत्र, १५ नेमिस्तव, १६. मुनिसुव्रतस्तव, १७. यदुविलास, १८ सिद्धहेमचद्र-शब्दानुशासन-लघुन्यास, १९ सोलह साधारणजिनस्तव, २०. प्रसादद्वात्रिंशिका, २१. युगादिद्वात्रिंशिका, २२. व्यतिरेकद्वात्रिंशिका, २३. प्रबन्धशत।

नाट्यदर्पण-विवृति:

आचार्य रामचन्द्रसूरि और गुणचन्द्रगणि ने अपने 'नाट्यदर्पण' पर स्वोपज्ञ विवृति की रचना की है। इसमे रूपको के उदाहरण ५५ ग्रन्थो से दिये गये है। स्वरचित कृतियों से भी उदाहरण लिये है। इसमे १३ उपरूपकों के स्वरूप का आलेखन किया गया है।

धनञ्जय के 'दशरूपक' ग्रन्थ को आदर्श के रूप मे रखकर यह विवृति लिखी गयी है। विवृतिकार ने कहीं कहीं धनञ्जय के मत से अपना भिन्न मत प्रदर्शित किया है। भरत के नाट्यशास्त्र में पूर्वापर विरोध है, ऐसा भी उल्लेख किया है। अपने गुरु आचार्य हेमचन्द्रसूरि के 'काव्यानुशासन' से भी कहीं-

कहीं भिन्न मत का निरूपण किया है। इस दृष्टि से यह कृति विशेष तौर से अध्ययन करने योग्य है।[1]

प्रबन्धशत :

आचार्य हेमचन्द्रसूरि के शिष्यरत्न आचार्य रामचन्द्रसूरि ने 'नाट्यदर्पण' के अतिरिक्त नाट्यशास्त्रविषयक 'प्रबन्धशत' नामक ग्रथ की भी रचना की थी, जो अनुपलब्ध है।

वहुत से विद्वान् 'प्रबन्धशात' का अर्थ 'सौ प्रबन्ध' करते है किन्तु प्राचीन ग्रन्थसूची मे 'रामचन्द्रकृतं प्रबन्धशतं द्वादशरूपकनाटकादिस्वरूपज्ञापकम्' ऐसा उल्लेख मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि 'प्रबन्धशत' नाम की इनकी कोई नाट्यविषयक रचना थी।

---

१. 'नाट्यदर्पण' स्वोपज्ञ विवृति के साथ गायकवाड ओरियण्टल सिरीज से दो भागों में छप चुका है। इस ग्रन्थ का के. एच. त्रिवेदीकृत आलोचनात्मक अध्ययन लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ है।

छठा प्रकरण

संगीत

'सम्' और 'गीत'—इन दो शब्दों के मिलने से 'सगीत' पद बनता है। मुख से गाना गीत है। 'सम्' का अर्थ है अच्छा। वाद्य और नृत्य दोनो के मिलने से गीत अच्छा बनता है। कहा भी है :

गीतं वाद्यं च नृत्यं च त्रयं संगीतमुच्यते।

सगीतशास्त्र का उपलब्ध आदि ग्रथ भरत का 'नाट्यशास्त्र' है, जिसमें सगीत-विभाग (अध्याय २८ से ३६ तक) है। उसमे गीत और वाद्यों का पूरा विवरण है किंतु रागो के नाम और उनका विवरण नहीं बताया गया है।

भरत के शिष्य दत्तिल, कोहल और विशाखिल—इन तीनों ने ग्रन्थो की रचना की थी। प्रथम का दत्तिलम्, दूसरे का कोहलीयम् और तीसरे का विशाखिलम् ग्रन्थ था। विशाखिलम् प्राप्य नहीं है।

मध्यकाल मे हिंदुस्तानी और कर्णाटकी पद्धतिया चलीं। उसके बाद सगीत-शास्त्र के ग्रथ लिखे गये।

सन् १२०० मे सब पद्धतियो का मथन करके शार्ङ्गदेव ने 'सगीत-रत्नाकर' नामक ग्रन्थ लिखा। उस पर छः टीका-ग्रन्थ भी लिखे गये। इनमे से चार टीका-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

अर्धमागधी (प्राकृत) मे रचित 'अनुयोगद्वार' सूत्र मे सगीतविषयक सामग्री पद्य मे मिलती है। इससे ज्ञात होता है कि प्राकृत में संगीत का कोई ग्रन्थ रहा होगा।

उपर्युक्त जैनेतर ग्रन्थों के आधार पर जैनाचार्यों ने भी अपनी विशेषता दर्शाते हुए कुछ ग्रन्थो की रचना की है।

संगीतसमयसार :

दिगंबर जैन मुनि अभयचन्द्र के शिष्य महादेवार्य और उनके शिष्य पार्श्वचन्द्र ने 'सगीतसमयसार'[1] नामक ग्रन्थ की रचना लगभग वि० स० १३८०

---

१. यह ग्रन्थ 'त्रिवेन्द्रम् संस्कृत ग्रंथमाला' में छप गया है।

में की है। इस ग्रन्थ में ९ अधिकरण हैं जिनमें नाद, ध्वनि, स्थायी, राग, वाद्य, अभिनय, ताल, प्रस्तार और आध्वयोग—इस प्रकार अनेक विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें प्रताप, दिगम्बर और शंकर नामक ग्रंथकारों का उल्लेख है। भोज, सोमेश्वर और परमर्दी—इन तीन राजाओं के नाम भी उल्लिखित हैं।'

संगीतोपनिषत्सारोद्धार :

आचार्य राजशेखरसूरि के शिष्य सुधाकलश ने वि० सं० १४०६ में 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' की रचना की है।[२] यह ग्रंथ स्वयं सुधाकलश द्वारा सं० १३८० में रचित 'संगीतोपनिषत्' का साररूप है। इस ग्रंथ में छः अध्याय और ६१० श्लोक हैं। प्रथम अध्याय में गीतप्रकाशन, दूसरे में प्रस्तारादि-सोपाश्रय-तालप्रकाशन, तीसरे में गुण स्वर रागादिप्रकाशन, चौथे में चतुर्विध वाद्यप्रकाशन, पांचवें में नृत्यांग उपांग प्रत्यंगप्रकाशन, छठे में नृत्यपद्धति-प्रकाशन हैं।

यह कृति संगीतमकरंद और संगीतपारिजात से भी विशिष्टतर और अधिक महत्त्व की है।

इस ग्रंथ में नरचन्द्रसूरि का संगीतज्ञ के रूप में उल्लेख है। प्रशस्ति में अपनी 'संगीतोपनिषत्' रचना के वि. सं. १३८० में होने का उल्लेख है।

मलधारी अभयदेवसूरि की परंपरा में अमरचन्द्रसूरि हो गये हैं। वे संगीतशास्त्र में विशारद थे, ऐसा उल्लेख सुधाकलश मुनि ने किया है।

संगीतोपनिषत् :

आचार्य राजशेखरसूरि के शिष्य सुधाकलश ने 'संगीतोपनिषत्' ग्रंथ की रचना वि. सं. १३८० में की, ऐसा उल्लेख ग्रन्थकार ने स्वयं सं० १४०६ में रचित अपने 'संगीतोपनिषत्सारोद्धार' नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति में किया है। यह ग्रंथ बहुत बड़ा था जो अभी तक उपलब्ध नहीं हुआ है।

सुधाकलश ने 'एकाक्षरनाममाला' की भी रचना की है।

---

१. विशेष परिचय के लिये देखिए—'जैन सिद्धांत भास्कर' भाग ९, अंक २ और भाग १०, अंक १०.

२. यह ग्रंथ गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा से प्रकाशित हो गया है।

संगीतमंडन :

मालवा—माडवगढ के सुलतान आलमशाह के मत्री मडन ने विविध विषयो पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं उनमें 'सगीतमडन' भी एक है। इस ग्रथ की रचना करीब वि. स. १४९० मे की है। इसकी हस्तलिखित प्रति मिलती है। ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है।

संगीतदीपक, संगीतरत्नावली, संगीतसहपिंगल :

इन तीन कृतियों का उल्लेख जैन ग्रंथावली में है, परन्तु इनके विषय मे कोई विशेष जानकारी नहीं मिली है।

सातवां प्रकरण

कला

चित्रवर्णसंग्रह :

सोमराजारचित '...परीक्षा' ग्रन्थ के अन्त में 'चित्रवर्णसंग्रह' के ४२ श्लोकों का प्रकरण अत्यन्त उपयोगी है।

इसमें भित्तिचित्र बनाने के लिये भित्ति कैसी होनी चाहिये, रंग कैसे बनाना चाहिये, कलम-पींछी कैसी होनी चाहिये, इत्यादि बातों का ब्यौरेवार वर्णन है।

प्राचीन भारत में सित्तनवासल, अजन्ता, बाघ इत्यादि गुफाओं और राजा-महाराजाओं तथा श्रेष्ठियों के प्रासादों में चित्रों का जो आलेखन किया जाता था उसकी विधि इस छोटे-से ग्रंथ में बताई गई है।

यह प्रकरण प्रकाशित नहीं हुआ है।

कलाकलाप :

वायडगच्छीय जिनदत्तसूरि के शिष्य कवि अमरचन्द्रसूरि की कृतियों के बारे में 'प्रबन्धकोश' में उल्लेख है, जिसमें 'कलाकलाप' नामक कृति का भी निर्देश है। इस ग्रन्थ का शास्त्ररूप में उल्लेख है, परन्तु इसकी कोई प्रति अभी तक प्राप्त नहीं हुई है।

इसमें ७२ या ६४ कलाओं का निरूपण हो, ऐसी सम्भावना है।

मषीविचार :

'मषीविचार' नामक एक ग्रंथ जैसलमेर-भाण्डागार में है, जिसमें ताड़पत्र और कागज पर लिखने की स्याही बनाने की प्रक्रिया बतायी गई है। इसका जैन ग्रन्थावली, पृ० ३६२ में उल्लेख है।
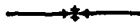
आठवां प्रकरण

गणित

गणित विषय बहुत व्यापक है। इसकी कई शाखाएँ हैं : अकगणित, बीज-गणित, समतलभूमिति, घनभूमिति, समतलत्रिकोणमिति, गोलीयत्रिकोणमिति, समतलबीजभूमिति, घनबीजभूमिति, शून्यलब्धि (सूक्ष्मकलन), शून्ययुति (समाकलन) और शून्यसमीकरण। इनके अतिरिक्त स्थितिशास्त्र, गतिशास्त्र, उदकस्थितिशास्त्र, खगोलशास्त्र आदि भी गणित-शास्त्र के अन्तर्गत हैं।

महावीराचार्य ने गणितशास्त्र की विशेषता और व्यापकता बताते हुए कहा है कि लौकिक, वैदिक तथा सामयिक जो भी व्यापार हैं उन सब मे गणित-सख्यान का उपयोग रहता है। कामशास्त्र, अर्थशास्त्र, गाधर्वशास्त्र, नाट्यशास्त्र, पाक-शास्त्र, आयुर्वेद, वास्तुविद्या और छन्द, अलकार, काव्य, तर्क, व्याकरण, ज्योतिष आदि में तथा कलाओं के समस्त गुणो मे गणित अत्यन्त उपयोगी शास्त्र है। सूर्य आदि ग्रहो की गति ज्ञात करने मे, प्रसन अर्थात् दिक्, देश और काल का ज्ञान करने मे, चन्द्रमा के परिलेख मे—सर्वत्र गणित ही अगीकृत है।

द्वीपो, समुद्रो और पर्वतो की सख्या, व्यास और परिधि, लोक, अन्तर्लोक ज्योतिर्लोक, स्वर्ग और नरक मे स्थित श्रेणीबद्ध भवनो, सभाभवनों और गुम्बदाकार मदिरों के परिमाण तथा अन्य विविध परिमाण गणित की सहायता से ही जाने जा सकते हैं।

जैन शास्त्रो मे चार अनुयोग गिनाए गए है, उनमे गणितानुयोग भी एक है। कर्मसिद्धात के भेद-प्रभेद, काल और क्षेत्र के परिमाण आदि समझने मे गणित के ज्ञान की विशेष आवश्यकता होती है।

गणित जैसे सूक्ष्म शास्त्र के विषय मे अन्य शास्त्रों की अपेक्षा कम पुस्तके प्राप्त होती हैं, उनमे भी जैन विद्वानो के ग्रन्थ बहुत कम सख्या में मिलते है।

गणितसारसंग्रह :

'गणितसारसग्रह' के रचयिता महावीराचार्य दिगम्बर जैन विद्वान् थे। इन्होंने ग्रन्थ के आरभ में कहा है कि जगत् के पूज्य तीर्थंकरों के शिष्य-प्रशिष्यो

के प्रसिद्ध गुणरूप समुद्रो मे से रत्नसमान, पाषाणो मे से कचनसमान, और शुक्तियो मे से मुक्ताफलसमान सार निकाल कर मैंने इस 'गणितसारसग्रह' की यथामति रचना की है। यह ग्रन्थ लघु होने पर भी अनल्पार्थक है।

इसमे आठ व्यवहारो का निरूपण इस प्रकार है : १. परिकर्म, २. कलासवर्ण, ३ प्रकीर्णक, ४. त्रैराशिक, ५. मिश्रक, ६. क्षेत्रगणित, ७ खात और ८ छाया।

प्रथम अध्याय मे गणित की विभिन्न इकाइयो व क्रियाओ के नाम, सख्याएँ, ऋणसख्या और ग्रन्थ की महिमा तथा विषय निरूपित हैं।

महावीराचार्य ने त्रिभुज और चतुर्भुजसबधी गणित का विश्लेषण विशिष्ट रीति से किया है। यह विशेषता अन्यत्र कहीं भी नहीं मिल सकती।'

त्रिकोणमिति तथा रेखागणित के मौलिक और व्यावहारिक प्रश्नो से मालूम होता है कि महावीराचार्य गणित मे ब्रह्मगुप्त और भास्कराचार्य के समान है। तथापि महावीराचार्य उनसे अधिक पूर्ण और आगे है। विस्तार मे भी भास्कराचार्य की लीलावती से यह ग्रन्थ बड़ा है।

महावीराचार्य ने अकसबधी जोड़, बाकी, गुणा, भाग, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल—इन आठ परिकर्मों का उल्लेख किया है। इन्होने शून्य और काल्पनिक सख्याओ पर भी विचार किया है। भिन्नों के भाग के विषय मे महावीराचार्य की विधि विशेष उल्लेखनीय है।

लघुतम समापवर्तक के विषय मे अनुसधान करनेवालों मे महावीराचार्य प्रथम गणितज्ञ हैं जिन्होंने लाघवार्थ—निरुद्ध लघुतम समापवर्त्य की कल्पना की। इन्होंने 'निरुद्ध की परिभाषा करते हुए कहा कि छेदों के महत्तम समापवर्त्तक और उसका भाग देने पर प्राप्त लब्धियो का गुणनफल 'निरुद्ध' कहलाता है। भिन्नों का समच्छेद करने के लिये नियम इस प्रकार है—निरुद्ध को हर से भाग देकर जो लब्धि प्राप्त हो उससे हर और अश दोनों को गुणा करने से सब भिन्नों का हर एक-सा हो जायगा।

महावीराचार्य ने समीकरण को व्यावहारिक प्रश्नों द्वारा समझाया है। इन प्रश्नों को दो भागों मे विभाजित किया है : एक तो वे प्रश्न जिनमे अज्ञात

---

१ देखिए, डा० विभूतिभूषण—मैथेमैटिकल सोसायटी बुलेटिन न० २० मे 'ऑन महावीर्स सोल्युशन ऑफ ट्रायेंगल्स एण्ड क्वाड्रीलेटरल' शीर्षक लेख।

राशि के वर्गमूल का कथन होता है और दूसरे वे जिनमे अज्ञात राशि के वर्ग का निर्देश रहता है।

'गणितसारसग्रह' मे चौबीस अक तक की सख्याओं का निर्देश किया गया है, जिनके नाम इस प्रकार है: १ एक, २ दश, ३ शत, ४. सहस्र, ५. दश-सहस्र, ६. लक्ष, ७. दशलक्ष, ८. कोटि, ९. दशकोटि, १०. शतकोटि, ११ अर्बुद, १२ न्यर्बुद, १३ खर्व, १४. महाखर्व, १५ पद्म, १६ महापद्म, १७. क्षोणी, १८. महाक्षोणी, १९. शख, २०. महाशख, २१. क्षिति, २२. महा-क्षिति, २३ क्षोभ, २४. महाक्षोभ।

अको के लिये शब्दो का भी प्रयोग किया गया है, जैसे—३ के लिये रत्न, ६ के लिये द्रव्य, ७ के लिये तत्त्व, पन्नग और भय, ८ के लिये कर्म, तनु, मद और ९ के लिये पदार्थ इत्यादि। महावीराचार्य ब्रह्मगुप्तकृत 'ब्राह्मस्फुटसिद्धात' ग्रथ से परिचित थे। श्रीधर की 'त्रिशतिका' का भी इन्होंने उपयोग किया था ऐसा मालूम होता है। ये राष्ट्रकूट वश के शासक अमोघवर्ष नृपतुग (सन् ८१४ से ८७८) के समकालीन थे। इन्होने 'गणितसारसग्रह' की उत्थानिका मे उनकी खूब प्रशसा की है।

इस कृति मे जिनेश्वर की पूजा, फलपूजा, दीपपूजा, गधपूजा, धूपपूजा इत्यादिविषयक उदाहरणो और बारह प्रकार के तप तथा बारह अगों—द्वाद-शागी का उल्लेख होने से महावीराचार्य निःसन्देह जैनाचार्य थे ऐसा निर्णय होता है।[1]

गणितसारसंग्रह-टीका :

दक्षिण भारत मे महावीराचार्यरचित 'गणितसार सग्रह' सर्वमान्य ग्रथ रहा है। इस ग्रथ पर वरदराज और अन्य किसी विद्वान् ने सस्कृत मे टीकाएँ लिखी हैं। ११ वीं शताब्दी मे पावुलूरिमल्ल ने इसका तेलुगु भाषा मे अनुवाद किया है। वल्लभ नामक विद्वान् ने कन्नड़ मे तथा अन्य किसी विद्वान् ने तेलुगु मे व्याख्या की है।

षट्त्रिंशिका :

महावीराचार्य ने 'षट्त्रिंशिका' ग्रथ की भी रचना की है। इसमे उन्होंने बीजगणित की चर्चा की है।

---

१. यह ग्रंथ मद्रास सरकार की अनुमति से प्रो० रगाचार्य ने अंग्रेजी टिप्पणियों के साथ संपादित कर सन् १९१२ में प्रकाशित किया है।

इस ग्रंथ की दो हस्तलिखित प्रतियों के, जिनमें से एक ४५ पत्रों की और दूसरी १८ पत्रों की है, 'राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथसूची' में जयपुर के ठोलियों के मंदिर के भंडार में होने का उल्लेख है।

गणितसारकौमुदी :

जैन गृहस्थ विद्वान् ठक्कर फेरु ने 'गणितसारकौमुदी' नामक ग्रंथ की रचना पद्य में प्राकृत भाषा में की है। इसमें उन्होंने अपने अन्य ग्रंथों की तरह पूर्ववर्ती साहित्यकारों के नामों का उल्लेख नहीं किया है।

ठक्कर फेरु ने अपनी इस रचना में भास्कराचार्य की 'लीलावती' का पर्याप्त सहारा लिया है। दोनों ग्रंथों में साम्य भी बहुत अंशों में देखा जाता है। जैसे—परिभाषा, श्रेढीव्यवहार, क्षेत्रव्यवहार, मिश्रव्यवहार, खातव्यवहार, चितिव्यवहार, राशिव्यवहार, छायाव्यवहार—यह विषयविभाग जैसा 'लीलावती' में है वैसा ही इसमें भी है। स्पष्ट है कि ठक्कर फेरु ने अपने 'गणितसारकौमुदी' ग्रन्थ की रचना में 'लीलावती' को ही आदर्श रखा है। कहीं-कहीं तो 'लीलावती' के पद्यों को ही अनूदित कर दिया है।

जिन विषयों का उल्लेख 'लीलावती' में नहीं है ऐसे देशाधिकार, वस्त्राधिकार, तात्कालिक भूमिकर, धान्योत्पत्ति आदि इतिहास और विज्ञान की दृष्टि से अति मूल्यवान् प्रकरण इसमें हैं। इनसे ठक्कर फेरु की मौलिक विचारधारा का परिचय भी प्राप्त होता है। ये प्रकरण छोटे होते हुए भी अति महत्त्व के हैं। इन विषयों पर उस समय के किसी अन्य विद्वान् ने प्रकाश नहीं डाला। अलाउद्दीन और कुतुबुद्दीन बादशाहों के समय की सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति का ज्ञान इन्हीं के सूक्ष्मतम अध्ययन पर निर्भर है।

इस ग्रंथ के क्षेत्रव्यवहार-प्रकरण में नामों को स्पष्ट करने के लिये यंत्र दिये गये हैं। अन्य विषयों को भी सुगम बनाने के लिये अनेक यंत्रों का आलेखन किया गया है। ठक्कर फेरु के यंत्र कहीं-कहीं 'लीलावती' के यंत्रों से मेल नहीं खाते।

ठक्कर फेरु ने अपनी ग्रंथ-रचना में महावीराचार्य के 'गणितसारसंग्रह' का भी उपयोग किया है।

'गणितसारकौमुदी' में लोकभाषा के शब्दों का भी बहुतायत से प्रयोग किया गया है, जो भाषाविज्ञान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

इसमे यन्त्र-प्रकरण मे अकसूचक शब्दो का प्रयोग किया गया है।

ठक्कर फेरु ठक्कर चन्द्र के पुत्र थे। ये देहली मे टकशाला के अध्यक्ष पद पर नियुक्त थे। इन्होने यह ग्रन्थ वि० स० १३७२ से १३८० के बीच मे रचा होगा। यह ग्रन्थ अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

ठक्कर फेरु ने अन्य कई ग्रन्थो की रचना की है जो इस प्रकार है.

१. वास्तुसार, २. ज्योतिस्सार, ३. रत्नपरीक्षा, ४. द्रव्यपरीक्षा (मुद्राशास्त्र), ५. भूगर्भप्रकाश, ६. धातूत्पत्ति, ७. युगप्रधान चौपाई।

पाटीगणित :

'पाटीगणित' के कर्ता पल्लीवाल अनन्तपाल जैन गृहस्थ थे। इन्होने 'नेमिचरित' नामक महाकाव्य की रचना की है। अनन्तपाल के भाई धनपाल ने वि० स० १२६१ मे 'तिलकमञ्जरीकथासार' रचा था।

इस 'पाटीगणित' मे अकगणितविषयक चर्चा की होगी, ऐसा अनुमान है।

गणितसंग्रह :

'गणितसग्रह' नामक ग्रन्थ के रचयिता यल्लाचार्य थे। ये जैन थे। यल्लाचार्य प्राचीन लेखक हैं, परन्तु ये कब हुए यह कहना मुश्किल है।

सिद्ध-भू-पद्धति :

'सिद्ध-भू-पद्धति' किसने कब रचा, यह निश्चित नहीं है। इसके टीकाकार वीरसेन ९ वीं शताब्दी मे विद्यमान थे। इससे सिद्ध-भू पद्धति उनसे पहले रची गई थी यह निश्चित है।

'उत्तरपुराण' की प्रशस्ति मे गुणभद्र ने अपने दादागुरु वीरसेनाचार्य के विषय मे उल्लेख किया है कि 'सिद्ध-भू-पद्धति' का प्रत्येक पद विषम था। इस पर वीरसेनाचार्य के टीका-निर्माण करने से यह मुनियों को समझने मे सुगम हो गया।

इसमें क्षेत्रगणित का विषय होगा, ऐसा अनुमान है।

सिद्ध-भू-पद्धति-टीका :

'सिद्ध-भू-पद्धति-टीका' के कर्ता वीरसेनाचार्य है। ये आर्यनन्दि के शिष्य, जिनसेनाचार्य प्रथम के गुरु तथा 'उत्तरपुराण' के रचयिता गुणभद्राचार्य के प्रगुरु थे। इनका जन्म शक स० ६६० (वि० स० ७९५) और स्वर्गवास शक स० ७४५ (वि० स० ८८०) में हुआ।

लगभग वि० स० १३३० मे टीका की रचना की है।[१] इसमे इन्होंने 'लीला-वती' और 'त्रिशतिका' का उपयोग किया है।

सिंहतिलकसूरि के उपलब्ध ग्रन्थ इस प्रकार है :

१ मंत्रराजरहस्य (सूरिमन्त्रसबधी), २ वर्धमानविद्याकल्प, ३. भुवनदीपकवृत्ति (ज्योतिष्), ४. परमेष्ठिविद्यायन्त्रस्तोत्र, ५. लघुनमस्कारचक्र, ६. ऋषिमण्डलयन्त्रस्तोत्र।

---

१. यह टीका प्रो० हीरालाल र० कापडिया द्वारा सम्पादित होकर गायकवाड ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा से सन् १९३७ मे प्रकाशित हुई है।

नवां प्रकरण

ज्योतिष

ज्योतिष-विषयक जैन आगम ग्रन्थों में निम्नलिखित अगबाह्य सूत्रों का समावेश होता है :

१. सूर्यप्रज्ञप्ति,[1] २. चन्द्रप्रज्ञप्ति,[2] ३. ज्योतिष्करण्डक,[3] ४. गणिविद्या।[4]

ज्योतिस्सार :

ठक्कर फेरु ने 'ज्योतिस्सार' नामक ग्रंथ[5] की प्राकृत में रचना की है। उन्होंने इस ग्रंथ में लिखा है कि हरिभद्र, नरचंद्र, पद्मप्रभसूरि, जउण, वराह, लल्ल, पराशर, गर्ग आदि ग्रंथकारों के ग्रंथों का अवलोकन करके इसकी रचना (वि. सं. १३७२-७५ के आसपास) की है।

चार द्वारों में विभक्त इस ग्रंथ में कुल मिलाकर २३८ गाथाएँ हैं। दिनशुद्धि नामक द्वार में ४२ गाथाएँ हैं, जिनमें वार, तिथि और नक्षत्रों में सिद्धियोग का प्रतिपादन है। व्यवहारद्वार में ६० गाथाएँ है, जिनमें ग्रहों की राशि, स्थिति, उदय, अस्त और वक्र दिन की संख्या का वर्णन है। गणितद्वार में ३८ गाथाएँ हैं और लग्नद्वार में ९८ गाथाएँ हैं। इनके अन्य ग्रंथों के बारे मे अन्यत्र लिखा गया है।

---

१. सूर्यप्रज्ञप्ति के परिचय के लिए देखिए—इसी इतिहास का भाग २, पृ० १०५-११०.

२. चन्द्रप्रज्ञप्ति के परिचय के लिए देखिए—वही, पृ. ११०

३. ज्योतिष्करण्डक के परिचय के लिए देखिए—भाग ३, पृ. ४१३-४२७. इस प्रकीर्णक के प्रणेता संभवतः पादलिप्ताचार्य हैं।

४. गणिविद्या के परिचय के लिए देखिए—भाग २, पृ. ३५९
इन सब ग्रंथो की व्याख्याओं के लिए इसी इतिहास का तृतीय भाग देखना चाहिए।

५. यह 'रत्नपरीक्षादिसप्तग्रन्थसंग्रह' में राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित है।

विवाहपडल (विवाहपटल) :

'विवाहपडल' के कर्ता-अज्ञात है। यह प्राकृत मे रचित एक ज्योतिष-विषयक ग्रथ है, जो विवाह के समय काम मे आता है। इसका उल्लेख 'निशीथविशेष-चूर्णि' मे मिलता है।

लग्गसुद्धि (लग्नशुद्धि) :

'लग्गसुद्धि' नामक ग्रथ के कर्ता याकिनी-महत्तरासूनु हरिभद्रसूरि माने जाते है। परन्तु यह सदिग्ध मालूम होता है। यह 'लग्नकुण्डलिका' नाम से प्रसिद्ध है। प्राकृत की कुल १३३ गाथाओ मे गोचरशुद्धि, प्रतिद्वारदशक, मास वार-तिथि-नक्षत्र-योगशुद्धि, सुगणदिन, रजछन्नद्वार, सक्राति, कर्कयोग, वार-नक्षत्र-अशुभयोग, सुगणार्कद्वार, होरा, नवाश, द्वादशाश, षड्वर्गशुद्धि, उदयास्तशुद्धि इत्यादि विषयो पर चर्चा की गई है।[1]

दिणसुद्धि (दिनशुद्धि) :

पन्द्रहवीं शती मे विद्यमान रत्नशेखरसूरि ने 'दिनशुद्धि' नामक ग्रथ की प्राकृत मे रचना की है। इसमे १४४ गाथाएँ हैं, जिनमे रवि, सोम, मगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि का वर्णन करते हुए तिथि, लग्न, प्रहर, दिशा और नक्षत्र की शुद्धि बताई गई है।[2]

कालसंहिता :

'कालसहिता' नामक कृति आचार्य कालक ने रची थी, ऐसा उल्लेख मिलता है। वराहमिहिरकृत 'बृहज्जातक' (१६. १) की उत्पलकृत टीका मे बकालकाचार्यकृत 'बकालकसहिता' से दो प्राकृत पद्य उद्धृत किये गये है। 'बकालकसहिता' नाम अशुद्ध प्रतीत होता है। यह 'कालकसहिता' होनी चाहिए, ऐसा अनुमान होता है। यह ग्रथ अनुपलब्ध है।

कालकसूरि ने किसी निमित्तग्रथ का निर्माण किया था, यह निम्न उल्लेख से ज्ञात होता है :

---

१ यह ग्रन्थ उपाध्याय क्षमाविजयजी द्वारा संपादित होकर शाह मूलचद बुलाखीदास की ओर से सन् १९३८ मे बम्बई से प्रकाशित हुआ है।

२ यह ग्रथ उपाध्याय क्षमाविजयजी द्वारा संपादित होकर शाह मूलचद बुलाखीदास, बम्बई की ओर से सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ है।

पढमणुओगे कासी जिणचक्किदसारचरियपुव्वभवे।
कालगसूरी बहुयं लोगाणुओगे निमित्तं च ॥

गणहरहोरा (गणधरहोरा) :

'गणहरहोरा' नामक यह कृति किसी अज्ञात नामा विद्वान् ने रची है। इसमे २९ गाथाएँ हैं। मगलाचरण मे 'नमिऊण इंदभूइं' उल्लेख होने से यह किसी जैनाचार्य की रचना प्रतीत होती है। इसमे ज्योतिष-विषयक होरासबधी विचार है। इसकी ३ पत्रो की एक प्रति पाटन के जैन भडार मे है।

प्रश्नपद्धति :

'प्रश्नपद्धति' नामक ज्योतिषविषयक ग्रथ की हरिश्चन्द्रगणि ने सस्कृत मे रचना की है। कर्ता ने निर्देश किया है कि गीतार्थचूडामणि आचार्य अभयदेवसूरि के मुख से प्रश्नों का अवधारण कर उन्हीं की कृपा से इस ग्रथ की रचना की है। यह ग्रन्थ कर्ता ने अपने ही हाथ से पाटन के अन्नपाटक मे चातुर्मास की अवस्थिति के समय लिखा है।

जोइसदार (ज्योतिर्द्वार) :

'जोइसदार' नामक प्राकृत भाषा की २ पत्रो की कृति पाटन के जैन भडार मे है। इसके कर्ता का नाम अज्ञात है। इसमे राशि और नक्षत्रो से शुभाशुभ फलो का वर्णन किया गया है।

जोइसचक्कवियार (ज्योतिष्चक्रविचार) :

जैन ग्रन्थावली (पृ० ३४७) में 'जोइसचक्कवियार' नामक प्राकृत भाषा की कृति का उल्लेख है। इस ग्रन्थ का परिमाण १५५ ग्रन्थाग्र है। इसके कर्ता का नाम विनयकुशल मुनि निर्दिष्ट है।

भुवनदीपक :

'भुवनदीपक' का दूसरा नाम 'ग्रहभावप्रकाश' है।[1] इसके कर्ता आचार्य पद्मप्रभसूरि[2] हैं। ये नागपुरीय तपागच्छ के सस्थापक है। इन्होने वि० स० १२२१ मे 'भुवनदीपक' की रचना की।

---

१ ग्रहभावप्रकाशाख्यं शास्त्रमेतत् प्रकाशितम्।
जगद्भावप्रकाशाय श्रीपद्मप्रभसूरिभि. ॥

२ आचार्य पद्मप्रभसूरि ने 'मुनिसुव्रतचरित' की रचना की है, जिसकी वि० स० १३०४ में लिखी गई प्रति जैसलमेर-भंडार में विद्यमान है।

यह ग्रथ छोटा होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है। इसमे ३६ द्वार (प्रकरण) है : १. ग्रहों के अधिप, २. ग्रहो की उच्च-नीच स्थिति, ३. परस्परमित्रता, ४. राहुविचार, ५. केतुविचार, ६. ग्रहचक्रो का स्वरूप, ७. बारह भाव, ८. अभीष्ट कालनिर्णय, ९. लग्नविचार, १०. विनष्ट ग्रह, ११. चार प्रकार के राजयोग, १२. लाभविचार, १३. लाभफल, १४. गर्भ की क्षेमकुशलता, १५. स्त्रीगर्भ-प्रसूति, १६. दो सतानों का योग, १७. गर्भ के महीने, १८. भार्या, १९. विषकन्या, २०. भावों के ग्रह, २१. विवाहविचारणा, २२. विवाद, २३. मिश्रपद-निर्णय, २४. पृच्छा-निर्णय, २५. प्रवासी का गमनागमन, २६. मृत्युयोग, २७. दुर्गभग, २८. चौर्य-स्थान, २९. अर्घज्ञान, ३०. मरण, ३१. लाभोदय, ३२. लग्न का मासफल, ३३. द्रेकाणफल, ३४. दोषज्ञान, ३५. राजाओं की दिनचर्या, ३६. इस गर्भ मे क्या होगा ? इस प्रकार कुल १७० श्लोको मे ज्योतिषविषयक अनेक विषयो पर विचार किया गया है।

१. भुवनदीपक-वृत्ति :

'भुवनदीपक' पर आचार्य सिंहतिलकसूरि ने वि० सं० १३२६ मे १७०० श्लोक-प्रमाण वृत्ति की रचना की है। सिंहतिलकसूरि ज्योतिष् शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान् थे। इन्होंने श्रीपति के 'गणिततिलक' पर भी एक महत्त्वपूर्ण टीका लिखी है।

सिंहतिलकसूरि विबुधचन्द्रसूरि के शिष्य थे। इन्होने वर्धमानविद्याकल्प, मत्रराजरहस्य आदि ग्रथों की रचना की है।

२. भुवनदीपक-वृत्ति :

मुनि हेमतिलक ने 'भुवनदीपक' पर एक वृत्ति रची है। *समय अज्ञात है।*

३. भुवनदीपक-वृत्ति :

दैवज्ञ शिरोमणि ने 'भुवनदीपक' पर एक विवरणात्मक वृत्ति की रचना की है। समय ज्ञात नहीं है। ये टीकाकार जैनेतर है।

४. भुवनदीपक-वृत्ति :

किसी अज्ञात नामा जैन मुनि ने 'भुवनदीपक' पर एक वृत्ति रची है। *समय भी अज्ञात है।*

ऋषिपुत्र की कृति :

गर्गाचार्य के पुत्र और शिष्य ने निमित्तशास्त्रसबधी किसी ग्रथ का निर्माण किया है। ग्रथ प्राप्य नहीं है। कई विद्वानो के मत से उनका समय देवल के

बाद और वराहमिहिर के पहले कहीं है। भट्टोत्पली टीका मे ऋषिपुत्र के सबध मे उल्लेख है। इससे वे शक स० ८८८ (वि० स० १०२३) के पूर्व हुए यह निर्विवाद है।

आरम्भसिद्धि :

नागेन्द्रगच्छीय आचार्य विजयसेनसूरि के शिष्य उदयप्रभसूरि ने 'आरम्भ-सिद्धि' (पचविमर्श) ग्रथ की रचना (वि० स० १२८०) सस्कृत मे ४१३ पद्यो मे की है।[1]

इस ग्रथ में पाच विमर्श हैं और ११ द्वारो मे इस प्रकार विषय है : १. तिथि, २ वार, ३. नक्षत्र, ४. सिद्धि आदि योग, ५. राशि, ६. गोचर, ७ (विद्यारभ आदि) कार्य, ८. गमन—यात्रा, ९ (गृह आदि का) वास्तु, १० विलग्न और ११. मिश्र।

इसमे प्रत्येक कार्य के शुभ-अशुभ मुहूर्तों का वर्णन है। मुहूर्त के लिये 'मुहूर्तचिंतामणि' ग्रंथ के समान ही यह ग्रथ उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है। ग्रथ का अध्ययन करने पर कर्ता की गणित-विषयक योग्यता का भी पता लगता है।

इस ग्रथ के कर्ता आचार्य उदयप्रभसूरि मल्लिषेणसूरि और जिनभद्रसूरि के गुरु थे। उदयप्रभसूरि ने धर्माभ्युदयमहाकाव्य, नेमिनाथचरित्र, सुकृत-कीर्तिकल्लोलिनीकाव्य एव वि० स० १२९९ मे 'उवएसमाला' पर 'कर्णिका' नाम से टीकाग्रथ की रचना की है। 'छासीइ' और 'कम्मत्थय' पर टिप्पण आदि ग्रथ रचे हैं। गिरनार के वि० स० १२८८ के शिलालेखो मे से एक शिलालेख की रचना इन्होंने की है।

आरम्भसिद्धि-वृत्ति :

आचार्य रत्नशेखरसूरि के शिष्य हेमहसगणि ने वि० स० १५१४ मे 'आरम्भ-सिद्धि' पर 'सुधीश्रृङ्गार' नाम से वार्तिक रचा है। टीकाकार ने मुहूर्त-सबधी साहित्य का सुन्दर सकलन किया है। टीका में बीच-बीच मे ग्रहगणित-विषयक प्राकृत गाथाएँ उद्धृत की हैं जिससे मालूम पड़ता है कि प्राकृत मे ग्रहगणित का कोई ग्रथ था। उसके नाम का कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

---

१. यह हेमहसकृत वृत्तिसहित जैन शासन प्रेस, भावनगर से प्रकाशित है।

मण्डलप्रकरण :

आचार्य विजयसेनसूरि के शिष्य मुनि विनयकुशल ने प्राकृत भाषा मे ९९ गाथाओ मे 'मण्डलप्रकरण' नामक ग्रन्थ की रचना वि० स० १६५२ मे की है।

ग्रन्थकार ने स्वय निर्देश किया है कि आचार्य मुनिचन्द्रसूरि ने 'मण्डल कुलक' रचा है, उसको आधारभूत मानकर 'जीवाजीवाभिगम' की कई गाथाएँ लेकर इस प्रकरण की रचना की गई है। यह कोई नवीन रचना नहीं है।

ज्योतिष के खगोल-विषयक विचार इसमे प्रदर्शित किये गए हैं। यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं है।

मण्डलप्रकरण-टीका :

'मण्डलप्रकरण' पर मूल प्राकृत ग्रन्थ के रचयिता विनयकुशल ने ही स्वोपज्ञ टीका करीब वि. सं. १६५२ में लिखी है, जो १२३१ ग्रन्थाग्र-प्रमाण है। यह टीका छपी नहीं है।[1]

भद्रबाहुसंहिता :

आज जो सस्कृत में 'भद्रबाहुसहिता' नाम का ग्रन्थ मिलता है वह तो आचार्य भद्रबाहु द्वारा प्राकृत में रचित ग्रन्थ के उद्धार के रूप मे है, ऐसा विद्वानो का मन्तव्य है। वस्तुतः भद्रबाहुरचित ग्रन्थ प्राकृत मे था जिसका उद्धरण उपाध्याय मेघविजयजी द्वारा रचित 'वर्ष-प्रबोध' ग्रथ (पृ० ४२६-२७) मे मिलता है। यह ग्रथ प्राप्त न होने से इसके विषय मे कुछ नहीं कहा जा सकता।

इस नाम का जो ग्रन्थ सस्कृत मे रचा हुआ प्रकाश मे आया है[2] उसमे २७ प्रकरण इस प्रकार हैं : १. ग्रंथागमसचय, २-३ उल्कालक्षण, ४. परिवेष-वर्णन, ५. विद्युल्लक्षण, ६. अभ्रलक्षण, ७. सध्यालक्षण, ८. मेघकाड, ९ वात-लक्षण, १०. सकलमारसमुच्चयवर्षण, ११. गन्धर्वनगर, १२. गर्भवातलक्षण, १३. राजयात्राध्याय, १४. सकलशुभाशुभव्याख्यानविधानकथन, १५. भग-वत्त्रिलोकपतिदैत्यगुरु, १६. शनैश्चरचार, १७ बृहस्पतिचार, १८. बुधचार, १९. अगारकचार, २०-२१. राहुचार, २२. आदित्यचार, २३. चन्द्रचार, २४. ग्रहयुद्ध, २५. सग्रहयोगार्घकाण्ड, २६. स्वप्नाध्याय, २७. वस्त्रव्यवहारनिमित्तक, परिशिष्टाध्याय—वस्त्रविच्छेदनाध्याय।

---

१ इसकी प्रति ला० द० भा० सस्कृति विद्यामदिर, अहमदाबाद में है।

२. हिन्दीभाषानुवादसहित—भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् १९५९

कई विद्वान् इस ग्रथ को भद्रबाहु का नहीं अपितु उनके नाम से अन्य द्वारा रचित मानते है। मुनि श्री जिनविजयजी इसे बारहवीं तेरहवीं शताब्दी की रचना मानते है, जबकि प० श्री कल्याणविजयजी इस ग्रथ को पद्रहवीं शताब्दी के बाद का मानते है। इस मान्यता का कारण बताते हुए वे कहते है कि इसकी भाषा बिल्कुल सरल और हल्की कोटि की सस्कृत है। रचना मे अनेक प्रकार की विषय सबधी तथा छन्दोविषयक अशुद्धिया है। इसका निर्माता प्रथम श्रेणी का विद्वान् नहीं था। 'सोरठ' जैसे शब्द प्रयोगो से भी इसका लेखक पन्द्रहवीं-सोलहवीं शती का ज्ञात होता है। इसके सपादक प० नेमिचन्द्रजी इसे अनुमानतः अष्टम शताब्दी की कृति बताते है। उनका यह अनुमान निराधार है।

प० जुगलकिशोरजी मुख्तार ने इसे सत्रहवीं शती के एक भट्टारक के समय की कृति बताया है, जो ठीक मालूम होता है।'[1]

ज्योतिस्सार :

आचार्य नरचन्द्रसूरि ने 'ज्योतिस्सार' (नारचन्द्र-ज्योतिष्) नामक ग्रथ की रचना वि० स० १२८० मे २५७ पद्यो मे की है। ये मलधारी गच्छ के आचार्य देवप्रभसूरि के शिष्य थे।

इस ग्रन्थ मे कर्ता ने निम्नोक्त ४८ विषयों पर प्रकाश डाला है : १. तिथि, २. वार, ३. नक्षत्र, ४ योग, ५. राशि, ६ चन्द्र, ७. तारकाबल, ८ भद्रा, ९. कुलिक, १०. उपकुलिक, ११. कण्टक, १२ अर्धप्रहर, १३. कालवेला, १४. स्थविर, १५-१६. शुभ-अशुभ, १७-१९. रव्युपकुमार, २०. राजादियोग, २१. गण्डान्त, २२. पञ्चक, २३. चन्द्रावस्था, २४. त्रिपुष्कर, २५. यमल, २६. करण, २७. प्रस्थानक्रम, २८. दिशा, २९. नक्षत्रशूल, ३०. कील, ३१. योगिनी, ३२. राहु, ३३. हस, ३४. रवि, ३५. पाश, ३६. काल, ३७. वत्स, ३८. शुक्रगति, ३९. गमन, ४०. स्थाननाम, ४१. विद्या, ४२. क्षौर, ४३. अम्बर, ४४. पात्र, ४५. नष्ट, ४६. रोगविगम, ४७. पैत्रिक, ४८. गेहारम्भ।[2]

नरचन्द्रसूरि ने चतुर्विंशतिजिनस्तोत्र, प्राकृतदीपिका, अनर्घराघव-टिप्पण, न्यायकन्दली-टिप्पण और वस्तुपाल-प्रशस्तिरूप (वि० स० १२८८ का गिरनार के जिनालय का) शिलालेख आदि रचे है। इन्होंने अपने गुरु आचार्य देवप्रभसूरि-रचित

---

१. देखिए—'निबन्धनिचय' पृ० २९७.

२. यह कृति प० क्षमाविजयजी द्वारा सपादित होकर सन् १९३८ में प्रकाशित हुई है।

पाण्डवचरित्र और आचार्य उदयप्रभसूरि-रचित 'धर्माभ्युदयकाव्य' का सशोधन किया था।

आचार्य नरचन्द्रसूरि के आदेश से मुनि गुणवल्लभ ने वि० स० १२७१ मे 'व्याकरणचतुष्कावचूरि' की रचना की।

ज्योतिस्सार-टिप्पण :

आचार्य नरचद्रसूरि-रचित 'ज्योतिस्सार' ग्रन्थ पर सागरचन्द्र मुनि ने १३३५ श्लोक-प्रमाण टिप्पण की रचना की है। खास कर 'ज्योतिस्सार' मे दिये हुए यन्त्रों का उद्धार और उस पर विवेचन किया है। मगलाचरण मे कहा गया है :

सरस्वती नमस्कृत्य यन्त्रकोद्धारटिप्पणम्।
करिष्ये नारचन्द्रस्य मुग्धानां बोधहेतवे॥

यह टिप्पण अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

जन्मसमुद्र :

'जन्मसमुद्र' ग्रथ के कर्ता नरचन्द्र उपाध्याय हैं, जो कासहृद्गच्छ के उद्द्योतनसूरि के शिष्य सिंहसूरि के शिष्य थे। उन्होने वि. स. १३२३ मे इस ग्रथ की रचना की। आचार्य देवानन्दसूरि को अपने विद्यागुरु के रूप मे स्वीकार करते हुए निम्न शब्दों मे कृतज्ञताभाव प्रदर्शित किया है :

देवानन्दमुनीश्वरपदपङ्कजसेवकषट्चरणः।
ज्योतिःशास्त्रमकार्षीद् नरचन्द्राख्यो मुनिप्रवरः॥

यह ज्योतिष-विषयक उपयोगी लाक्षणिक ग्रन्थ है जो निम्नोक्त आठ कल्लोलों मे विभक्त है : १. गर्भसभवादिलक्षण (पद्य ३१), २. जन्मप्रत्ययलक्षण (पद्य २९), ३ रिष्टयोग-तद्भगलक्षण (पद्य १०), ४. निर्वाणलक्षण (पद्य २०), ५. द्रव्योपार्जनराजयोगलक्षण (पद्य २६), ६. बालस्वरूपलक्षण (पद्य २०), ७. स्त्रीजातकस्वरूपलक्षण (पद्य १८), ८. नाभसादियोगदीक्षावस्थायुर्योगलक्षण (पद्य २३)।

इसमें लग्न और चन्द्रमा से समस्त फलो का विचार किया गया है। जातक का यह अत्यत उपयोगी ग्रथ है।[१]

---

१. यह कृति अभी छपी नही है। इसकी ७ पत्रों की हस्तलिखित प्रति ला० द० भा० सं० विद्यामदिर, अहमदाबाद में है। यह प्रति १६ वीं शताब्दी में लिखी गई है।

लग्नविचार :

कासहृद्गच्छीय उपाध्याय नरचन्द्र ने 'लग्नविचार' नामक ग्रन्थ की रचना करीब वि० सं० १३२५ मे की है।

ज्योतिषप्रकाश :

कासहृद्गच्छीय नरचन्द्र मुनि ने 'ज्योतिषप्रकाश' नामक ग्रथ की रचना करीब वि० सं० १३२५ मे की है। फलित ज्योतिष् के मुहूर्त और संहिता का यह सुंदर ग्रथ है। इसके दूसरे विभाग मे जन्मकुण्डली के फलो का अत्यन्त सरलता से विचार किया गया है। फलित ज्योतिष् का आवश्यक ज्ञान इस ग्रथ द्वारा प्राप्त हो सकता है।

चतुर्विशिकोद्धार :

कासहृद्गच्छीय नरचन्द्र उपाध्याय ने 'चतुर्विशिकोद्धार' नामक ज्योतिष-ग्रथ की रचना करीब वि० स० १३२५ मे की है। प्रथम श्लोक मे ही कर्ता ने ग्रथ का उद्देश्य इस प्रकार बताया है :

श्रीवीराय जिनेशाय नत्वाऽतिशयशालिने।
प्रश्नलग्नप्रकारोऽयं संक्षेपात् क्रियते मया॥

इस ग्रन्थ मे प्रश्न-लग्न का प्रकार सक्षेप मे बताया गया है। ग्रन्थ में मात्र १७ श्लोक हैं, जिनमे होराद्यानयन, सर्वलग्नग्रहबल, प्रश्नयोग, पतितादिज्ञान, जयाजयपृच्छा, रोगपृच्छा आदि विषयो की चर्चा है। ग्रन्थ के प्रारंभ में ही ज्योतिष-सबधी महत्त्वपूर्ण गणित बताया है। यह ग्रथ अत्यन्त गूढ और रहस्य पूर्ण है। निम्न श्लोक में कर्ता ने अत्यन्त कुशलता से दिनमान सिद्ध करने की रीति बताई है :

पञ्चवेदयामगुण्ये रविभुक्तदिनान्विते।
त्रिंशद्भुक्ते स्थितं यत् तत् लग्नं सूर्योदयर्क्षतः॥

यह ग्रथ प्रकाशित नहीं हुआ है।[1]

---

1. इसकी १ पत्र की प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्या-मंदिर में है।

चतुर्विंशिकोद्धार-अवचूरि :

'चतुर्विंशिकोद्धार' ग्रन्थ पर नरचन्द्र उपाध्याय ने अवचूरि भी रची है। यह अवचूरि प्रकाशित नहीं हुई है।

ज्योतिस्सारसंग्रह :

नागोरी तपागच्छीय आचार्य चन्द्रकीर्तिसूरि के शिष्य हर्षकीर्तिसूरि ने वि० सं० १६६० में 'ज्योतिस्सारसंग्रह' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसे 'ज्योतिष-सारोद्धार' भी कहते हैं। यह ग्रन्थ तीन प्रकरणों में विभक्त है।[1]

ग्रन्थकार ने भक्तामरस्तोत्र, लघुशान्तिस्तोत्र, अजितशान्तिस्तव, उवसग्गहर-स्तोत्र, नवकारमन्त्र आदि स्तोत्रों पर टीकाएँ लिखी हैं।

१. जन्मपत्रीपद्धति :

नागोरी तपागच्छीय आचार्य हर्षकीर्तिसूरि ने करीब वि० सं० १६६० में 'जन्मपत्रीपद्धति' नामक ग्रन्थ की रचना की है।

सारावली, श्रीपतिपद्धति आदि विख्यात ग्रन्थों के आधार से इस ग्रन्थ की संकलना की गई है। इसमें जन्मपत्री बनाने की रीति, ग्रह, नक्षत्र, वार, दशा आदि के फल बताये गये हैं।[2]

२. जन्मपत्रीपद्धति :

खरतरगच्छीय मुनि कल्याणनिधान के शिष्य लब्धिचन्द्रगणि ने वि० सं० १७५१ में 'जन्मपत्रीपद्धति' नामक एक व्यवहारोपयोगी ज्योतिष-ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ में इष्टकाल, भयात, भभोग, लग्न और नवग्रहों का स्पष्टी-करण आदि गणित विषयक चर्चा के साथ-साथ जन्मपत्री के सामान्य फलों का वर्णन किया गया है। यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

३. जन्मपत्रीपद्धति :

मुनि महिमोदय ने 'जन्मपत्रीपद्धति' नामक ग्रन्थ की रचना वि० सं० १७२१ में की है। ग्रन्थ पद्य में है। इसमें सारणी, ग्रह, नक्षत्र, वार आदि के फल बताये गये हैं।[3]

---

१. अहमदाबाद के डेला भंडार में इसकी हस्तलिखित प्रति है।

२. इस ग्रंथ की ५३ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है।

३. इस ग्रंथ की १० पत्रों की प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर में है।

महिमोदय मुनि ने 'ज्योतिष्-रत्नाकर' आदि ग्रन्थो की रचना भी की है जिनका परिचय आगे दिया गया है।

मानसागरीपद्धति :

'मानसागरी' नाम से अनुमान होता है कि इसके कर्ता मानसागर मुनि होंगे। इस नाम के अनेक मुनि हो चुके हैं इसलिये कौन-से मानसागर ने यह कृति बनाई इसका निर्णय नहीं किया जा सकता।

यह ग्रन्थ पद्यात्मक है। इसमें फलादेश-विषयक वर्णन है। प्रारभ मे आदि-नाथ आदि तीर्थंकरो और नवग्रहो की स्तुति करके जन्मपत्री बनाने की विधि बताई है। आगे सवत्सर के ६० नाम, सवत्सर, युग, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि, वार और जन्मलग्न राशि आदि के फल, करण, दशा, अतरदशा तथा उपदशा के वर्षमान, ग्रहो के भाव, योग, अपयोग आदि विषयो की चर्चा है। प्रसगवश गणनाओ की भिन्न-भिन्न रीतिया बताई है। नवग्रह, गजचक्र, यमदष्ट्राचक्र आदि चक्र और दशाओ के कोष्ठक दिये है।[1]

फलाफलविषयक-प्रश्नपत्र :

'फलाफलविषयक-प्रश्नपत्र' नामक छोटी सी कृति उपाध्याय यशोविजय गणि की रचना हो ऐसा प्रतीत होता है। वि० स० १७३० में इसकी रचना हुई है। इसमे चार चक्र है और प्रत्येक चक्र मे सात कोष्ठक हैं। बीच के चारों कोष्ठको मे "ॐ ह्रीँ श्रीँ अर्हँ नमः" लिखा हुआ है। आसपास के छः-छः कोष्ठको को गिनने से कुल २४ कोष्ठक होते है। इनमें ऋषभदेव से लेकर महावीरस्वामी तक के २४ तीर्थंकरो के नाम अकित हैं। आसपास के २४ कोष्ठकों मे २४ बातो को लेकर प्रश्न किये गए है :

१. कार्य की सिद्धि, २. मेघवृष्टि, ३. देश का सौख्य, ४. स्थानसुख, ५. ग्रामातर, ६. व्यवहार, ७. व्यापार, ८. व्याजदान, ९. भय, १०. चतुष्पाद, ११ सेवा, १२. सेवक, १३ धारणा, १४. बाधारुधा, १५. पुररोध, १६. कन्यादान, १७. वर, १८. जयाजय, १९. मन्त्रौषधि, २०. राज्यप्राप्ति, २१. अर्थचिन्तन, २२ सतान, २३ आगतुक और २४ गतवस्तु।

उपर्युक्त २४ तीर्थंकरो मे से किसी एक पर फलाफलविषयक छः-छः उत्तर हैं। जैसे ऋषभदेव के नाम पर निम्नोक्त उत्तर हैं :

---

१. यह ग्रंथ वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से वि० सं० १९६१ में प्रकाशित हुआ है।

शीघ्र सफला कार्यसिद्धिर्भविष्यति, अस्मिन् व्यवहारे मध्यम फलं दृश्यते, ग्रामान्तरे फल नास्ति, कष्टमस्ति, भव्यं स्थानसौख्य भविष्यति, अल्पा मेघवृष्टि संभाव्यते।

उपर्युक्त २४ प्रश्नो के १४४ उत्तर सस्कृत मे हैं तथा प्रश्न कैसे निकालना, उसका फलाफल कैसे जानना—ये बाते उस समय की गुजराती भाषा मे दी गई हैं।

अत मे 'प० श्रीनयविजयगणिशिष्यगणिजसविजयलिखितम्' ऐसा लिखा है।[1]

उदयदीपिका :

उपाध्याय मेघविजयजी ने वि० स० १७५२ मे 'उदयदीपिका' नामक ग्रथ की रचना मदनसिंह श्रावक के लिये की थी। इसमे ज्योतिष सबधी प्रश्नो और उनके उत्तरो का वर्णन है। यह ग्रथ अप्रकाशित है।

प्रश्नसुन्दरी :

उपाध्याय मेघविजयजी ने वि० स० १७५५ मे 'प्रश्नसुन्दरी' नामक ग्रथ की रचना की है। इसमे प्रश्न निकालने की पद्धति का वर्णन किया गया है। यह ग्रथ अप्रकाशित है।

वर्षप्रबोध :

उपाध्याय मेघविजयजी ने 'वर्षप्रबोध' अपर नाम 'मेघमहोदय' नामक ग्रन्थ की रचना की है। ग्रन्थ सस्कृत भाषा मे है। कई अवतरण प्राकृत ग्रथो के भी हैं। इस ग्रंथ का सबध 'स्थानाग' के साथ बताया गया है। समस्त ग्रन्थ तेरह अधिकारो मे विभक्त है जिनमें निम्नाकित विषयो की चर्चा की गई है :

१ उत्पात, २ कर्पूरचक्र, ३ पद्मिनीचक्र, ४. मण्डलप्रकरण, ५ सूर्य-चन्द्र-ग्रहण के फल तथा प्रतिमास के वायु का विचार, ६. वर्षा बरसाने और बन्द करने के मन्त्र-यन्त्र, ७. साठ सवत्सरो का फल, ८ राशियो पर ग्रहो के उदय और अस्त के वक्री का फल, ९ अयन-मास-पक्ष और दिन का विचार, १० सक्राति-फल, ११. वर्ष के राजा और मन्त्री आदि, १२. वर्षा का गर्भ, १३ विश्वा-आयव्यय-सर्वतोभद्रचक्र और वर्षा बतानेवाले शकुन।

---

१. यह कृति 'जैन सशोधक' त्रैमासिक पत्रिका मे प्रकाशित हो चुकी है।

ग्रन्थ मे रचना-समय का उल्लेख नहीं है परन्तु आचार्य विजयरत्नसूरि के शासनकाल मे इसकी रचना होने से वि० स० १७३२ के पूर्व तो यह नहीं लिखा गया होगा। इसमे अनेक ग्रन्थो और ग्रन्थकारो के उल्लेख तथा अवतरण दिये गये है। कहीं-कहीं गुजराती पद्य भी है।[१]

उस्तरलावयंत्र :

मुनि मेघरत्न ने 'उस्तरलावयन्त्र' की रचना वि० स० १५५० के आस-पास मे की है। ये वडगच्छीय विनयसुन्दर मुनि के शिष्य थे।

यह कृति ३८ श्लोकों मे है। अक्षाश और रेखाश का ज्ञान प्राप्त करने के लिये इस यन्त्र का उपयोग होता है तथा नताश और उन्नताश का वेध करने मे इसकी सहायता ली जाती है। इससे काल का परिज्ञान भी होता है। यह कृति खगोलशास्त्रियो के लिये उपयोगी विशिष्ट यन्त्र पर प्रकाश डालती है।[२]

उस्तरलावयन्त्र-टीका :

इस लघु कृति पर सस्कृत मे टीका है। शायद मुनि मेघरत्न ने ही स्वोपज्ञ टीका लिखी हो।

दोषरत्नावली :

जयरत्नगणि ने ज्योतिषविषयक प्रश्नलग्न पर 'दोषरत्नावली' नामक ग्रन्थ की रचना की है। जयरत्नगणि पूर्णिमापक्ष के आचार्य भावरत्न के शिष्य थे।

---

१. यह ग्रन्थ पं० भगवानदास जैन, जयपुर, द्वारा 'मेघमहोदय-वर्षप्रबोध' नाम से हिन्दी अनुवादसहित सन् १९१६ में प्रकाशित किया गया था। श्री पोपटलाल साकरचन्द, भावनगर, ने यह ग्रन्थ गुजराती अनुवादसहित छपवाया है। उन्हीं ने इसकी दूसरी आवृत्ति भी छपवाई है।

२. इसका परिचय Encyclopaedia Britanica, Vol. II, pp. 574-575 में दिया है। इसकी हस्तलिखित प्रति बीकानेर के अनूप सस्कृत पुस्तकालय में है, जो वि० सं० १६०० में लिखी गई है। यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है परंतु इसका परिचय श्री अगरचन्दजी नाहटा ने 'उस्तरलाव यन्त्रसम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण जैन ग्रन्थ' शीर्षक से 'जैन सत्य-प्रकाश' में छपवाया है।

१. श्रीमद्गुर्जरदेशभूषणमणिस्त्र्यंबावतीनामके,
श्रीपूर्णे नगरे बभूव सुगुरु श्रीभावरत्नाभिधः ।
तच्छिष्यो जयरत्न इत्यभिधया च पूर्णिमागच्छवो-
स्तेनेयं क्रियते जनोपकृतये श्रीज्ञानरत्नावली ॥
इति प्रश्नलग्नोपरि ज्ञानरत्नावली सम्पूर्णा—पिटर्सन : अलवर महाराजा लायब्रेरी केटलॉग ।

२ अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर में वि० सं० १८४७ में लिखी गई इसकी १२ पत्रों की प्रति है ।

३. पुराविद्भिर्यदुक्तानि पद्यान्यादाय शोभनम् ।
संमील्य सोमयोग्यानि लेखयि(ति)ष्यामि शिशोः मुदे ॥

४ इसकी ५ पत्रों की हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर में है ।

होरा नाम महाविद्या वक्तव्यं च भवद्धितम् ।
ज्योतिर्ज्ञानकरं सारं भूषणं बुधपोषणम् ॥

'होरा' के कई अर्थ होते है :

१ होरा याने ढाई घटी अर्थात् एक घण्टा ।

२. एक राशि या लग्न का अर्धभाग ।

३. जन्मकुण्डली ।

४. जन्मकुण्डली के अनुसार भविष्य कहने की विद्या अर्थात् जन्मकुण्डली का फल बतानेवाला शास्त्र । यह शास्त्र लग्न के आधार पर शुभ-अशुभ फलो का निर्देश करता है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ मे हेमप्रकरण, दाम्यप्रकरण, शिलाप्रकरण, मृत्तिकाप्रकरण, वृक्षप्रकरण, कर्पास-गुल्म-वल्कल-तृण-रोम-चर्म पटप्रकरण, सख्याप्रकरण, नष्टद्रव्य-प्रकरण, निर्वाहप्रकरण, अपत्यप्रकरण, लाभालाभप्रकरण, स्वरप्रकरण, स्वप्नप्रकरण, वास्तुविद्याप्रकरण, भोजनप्रकरण, देहलोहदीक्षाप्रकरण, अजनविद्याप्रकरण, विष-विद्याप्रकरण आदि अनेक प्रकरण है । ये प्रकरण कल्याणवर्मा की 'सारावली' से मिलते-जुलते है । दक्षिण मे रचना होने से कर्णाटक प्रदेश के ज्योतिष का इसपर काफी प्रभाव है । बीच बीच मे विषय स्पष्ट करने के लिये कन्नड़ भाषा का भी उपयोग किया गया है । चन्द्रसेन मुनि ने अपना परिचय देते हुए इस प्रकार कहा है :

आगमः सद्दशो जैनः चन्द्रसेनसमो मुनिः ।
केवली सद्दशी विद्या दुर्लभा सचराचरे ॥

यह ग्रथ प्रकाशित नहीं हुआ है ।

यन्त्रराज :

आचार्य मदनसूरि के शिष्य महेन्द्रसूरि ने ग्रहगणित के लिये उपयोगी 'यन्त्रराज' नामक ग्रथ की रचना शक स० १२९२ (वि० स० १४२७) मे की है । ये बादशाह फिरोजशाह तुगलक के प्रधान सभापडित थे ।

इस ग्रन्थ की उपयोगिता बताते हुए स्वय ग्रन्थकार ने कहा है :

यथा भटः प्रौढरणोत्कटोऽपि शस्त्रैर्विमुक्तः परिभूतिमेति ।
तद्वन्महाज्योतिषनिस्तुषोऽपि यन्त्रेण हीनो गणकस्तथैव ॥

यह ग्रन्थ पाँच अध्यायों में विभक्त है : १. गणिताध्याय, २. यन्त्रघटनाध्याय, ३. यन्त्ररचनाध्याय, ४. यन्त्रशोधनाध्याय और ५ यन्त्रविचारणाध्याय। इसमें कुल मिलाकर १८२ पद्य हैं।

इस ग्रन्थ की अनेक विशेषताएँ हैं। इसमें नाडीवृत्त के धरातल में गोलपृष्ठस्थ सभी वृत्तों का परिणमन बताया गया है। क्रमोत्क्रमज्यानयन, भुजकोटिज्या का चापसाधन, क्रान्तिसाधन, द्युज्याखंडसाधन, द्युज्याफलानयन, सौम्य यन्त्र के विभिन्न गणित के साधन, अक्षांश से उन्नतांश साधन, ग्रन्थ के नक्षत्र, ध्रुव आदि से अभीष्ट वर्षों के ध्रुवादि साधन, नक्षत्रों का दृक्कर्मसाधन, द्वादश राशियों के विभिन्न वृत्तसम्बन्धी गणित के साधन, इष्ट शंकु से छायाकरणसाधन, यन्त्रशोधनप्रकार और तदनुसार विभिन्न राशियों और नक्षत्रों के गणित के साधन, द्वादशभावों और नवग्रहों के गणित के स्पष्टीकरण का गणित और विभिन्न यन्त्रों द्वारा सभी ग्रहों के साधन का गणित अतीव सुन्दर रीति से प्रतिपादित किया गया है। इस ग्रन्थ के ज्ञान से बहुत सरलता से पंचांग बनाया जा सकता है।

यन्त्रराज-टीका :

'यन्त्रराज'[1] पर आचार्य महेन्द्रसूरि के शिष्य आचार्य मलयेन्दुसूरि ने टीका लिखी है। इन्होंने मूल ग्रन्थ में निर्दिष्ट यन्त्रों को उदाहरणपूर्वक समझाया है। इसमें ७५ नगरों के अक्षांश दिये गये हैं। वेधोपयोगी ३२ तारों के सायन भोगशर भी दिये गये हैं। अयनवर्षगति ५४ विकला मानी गई है।

ज्योतिष्रत्नाकर :

मुनि लब्धिविजय के शिष्य महिमोदय मुनि ने 'ज्योतिष्रत्नाकर' नामक कृति की रचना की है। मुनि महिमोदय वि० सं० १७२२ में विद्यमान थे। वे गणित और फलित दोनों प्रकार की ज्योतिर्विद्या के मर्मज्ञ विद्वान् थे।

यह ग्रंथ फलित ज्योतिष का है। इसमें संहिता, मुहूर्त और जातक—इन तीन विषयों पर प्रकाश डाला गया है। यह ग्रन्थ छोटा होते हुए भी अत्यन्त उपयोगी है। यह प्रकाशित नहीं हुआ है।

---

१. यह ग्रंथ राजस्थान प्राच्यविद्या शोध-संस्थान, जोधपुर से टीका के साथ प्रकाशित हुआ है। सुधाकर द्विवेदी ने यह ग्रंथ काशी से छपवाया है। यह बंबई से भी छपा है।

पञ्चाङ्गानयनविधि :

उपर्युक्त महिमोदय मुनि ने 'पञ्चाङ्गानयनविधि' नामक ग्रथ की रचना वि० स० १७२२ के आस पास की है। ग्रन्थ के नाम से ही विषय स्पष्ट है। इसमे अनेक सारणियाँ दी हैं जिससे पञ्चाग के गणित मे अच्छी सहायता मिलती है। यह ग्रन्थ भी प्रकाशित नहीं हुआ है।

तिथिसारणी :

पार्श्वचन्द्रगच्छीय वाघजी मुनि ने 'तिथिसारणी' नामक महत्त्वपूर्ण ज्योतिष-ग्रथ की वि० स० १७८३ मे रचना की है। इसमे पञ्चाग बनाने की प्रक्रिया बताई गई है। यह ग्रन्थ 'मकरन्दसारणी' जैसा है। लींबडी के जैन ग्रन्थ-भडार मे इसकी प्रति है।

यशोराजीपद्धति :

मुनि यशस्वत्सागर, जिनको जसवतसागर भी कहते थे, व्याकरण, दर्शन और ज्योतिष के धुरधर विद्वान् थे। उन्होने वि० स० १७६२ मे जन्मकुडली-विषयक 'यशोराजीपद्धति' नामक व्यवहारोपयोगी ग्रन्थ बनाया है। इस ग्रन्थ के पूर्वार्ध मे जन्मकुण्डली की रचना के नियमो पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है तथा उत्तरार्ध मे जातकपद्धति के अनुसार सक्षिप्त फल बताया गया है। ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।

त्रैलोक्यप्रकाश :

आचार्य देवेन्द्रसूरि के शिष्य हेमप्रभसूरि ने 'त्रैलोक्यप्रकाश' नामक ग्रथ की रचना वि० स० १३०५ मे की है। ग्रन्थकार ने इस ग्रन्थ का नाम 'त्रैलोक्य-प्रकाश' क्यो रखा इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है :

त्रीन् कालान् त्रिषु लोकेषु यस्माद् बुद्धि· प्रकाशते।
तत् त्रैलोक्यप्रकाशाख्यं ध्यात्वा शास्त्रं प्रकाश्यते॥

यह ताजिक-विषयक चमत्कारी ग्रन्थ १२५० श्लोकात्मक है। कर्ता ने लग्नशास्त्र का महत्त्व बताते हुए ग्रथ के प्रारभ में ही कहा है :

म्लेच्छेषु विस्तृतं लग्नं कलिकालप्रभावतः।
प्रभुप्रसादमासाद्य जैने धर्मेऽवतिष्ठते॥

इस ग्रन्थ मे ज्योतिष-योगों के शुभाशुभ फलो के विषय मे विचार किया गया है और मानवजीवनसम्बन्धी अनेक विषयों का फलादेश बताया गया है।

इसमे मुथशिल, मचकूल, शूर्लाव-उत्तरलाव आदि सज्ञाओ के प्रयोग मिलते है, जो मुस्लिम प्रभाव की सूचना देते है। इसमे निम्न विषयों पर प्रकाश डाला गया है :

स्थानबल, कायबल, दृष्टिबल, दिक्फल, ग्रहावस्था, ग्रहमैत्री, राशिवैचित्र्य, षड्वर्गशुद्धि, लग्नज्ञान, अशकफल, प्रकारान्तर से जन्मदशाफल, राजयोग, ग्रहस्वरूप, द्वादश भावो की तत्त्वचिंता, केन्द्रविचार, वर्षफल, निधानप्रकरण, सेवधिप्रकरण, भोजनप्रकरण, ग्रामप्रकरण, पुत्रप्रकरण, रोगप्रकरण, जायाप्रकरण, सुरतप्रकरण, परचक्रामण, गमनागमन, गज अश्व खड्ग आदि चक्रयुद्धप्रकरण, सधिविग्रह, पुष्पनिर्णय, स्थानदोष, जीवितमृत्युफल, प्रवहणप्रकरण, वृष्टिप्रकरण, अर्घकाड, स्त्रीलाभप्रकरण आदि।[1]

ग्रन्थ के एक पद्य मे कर्ता ने अपना नाम इस प्रकार गुम्फित किया है :

श्रीहेलाशालिनां योग्यमप्रभीकृतभास्करम्।
भसूक्ष्मेक्षिकया चक्रेऽरिभिः शास्त्रमदूषितम्॥

इस श्लोक के प्रत्येक चरण के आदि के दो वर्णों मे 'श्रीहेमप्रभसूरिभि' नाम अन्तर्निहित है।

जोइसहीर (ज्योतिषहीर) :

'जोइसहीर' नामक प्राकृत भाषा के ग्रथ-कर्ता का नाम ज्ञात नहीं हुआ है। इसमें २८७ गाथाएँ हैं। ग्रन्थ के अन्त मे लिखा है कि '**प्रथमप्रकीर्णं समाप्तम्**'। इससे मालूम होता है कि यह ग्रन्थ अधूरा है। इसमे शुभाशुभ तिथि, ग्रह की सबलता, शुभ घड़ियॉ, दिनशुद्धि, स्वरज्ञान, दिशाशूल, शुभाशुभ योग, व्रत आदि ग्रहण करने का मुहूर्त, क्षौर कर्म का मुहूर्त और ग्रह-फल आदि का वर्णन है।[2]

ज्योतिस्सार (जोइसहीर) :

'ज्योतिस्सार' (जोइसहीर) नामक ग्रन्थ की रचना खरतरगच्छीय उपाध्याय देवतिलक के शिष्य मुनि हीरकलश ने वि० स० १६२१ मे प्राकृत मे की है।

---

१. यह ग्रन्थ कुशल एस्ट्रोलॉजिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, लाहौर से हिन्दी-अनुवादसहित प्रकाशित हुआ है। पं० भगवानदास जैन ने 'जैन सत्य-प्रकाश' वर्ष १२, अंक १२ में अनुवाद मे बहुत भूलें होने के सम्बन्ध में 'त्रैलोक्यप्रकाश का हिन्दी अनुवाद' शीर्षक लेख लिखा है।

२. यह ग्रन्थ प० भगवानदास जैन द्वारा हिन्दी में अनूदित होकर नरसिंह प्रेस, कलकत्ता से प्रकाशित हुआ है।

लालचन्द्रीपद्धति :

मुनि कल्याणनिधान के शिष्य लब्धिचन्द्र ने 'लालचन्द्रीपद्धति' नामक ग्रंथ वि० स० १७५१ मे रचा है।

इस ग्रन्थ में जातक के अनेक विषय हैं। कई सारणियाँ दी हैं। अनेक ग्रन्थो के उद्धरणो और प्रमाणो से यह ग्रथ परिपूर्ण है।[1]

टिप्पनकविधि :

मतिविशाल गणि ने 'टिप्पनकविधि' नामक ग्रथ[2] प्राकृत मे लिखा है। इसका रचना-समय ज्ञात नहीं है।

इस ग्रथ मे पञ्चागतिथिकर्षण, सक्रातिकर्षण, नवग्रहकर्षण, वक्रातीचार, सरलगतिकर्षण, पञ्चग्रहास्तमितोदितकथन, भद्राकर्षण, अधिकमासकर्षण, तिथि-नक्षत्र-योगवर्धन-घटनकर्षण, दिनमानकर्षण आदि १३ विषयों का विशद वर्णन है।

होरामकरन्द :

आचार्य गुणाकरसूरि ने 'होरामकरन्द' नामक ग्रथ की रचना की है। रचना समय ज्ञात नहीं है परन्तु १५ वीं शताब्दी होगा ऐसा अनुमान है। होरा अर्थात् राशि का द्वितीयाश।

इस ग्रन्थ मे ३१ अध्याय है: १. राशिप्रभेद, २. ग्रहस्वरूपबलनिरूपण, ३ वियोनिजन्म, ४. निषेक, ५. जन्मविधि, ६. रिष्ट, ७. रिष्टभग, ८. सर्वग्रहारिष्टभग, ९. आयुर्दा, १०. दशम-अध्याय (?), ११ अन्तर्दशा, १२. अष्टकवर्ग, १३ कर्माजीव, १४. राजयोग, १५. नाभसयोग, १६. वोसिवेस्युभयचरी-योग, १७ चन्द्रयोग, १८. ग्रहप्रव्रज्यायोग, १९. देवनक्षत्रफल, २०. चन्द्रराशिफल, २१ सूर्यादिराशिफल, २२ रश्मिचिन्ता, २३. दृष्ट्यादिफल, २४. भावफल, २५ आश्रयाध्याय, २६ कारक, २७. अनिष्ट, २८. स्त्रीजातक, २९. निर्याण, ३०. द्रेष्काणस्वरूप, ३१. प्रश्नजातक।

---

१ इसकी १४८ पत्रों की १८ वीं शती में लिखी गई प्रति अहमदाबाद के लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर में है।

२ इसकी १ पत्र की वि० सं० १६९४ में लिखी गई प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर के संग्रह मे है।

यह ग्रन्थ छपा नहीं है।[1]

हायनसुन्दर :

आचार्य पद्मसुन्दरसूरि ने 'हायनसुन्दर' नामक ज्योतिषविषयक ग्रन्थ की रचना की है।

विवाहपटल :

'विवाहपटल' नाम के एक से अधिक ग्रन्थ है। अजैन कृतियो मे शार्ङ्गधर ने शक स० १४०० (वि० स० १५३५) मे और पीताम्बर ने शक स० १४४४ (वि० स० १५७९) मे इनकी रचना की है। जैन कृतियो मे 'विवाहपटल' के कर्ता अभयकुशल या उभयकुशल का उल्लेख मिलता है। इसकी जो हस्तलिखित प्रति मिली है उसमे १३० पद्य हैं, बीच-बीच मे प्राकृत गाथाएँ उद्धृत की गई हैं। इसमे निम्नोक्त विषयों की चर्चा है :

योनि-नाडीगणश्चैव स्वामिमित्रैस्तथैव च।
जुञ्जा प्रीतिश्च वर्णश्च लीहा सप्तविधा स्मृता ॥

नक्षत्र, नाडीवेधयन्त्र, राशिस्वामी, ग्रहशुद्धि, विवाहनक्षत्र, चन्द्र सूर्य-स्पष्टीकरण, एकार्गल, गोधूलिकाफल आदि विषयों का विवेचन है।

यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।

करणराज :

रुद्रपल्लीगच्छीय जिनसुन्दरसूरि के शिष्य मुनिसुन्दर ने वि० स० १६५५ मे 'करणराज' नामक ग्रन्थ[3] की रचना की है।

यह ग्रन्थ दस अध्यायों, जिनको कर्ता ने 'व्यय' नाम से उल्लिखित किया है, में विभाजित है : १ ग्रहमध्यमसाधन, २. ग्रहस्पष्टीकरण, ३ प्रश्नसाधक, ४. चन्द्रग्रहण-साधन, ५. सूर्यसाधक, ६. त्रुटित होने से विषय ज्ञात नहीं होता, ७. उदयास्त, ८. ग्रहयुद्धनक्षत्रसमागम, ९. पाताध्यय, १०. निमिशक (?)। अन्त मे प्रशस्ति है।

---

१. इसकी ४१ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर के संग्रह में है।

२. इसकी प्रति बीकानेरस्थित अनूप संस्कृत लायब्रेरी के संग्रह में है।

३. इसकी ७ पत्रों की अपूर्ण प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर में है।

दीक्षा-प्रतिष्ठाशुद्धि :

उपाध्याय समयसुन्दर ने 'दीक्षा प्रतिष्ठाशुद्धि' नामक ज्योतिषविषयक ग्रन्थ[1] की वि० स० १६८५ मे रचना की है।

यह ग्रन्थ १२ अध्यायो मे विभाजित है : १. ग्रहगोचरशुद्धि, २. वर्षशुद्धि, ३. अयनशुद्धि, ४ मासशुद्धि, ५. पक्षशुद्धि, ६ दिनशुद्धि, ७ वारशुद्धि, ८. नक्षत्रशुद्धि, ९. योगशुद्धि, १०. करणशुद्धि, ११. लग्नशुद्धि और १२. ग्रहशुद्धि।

कर्ता ने प्रशस्ति मे कहा है कि वि० स० १६८५ में लूणकरणसर मे प्रशिष्य वाचक जयकीर्ति, जो ज्योतिष-शास्त्र मे विचक्षण थे, की सहायता से इस ग्रन्थ की रचना की। प्रशस्ति इस प्रकार है :

दीक्षा-प्रतिष्ठाया या शुद्धिः सा निगदिता हिताय नृणाम्।
श्रीलूणकरणसरसि स्मरशर-वसु-षड्डुपति (१६८५) वर्षे॥ १॥

ज्योतिष्शास्त्रविचक्षणवाचकजयकीर्तिसहायैः।
समयसुन्दरोपाध्यायसंदर्भितो ग्रन्थः॥ २॥

विवाहरत्न :

खरतरगच्छीय आचार्य जिनोदयसूरि ने 'विवाहरत्न' नामक ग्रन्थ[2] की रचना की है।

इस ग्रन्थ मे १५० श्लोक हैं, १३ पत्रों की प्रति जैसलमेर मे वि० स० १८३३ में लिखी गई है।

ज्योतिप्रकाश :

आचार्य ज्ञानभूषण ने 'ज्योतिप्रकाश' नामक ग्रन्थ[3] की रचना वि० स० १७५५ के बाद कभी की है।

---

१. इसकी एकमात्र प्रति बीकानेर के खरतरगच्छ के आचार्यशाखा के उपाश्रय-स्थित ज्ञानभंडार मे है।

२. इसकी हस्तलिखित प्रति मोतीचन्द खजांची के संग्रह में है।

३. इसकी हस्तलिखित प्रति देहली के धर्मपुरा के मन्दिर में सगृहीत है।

यह ग्रन्थ सात प्रकरणों में विभक्त है : १. तिथिद्वार, २ वार, ३. तिथि-घटिका, ४. नक्षत्रसाधन, ५. नक्षत्रघटिका, ६. इस प्रकरण का पत्रांक ४४ नष्ट होने से स्पष्ट नहीं है, ७. इस प्रकरण के अन्त में 'इति चतुर्दश, पंचदश, . सप्तदश, रूपैरचतुर्भिर्द्वारैः संपूर्णोऽयं ज्योतिप्रकाश ।' ऐसा उल्लेख है।

सात प्रकरण पूर्ण होने के पश्चात् ग्रन्थ की समाप्ति का सूचन है परन्तु प्रशस्ति के कुछ पद्य अपूर्ण रह जाते हैं।

ग्रन्थ में 'चन्द्रप्रज्ञप्ति', 'ज्योतिष्करण्डक' की मलयगिरि-टीका आदि के उल्लेख के साथ एक जगह विनयविजय के 'लोकप्रकाश' का भी उल्लेख है। अतः इसकी रचना वि० सं० १७३० के बाद ही सिद्ध होती है।[1]

ज्ञानभूषण का उल्लेख प्रत्येक प्रकाश के अन्त में पाया जाता है और अकबर का भी उल्लेख कई बार हुआ है।

खेटचूला :

आचार्य ज्ञानभूषण ने 'खेटचूला' नामक ग्रंथ की रचना की, ऐसा उल्लेख उनके स्वरचित ग्रन्थ 'ज्योतिप्रकाश' में है।

षष्टिसंवत्सरफल :

दिगंबराचार्य दुर्गदेवरचित 'षष्टिसंवत्सरफल' नामक संस्कृत ग्रंथ की ६ पत्रों की प्रति[2] में संवत्सरों के फल का निर्देश है।

लघुजातक-टीका :

'पञ्चसिद्धान्तिका' ग्रन्थ की शक सं० ४२७ (वि० सं० ५६२) में रचना करनेवाले वराहमिहिर ने 'लघुजातक' की रचना की है। यह होराशाखा के 'बृहज्जातक' का संक्षिप्त रूप है। ग्रन्थ में लिखा है :

होराशास्त्रं वृत्तैर्मया निबद्धं निरीक्ष्य शास्त्राणि ।
यत्तस्याप्यार्याभिः सारमहं संप्रवक्ष्यामि ॥

---

१ द्वितीय प्रकाश में वि० सं० १७२५, १७३०, १७३५, १७४०, १७४५, १७५०, १७५५ के भी उल्लेख हैं। इसके अनुसार वि० सं० १७५५ के बाद में इसकी रचना सम्भव है।

२. यह प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद में है।

इस पर खरतरगच्छीय मुनि भक्तिलाभ ने वि० स० १५७१ मे विक्रमपुर में टीका की रचना की है तथा मतिसागर मुनि ने वि० स० १६०२ मे भाषा मे वचनिका और उपकेशगच्छीय खुशालसुन्दर मुनि ने वि० स० १८३९ मे स्तबक लिखा है। मुनि मतिसागर ने इस ग्रन्थ पर वि० स० १६०५ मे वार्तिक रचा है। लघुश्यामसुन्दर ने भी 'लघुजातक' पर टीका लिखी है।

जातकपद्धति-टीका :

श्रीपति ने 'जातकपद्धति' की रचना करीब वि० स० ११०० मे की है। इस पर अचलगच्छीय हर्षरत्न के शिष्य मुनि सुमतिहर्ष ने वि० स० १६७३ मे पद्मावतीपत्तन मे 'दीपिका' नामक टीका की रचना की है। आचार्य जिनेश्वर-सूरि ने भी इस ग्रथ पर टीका लिखी है।

सुमतिहर्ष ने 'बृहत्पर्वमाला' नामक ज्योतिष-ग्रन्थ की भी रचना की है। इन्होंने ताजिकसार, करणकुतूहल और होरामकरन्द नामक ग्रथों पर भी टीकाएँ रची है।

ताजिकसार-टीका :

'ताजिक' शब्द की व्याख्या करते हुए किसी विद्वान् ने इस प्रकार बताया है : **यवनाचार्येण पारसीकभाषया ज्योतिष्शास्त्रैकदेशरूपं वार्षिकादिनानाविध-फलादेशफलकशास्त्र ताजिकशब्दवाच्यम्।**

इसका अभिप्राय यह है कि जिस समय मनुष्य के जन्मकालीन सूर्य के समान सूर्य होता है अर्थात् जब उसकी आयु का कोई भी सौर वर्ष समाप्त होकर दूसरा सौर वर्ष लगता है उस समय के लग्न और ग्रह-स्थिति द्वारा मनुष्य को उस वर्ष मे होनेवाले सुख-दुःख का निर्णय जिस पद्धति द्वारा किया जाता है उसे 'ताजिक' कहते हैं।

उपर्युक्त व्याख्या से यह भी भलीभाति मालूम हो जाता है कि यह ताजिक-शाखा मुसलमानो से आई है। शक-स० १२०० के बाद इस देश मे मुसलमानी राज्य होने पर हमारे यहाँ ताजिक-शाखा का प्रचलन हुआ। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि वर्ष-प्रवेशकालीन लग्न द्वारा फलादेश कहने की कल्पना और कुछ पारिभाषिक नाम यवनो से लिये गये। जन्मकुडली और उसके फल के नियम ताजिक मे प्रायः जातकसदृश हैं और वे हमारे ही हैं यानी इस भारत देश के ही हैं।

हरिभट्ट नामक विद्वान् ने 'ताजिकसार' नामक ग्रन्थ की रचना वि० सं० १५८० के आसपास में की है। हरिभट्ट को हरिभद्र नाम से भी पहिचाना जाता है। इस ग्रन्थ पर अचलगच्छीय मुनि सुमतिहर्ष ने वि० सं० १६७७ में विष्णुदास राजा के राज्यकाल में टीका लिखी है।[1]

करणकुतूहल-टीका :

ज्योतिर्गणितज्ञ भास्कराचार्य ने 'करणकुतूहल' की रचना वि० सं० १२४० के आसपास में की है। उनका यह ग्रंथ करण विषयक है। इसमें मध्यमग्रहसाधन अहर्गण द्वारा किया गया है। ग्रन्थ में निम्नोक्त दस अधिकार हैं : १. मध्यम, २. स्पष्ट, ३. त्रिप्रश्न, ४ चन्द्र-ग्रहण, ५. सूर्य-ग्रहण, ६. उदयास्त, ७ शृंगोन्नति, ८. ग्रहयुति, ९ पात और १०. ग्रहणसंभव। कुल मिलाकर १३९ पद्य हैं। इस पर सोढल, नार्मदात्मज पद्मनाभ, शङ्कर कवि आदि की टीकाएँ हैं।

इस 'करणकुतूहल' पर अचलगच्छीय हर्षरत्न मुनि के शिष्य सुमतिहर्ष मुनि ने वि० सं० १६७८ में हेमाद्रि के राज्य में 'गणककुमुदकौमुदी' नामक टीका रची है। इसमें उन्होंने लिखा है :

करणकुतूहलवृत्तावेतस्यां सुमतिहर्षरचितायाम्।
गणककुमुदकौमुद्यां विवृता स्फुटता हि खेटानाम्॥

इस टीका का ग्रन्थाग्र १८५० श्लोक है।[2]

ज्योतिर्विदाभरण-टीका :

'ज्योतिर्विदाभरण' नामक ज्योतिषशास्त्र का ग्रंथ 'रघुवंश' आदि काव्यों के कर्ता कवि कालिदास की रचना है, ऐसा ग्रन्थ में लिखा है परन्तु यह कथन ठीक नहीं है। इसमें ऐन्द्रयोग का तृतीय अंश व्यतीत होने पर सूर्य-चन्द्रमा का क्रांतिसाम्य बताया गया है, इससे इसका रचनाकाल शक-सं० ११६४ (वि० सं० १२९९) निश्चित होता है। अतः रघुवंशादि काव्यों के निर्माता कालिदास इस ग्रन्थ के कर्ता नहीं हो सकते। ये कोई दूसरे ही कालिदास होने चाहिये। एक विद्वान् ने तो यह 'ज्योतिर्विदाभरण' ग्रंथ १६ वीं शताब्दी का होने का निर्णय किया है। यह ग्रंथ मुहूर्तविषयक है।

---

१ यह टीका-ग्रंथ मूल के साथ वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से प्रकाशित हुआ है।

२ लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद के संग्रह में इसकी २९ पत्रों की प्रति है।

इस पर पूर्णिमागच्छ के भावरत्न (भावप्रभसूरि) ने सन् १७१२ में सुबोधिनी वृत्ति रची है। यह अभीतक अप्रकाशित है।

महादेवीसारणी टीका :

महादेव नामक विद्वान् ने 'महादेवीसारणी' नामक ग्रहसाधन-विषयक ग्रंथ की शक सं० १२३८ (वि० सं० १३७३) में रचना की है। कर्ता ने लिखा है :

चक्रेश्वरारब्धनभश्वराशुसिद्धिं महादेव ऋषींश्च नत्वा।

इससे अनुमान होता है कि चक्रेश्वर नामक ज्योतिषी के आरम्भ किये हुए इस अपूर्ण ग्रन्थ को महादेव ने पूर्ण किया। महादेव पद्मनाभ ब्राह्मण के पुत्र थे। वे गोदावरी तट के निकट रासिण गाव के निवासी थे परन्तु उनके पूर्वजों का मूल स्थान गुजरातस्थित सूरत के निकट का प्रदेश था।

इस ग्रंथ में लगभग ४३ पद्य हैं। उनमें केवल मध्यम और स्पष्ट ग्रहों का साधन है। क्षेपक मध्यम-मेषसंक्रांतिकालीन है और अहर्गण द्वारा मध्यम ग्रह-साधन करने के लिये सारणिया बनाई हैं।

इस ग्रंथ पर अचलगच्छीय मुनि भोजराज के शिष्य मुनि धनराज ने दीपिका-टीका की रचना वि० सं० १६९२ में पद्मावतीपत्तन मे की है।[1] टीका में सिरोही का देशान्तर साधन किया है। टीका का प्रमाण १५०० श्लोक है। 'जिनरत्नकोश' के अनुसार मुनि भुवनराज ने इस पर टिप्पण लिखा है। मुनि तत्त्वसुन्दर ने इस ग्रंथ पर विवृति रची है। किसी अज्ञात विद्वान् ने भी इस पर टीका लिखी है।

विवाहपटल-बालावबोध :

अज्ञातकर्तृक 'विवाहपटल' पर नागोरी-तपागच्छीय आचार्य हर्षकीर्तिसूरि ने 'बालावबोध' नाम से टीका रची है।

आचार्य सोमसुन्दरसूरि के शिष्य अमरमुनि ने 'विवाहपटल' पर 'बोध' नाम से टीका रची है।

मुनि विद्याहेम ने वि० सं० १८७३ में 'विवाहपटल' पर 'अर्थ' नाम से टीका रची है।

---

१. इस टीका की प्रति ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद के संग्रह में है।

ग्रहलाघव-टीका :

गणेश नामक विद्वान् ने 'ग्रहलाघव' की रचना की है। ये बहुत बड़े ज्योतिषी थे। उनके पिता का नाम था केशव और माता का नाम था लक्ष्मी। वे समुद्रतटवर्ती नांदगाँव के निवासी थे। सोलहवीं शती के उत्तरार्ध में वे विद्यमान थे।

ग्रहलाघव की विशेषता यह है कि इसमें ज्याचाप का संबंध बिलकुल नहीं रखा गया है तथापि स्पष्ट सूर्य लाने में करणग्रंथों से भी यह बहुत सूक्ष्म है। यह ग्रंथ निम्नलिखित १४ अधिकारों में विभक्त है : १. मध्यमाधिकार, २. स्पष्टाधिकार, ३. पञ्चताराधिकार, ४. त्रिप्रश्न, ५. चन्द्रग्रहण, ६. सूर्यग्रहण, ७. मासग्रहण, ८. स्थूलग्रहसाधन, ९. उदयास्त, १०. छाया, ११. नक्षत्रछाया, १२. शृंगोन्नति, १३. ग्रहयुति और १४. महापात। सब मिलाकर इसमें १८७ श्लोक हैं।

इस 'ग्रहलाघव' ग्रन्थ पर चारित्रसागर के शिष्य कल्याणसागर के शिष्य यशस्वत्सागर (जसवंतसागर) ने वि० सं० १७६० में टीका रची है।

इस 'ग्रहलाघव' पर राजसोम मुनि ने टिप्पण लिखा है।

मुनि यशस्वत्सागर ने जैनसप्तपदार्थी (सं० १७५७), प्रमाणवादार्थ (सं० १७५९), भावसप्ततिका (सं० १७४०), यशोराजपद्धति (सं० १७६२), वादार्थनिरूपण, स्याद्वादमुक्तावली, स्तवनरत्न आदि ग्रंथ रचे हैं।

चन्द्रार्की-टीका :

मोढ दिनकर ने 'चन्द्रार्की' नामक ग्रंथ की रचना की है। इस ग्रंथ में ३३ श्लोक हैं, सूर्य और चन्द्रमा का स्पष्टीकरण है। ग्रंथ में आरंभ वर्ष शक सं० १५०० है।

इस 'चन्द्रार्की' ग्रन्थ पर तपागच्छीय मुनि कृपाविजयजी ने टीका रची है।

षट्पञ्चाशिका-टीका :

प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् वराहमिहिर के पुत्र पृथुयश ने 'षट्पञ्चाशिका' की रचना की है। यह जातक का प्रामाणिक ग्रंथ गिना जाता है। इसमें ५६ श्लोक हैं। इस 'षट्पञ्चाशिका' पर भट्ट उत्पल की टीका है।

इस ग्रंथ पर खरतरगच्छीय लब्धिविजय के शिष्य महिमोदय मुनि ने एक टीका लिखी है। इन्होंने वि० स० १७२२ मे ज्योतिषरत्नाकर, पञ्चागानयन-विधि, गणितसाठसो आदि ग्रंथ भी रचे है।

भुवनदीपक-टीका :

पंडित हरिभद्र ने लगभग वि० स० १५७० मे 'भुवनदीपक' ग्रंथ की रचना की है।

इस 'भुवनदीपक' पर खरतरगच्छीय मुनि लक्ष्मीविजय ने वि० स० १७६७ में टीका रची है।

चमत्कारचिन्तामणि-टीका :

राजर्षि भट्ट ने 'चमत्कारचिन्तामणि' ग्रंथ की रचना की है। इसमे मुहूर्त और जातक दोनो अंगो के विषय में उपयोगी बातो का वर्णन किया गया है।

इस 'चमत्कारचिन्तामणि' ग्रंथ पर खरतरगच्छीय मुनि पुण्यहर्ष के शिष्य अभयकुशल ने लगभग वि० स० १७३७ मे बालावबोधिनी-वृत्ति की रचना की है।

मुनि मतिसागर ने वि० स० १८२७ मे इस ग्रंथ पर 'टबा' की रचना की है।

होरामकरन्द-टीका :

अज्ञातकर्तृक 'होरामकरन्द' नामक ग्रंथ पर मुनि सुमतिहर्ष ने करीब वि० स० १६७८ मे टीका रची है।

वसन्तराजशाकुन-टीका :

वसन्तराज नामक विद्वान् ने शकुनविषयक एक ग्रंथ की रचना की है। इसे 'शकुन-निर्णय' अथवा 'शकुनार्णव' कहते है।

इस ग्रंथ पर उपाध्याय भानुचन्द्रगणि ने १७ वीं शती मे टीका लिखी है।[1]

---

१ यह वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से प्रकाशित है।

दसवाँ प्रकरण

शकुन

शकुनरहस्य :

वि० स० १२७० में 'विवेकविलास' की रचना करनेवाले वायडगच्छीय जिनदत्तसूरि ने 'शकुनरहस्य' नामक शकुनशास्त्रविषयक ग्रथ की रचना की है। आचार्य जिनदत्तसूरि 'कविशिक्षा' नामक ग्रथ की रचना करनेवाले आचार्य अमरचन्द्रसूरि के गुरु थे।

'शकुनरहस्य' नौ प्रस्तावों मे विभक्त पद्यात्मक कृति है। इसमे सतान के जन्म, लग्न और शयनसबधी शकुन, प्रभात में जाग्रत होने के समय के शकुन, दतून और स्नान करने के शकुन, परदेश जाने के समय के शकुन और नगर में प्रवेश करने के शकुन, वर्षा-सबधी परीक्षा, वस्तु के मूल्य मे वृद्धि और कमी, मकान बनाने के लिये जमीन की परीक्षा, जमीन खोदते हुए निकली हुई वस्तुओ का फल, स्त्री को गर्भ नहीं रहने का कारण, सतानो की अपमृत्युविषयक चर्चा, मोती, हीरा आदि रत्नों के प्रकार और तदनुसार उनके शुभाशुभ फल आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।[1]

शकुनशास्त्र :

'शकुनशास्त्र', जिसका दूसरा नाम 'शकुनसारोद्धार' है, की वि० स० १३३८ में आचार्य माणिक्यसूरि ने रचना की है।[2] इस ग्रथ मे १. दिक्स्थान, २ ग्राम्यनिमित्त, ३. तित्तिरि, ४ दुर्गा, ५. लट्वागृहोलिकाक्षुत, ६ वृक, ७ रात्रेय

---

१. प० हीरालाल हसराज ने सानुवाद 'शकुनरहस्य' का 'शकुनशास्त्र' नाम से सन् १८९९ में जामनगर से प्रकाशन किया है।

२ सारं गरीय. शकुनार्णवेभ्य पीयूषमेतद् रचयांचकार।
माणिक्यसूरि स्वगुरुप्रसादाद् यत्पानत. स्याद् विबुधप्रमोद.॥ ४१ ॥
वसु-वह्नि-वह्नि-चन्द्रेऽब्दे श्वकयुजि पूर्णिमातिथौ रचितः।
शकुनानामुद्धारोऽभ्यासवशादस्तु चिद्रूपः ॥ ४२ ॥

८. हरिण, ९. भषण, १०. मिश्र और ११. सग्रह—इस प्रकार ११ विषयो का वर्णन है। कर्ता ने अनेक शाकुनविषयक ग्रथो के आधार पर इस ग्रथ की रचना की है। यह ग्रथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

शकुनरत्नावलि-कथाकोश :

आचार्य अभयदेवसूरि के शिष्य वर्धमानसूरि ने 'शकुनरत्नावलि' नामक ग्रथ की रचना की है।

शकुनावलि :

'शकुनावलि' नाम के कई ग्रथ है।

एक 'शकुनावलि' के कर्ता गौतम महर्षि थे, ऐसा उल्लेख मिलता है।

दूसरी 'शकुनावलि' के कर्ता आचार्य हेमचन्द्रसूरि माने जाते है।

तीसरी 'शकुनावलि' किसी अज्ञात विद्वान् ने रची है।

तीनों के कर्ताविषयक उल्लेख सदिग्ध है। ये प्रकाशित भी नहीं है।

सउणदार (शकुनद्वार) :

'सउणदार' नामक ग्रथ[1] प्राकृत भाषा मे है। यह अपूर्ण है। इसमें कर्ता का नाम नहीं दिया गया है।

शकुनविचार :

'शकुनविचार' नामक कृति[2] ३ पत्रो मे है। इसकी भाषा अपभ्रश है। इसमे किसी पशु के दाहिनी या बायीं ओर होकर गुजरने के शुभाशुभ फल के विषय मे विचार किया गया है। यह अज्ञातकर्तृक रचना है।

---
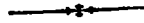
१. यह पाटन के भडार में है।
२. इसकी प्रति पाटन के जैन भंडार में है।

ग्यारहवां प्रकरण

निमित्त

जयपाहुड :

'जयपाहुड'[1] निमित्तशास्त्र का ग्रंथ है। इसके कर्ता का नाम अज्ञात है। इसे जिनभाषित कहा गया है। यह ईसा की १० वीं शताब्दी के पूर्व की रचना है। प्राकृत मे रचा हुआ यह ग्रंथ अतीत, अनागत आदि से सम्बन्धित नष्ट, मुष्टि, चिंता, विकल्प आदि अतिशयों का बोध कराता है। इससे लाभ—अलाभ का ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें ३७८ गाथाएँ हैं जिनमे सकट—विकटप्रकरण, उत्तराधरप्रकरण, अभिघात, जीवसमास, मनुष्यप्रकरण, पक्षिप्रकरण, चतुष्पद, धातुप्रकृति, धातुयोनि, मूलभेद, मुष्टिविभागप्रकरण-वर्ण, गंध-रस-स्पर्शप्रकरण, नष्टिकाचक्र, चिंताभेदप्रकरण, तथा लेखगडिकाधिकार मे सख्याप्रमाण, कालप्रकरण, लाभगडिका, नक्षत्रगडिका, स्ववर्गसयोगकरण, परवर्गसयोगकरण, सिंहावलोकरण, गजविलुलित, गुणाकारप्रकरण, अस्त्र-विभागप्रकरण आदि से सम्बन्धित विवेचन है।

निमित्तशास्त्र :

इस 'निमित्तशास्त्र' नामक ग्रन्थ[2] के कर्ता है ऋषिपुत्र। ये गर्ग नामक आचार्य के पुत्र थे। गर्ग स्वय ज्योतिष के प्रकाड पडित थे। पिता ने पुत्र को ज्योतिष का ज्ञान विरासत मे दिया। इसके सिवाय ग्रंथकर्ता के सबध मे और कुछ पता नहीं लगता। ये कब हुए, यह भी ज्ञात नहीं है।

इस ग्रन्थ मे १८७ गाथाएँ है जिनमे निमित्त के भेद, आकाश-प्रकरण, चद्र-प्रकरण, उत्पात-प्रकरण, वर्षा-उत्पात, देव-उत्पातयोग, राज-उत्पातयोग,

---

१. यह ग्रन्थ चूडामणिसार-सटीक के साथ सिंघी जैन ग्रंथमाला, बंबई से प्रकाशित हुआ है।

२ यह पं० लालाराम शास्त्री द्वारा हिंदी में [illegible] ...र्श्वनाथ शास्त्री, सोलापुर से सन् १९४१ में

इन्द्रधनुष द्वारा शुभ-अशुभ का ज्ञान, गन्धर्वनगर का फल, विद्युल्लतायोग और मेघयोग का वर्णन है।

'बृहत्संहिता' की भट्टोत्पली टीका मे इस आचार्य का अवतरण दिया है।

निमित्तपाहुड :

'निमित्तपाहुड' शास्त्र द्वारा केवली, ज्योतिष और स्वप्न आदि निमित्तो का ज्ञान प्राप्त किया जाता था। आचार्य भद्रेश्वर ने अपनी 'कहावली' मे और शीलाकसूरि ने अपनी 'सूत्रकृताङ्ग-टीका' मे 'निमित्तपाहुड' का उल्लेख किया है।[1]

जोणिपाहुड :

'जोणिपाहुड' (योनिप्राभृत) निमित्तशास्त्र का अति महत्त्वपूर्ण ग्रथ है। दिगबर आचार्य धरसेन ने इसकी प्राकृत मे रचना की है। वे प्रज्ञाश्रमण नाम से भी विख्यात थे। वि० स० १५५६ मे लिखी गई 'बृहट्टिप्पणिका' नामक ग्रथ-सूची के अनुसार वीर-निर्वाण के ६०० वर्ष पश्चात् धरसेनाचार्य ने इस ग्रथ की रचना की थी।[2]

कूष्माडी देवी द्वारा उपदिष्ट इस पद्यात्मक कृति की रचना आचार्य धरसेन ने अपने शिष्य पुष्पदत और भूतबलि के लिये की। इसके विधान से ज्वर, भूत, शाकिनी आदि दूर किये जा सकते हैं। यह समस्त निमित्तशास्त्र का उद्गमरूप है। समस्त विद्याओं और धातुवाद के विधान का मूलभूत कारण है। आयुर्वेद का साररूप है। इस कृति को जाननेवाला कलिकालसर्वज्ञ और चतुर्वर्ग का अधिष्ठाता बन सकता है। बुद्धिशाली लोग इसे सुनते है तब मन्त्र-तन्त्रवादी मिथ्यादृष्टियो का तेज निष्प्रभ हो जाता है। इस प्रकार इस कृति का प्रभाव वर्णित है। इसमे एक जगह कहा गया है कि प्रज्ञाश्रमण मुनि ने 'बालतत्र' सक्षेप मे कहा है।

---

१ देखिए—प्रो० हीरालाल र० कापडिया . पाइय भाषाओ अने साहित्य, पृ० १६७-१६८.

२. योनिप्राभृतं वीरात् ६०० धारसेनम्।

—बृहट्टिप्पणिका, जैन साहित्य संशोधक १, २ : परिशिष्ट;

'षट्खंडागम' की प्रस्तावना, भा० १, पृ० ३०.

'धवला टीका' में उल्लेख है कि 'योनिप्राभृत' में मन्त्र-तन्त्र की शक्ति का वर्णन है और उसके द्वारा पुद्गलानुभाग जाना जा सकता है। आगमिक व्याख्याओं के उल्लेखानुसार आचार्य सिद्धसेन ने 'जोणिपाहुड' के आधार से अश्व बनाये थे। इसके बल से महिषों को अचेतन किया जा सकता था और धन पैदा किया जा सकता था। 'विशेषावश्यक-भाष्य' (गाथा १७७५) की मलधारी हेमचन्द्र-सूरिकृत टीका में अनेक विजातीय द्रव्यों के संयोग से सर्प, सिंह आदि प्राणी और मणि, सुवर्ण आदि अचेतन पदार्थ पैदा करने का उल्लेख मिलता है। कुवलयमालाकार के कथनानुसार 'जोणिपाहुड' में कही गई बात कभी असत्य नहीं होती। जिनेश्वरसूरि ने अपने 'कथाकोशप्रकरण' के सुन्दरीदत्तकथानक में इस शास्त्र का उल्लेख किया है।[1] 'प्रभावकचरित' (५, ११५-१२७) में इस ग्रन्थ के बल से मछली और सिंह बनाने का निर्देश है। कुलमण्डनसूरि द्वारा वि० सं० १४७३ में रचित 'विचारामृतसंग्रह' (पृ० ९) में 'योनिप्राभृत' को पूर्वश्रुत से चला आता हुआ स्वीकार किया गया है।[2] 'योनिप्राभृत' में इस प्रकार उल्लेख है :

अग्गेणिपुव्वनिग्गयपाहुडसत्थस्स मज्झयारम्मि।
किंचि उद्देसदेसं धरसेणो वज्जियं भणइ॥
गिरिउज्जिंतठिएण पच्छिमदेसे सुरट्ठगिरिनयरे।
बुड्ढंतं उद्धरियं दूसमकालप्पयावम्मि॥

—प्रथम खण्ड

अट्ठावीससहस्सा गाहाणं जत्थ वण्णिया सत्थे।
अग्गेणिपुव्वमज्झे संखेवं वित्थरे मुत्तुं॥

—चतुर्थ खण्ड

इस कथन से ज्ञात होता है कि अग्रायणीय पूर्व का कुछ अंश लेकर धरसेनाचार्य ने इस ग्रंथ का उद्धार किया। इसमें पहले अठाईस हजार गाथाएँ थीं, उन्हींको संक्षिप्त करके 'योनिप्राभृत' में रखा है।[3]

---

१ जिणभासियपुव्वगए जोणीपाहुडसुए समुद्दिट्ठं।
एयपि सत्तकज्जे कायव्वं धीरपुरिसेहिं॥

२ देखिये—हीरालाल र० कापडिया : आगमोनुं दिग्दर्शन, पृ० २३३–२३५.

३ इस अप्रकाशित ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति भांडारकर इंस्टीट्यूट, पूना में मौजूद है।

रिट्ठसमुच्चय (रिष्टसमुच्चय) :

'रिट्ठसमुच्चय' के कर्ता आचार्य दुर्गदेव दिगंबर संप्रदाय के विद्वान् थे। उन्होंने वि० सं० १०८९ (ईस्वी सन् १०३२) में कुम्भनगर (कुमेरगढ़, भरतपुर) में जब लक्ष्मीनिवास राजा का राज्य था तब इस ग्रंथ को समाप्त किया था। दुर्गदेव के गुरु का नाम संजमदेव था। उन्होंने प्राचीन आचार्यों की परंपरा से आगत 'मरणकरंडिया' के आधार पर 'रिष्टसमुच्चय' में रिष्टों का याने मरण-सूचक अनिष्ट चिह्नों का ऊहापोह किया है। इसमें कुल २६१ गाथाएँ हैं, जो प्रधानतया शौरसेनी प्राकृत में लिखी गई हैं।

इस ग्रंथ में १. पिंडस्थ, २. पदस्थ और ३. रूपस्थ—ये तीन प्रकार के रिष्ट बताए गए हैं। जिनमें उंगलियाँ टूटती मालूम पड़ें, नेत्र स्तब्ध हो जायँ, शरीर विवर्ण बन जाय, नेत्रों से सतत जल बहा करे ऐसी क्रियाएँ पिण्डस्थरिष्ट मानी जाती हैं। जिनमें चन्द्र और सूर्य विविध रूपों में दिखाई दें, दीपक-शिखा अनेक रूपों में नजर आए, दिन का रात्रि के समान और रात्रि का दिन के समान आभास हो ऐसी क्रियाएँ पदस्थरिष्ट कही गई हैं। जिसमें अपनी खुद की छाया दिखाई न पड़े वह क्रिया रूपस्थरिष्ट मानी गई है।

इसके बाद स्वप्नविषयक वर्णन है। स्वप्न के एक देवेन्द्रकथित और दूसरा सहज—ये दो प्रकार माने गये हैं। दुर्गदेव ने 'मरणकंडी' का प्रमाण देते हुए इस प्रकार कहा है :

> न हु सुणइ सतणुसद्दं दीवयगंधं च णेव गिण्हेइ।
> जो जियइ सत्तदियहे इय कहिअं मरणकंडीए॥ १३९॥

अर्थात् जो अपने शरीर का शब्द नहीं सुनता और जिसे दीपक की गन्ध नहीं आती वह सात दिन तक जीता है, ऐसा 'मरणकंडी' में कहा गया है।

प्रश्नारिष्ट के १. अंगुली-प्रश्न, २. अलक्तक-प्रश्न, ३ गोरोचना-प्रश्न, ४. प्रश्नाक्षर-प्रश्न, ५. शकुनप्रश्न, ६. अक्षर-प्रश्न, ७ होरा-प्रश्न और ८. ज्ञान-प्रश्न—ये आठ भेद बताते हुए इनका विस्तृत वर्णन किया गया है।

प्रश्नारिष्ट का अर्थ बताते हुए आचार्य ने कहा है कि मन्त्रोच्चारण के बाद प्रश्न करनेवाले से प्रश्न करवाना चाहिए, प्रश्न के अक्षरों को दुगुना करना

चाहिए और मात्राओं को चौगुना करना चाहिए तथा इनका जो योगफल आए उसमें सात का भाग देना चाहिए। यदि शेष कुछ रहे तो रोगी अच्छा होगा।'

पण्हावागरण (प्रश्नव्याकरण) :

'पण्हावागरण' नामक दसवें अंग आगम से भिन्न इस नाम का एक ग्रंथ निमित्तविषयक है, जो प्राकृतभाषा में गाथाबद्ध है। इसमें ४५० गाथाएँ हैं। इसकी ताड़पत्रीय प्रति पाटन के ग्रंथभंडार में है। उसके अंत में 'लीलावती' नामक टीका भी (प्राकृत में) है।

इस ग्रन्थ में निमित्त के सब अंगों का निरूपण नहीं है। केवल जातकविषयक प्रश्नविद्या का वर्णन किया गया है। प्रश्नकर्ता के प्रश्न के अक्षरों से ही फलादेश बता दिया जाता है। इसमें समस्त पदार्थों को जीव, धातु और मूल—इन तीन भेदों में विभाजित किया गया है तथा प्रश्नों द्वारा निर्णय करने के लिये अवर्ग, कवर्ग आदि नामों से पांच वर्गों में नौ-नौ अक्षरों के समूहों में बाँटा गया है। इससे यह विद्या वर्गकेवली के नाम से कही जाती है। चूडामणिशास्त्र में भी यही पद्धति है।

इस ग्रंथ पर तीन अन्य टीकाओं के होने का उल्लेख मिलता है : १. चूडामणि, २. दर्शनज्योति जो लींबडी भंडार में है और ३. एक टीका जैसलमेर-भंडार में विद्यमान है।

यह ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

साणरुय (श्वानरुत) :

'साणरुय' नामक ग्रंथ[2] के कर्ता का नाम अज्ञात है परंतु मंगलाचरण में 'नमिऊण जिणेसर महावीरं' उल्लेख होने से किसी जैनाचार्य की रचना होने का निश्चय होता है। इसमें दो प्रकरण हैं : गमनागमन-प्रकरण (२० गाथाओं में) और जीवित मरणप्रकरण (१० गाथाओं में)। इस ग्रंथ में कुत्ते की भिन्न-भिन्न आवाजों के आधार से गमन-आगमन, जीवित-मरण इत्यादि बातों का निरूपण किया गया है।

---

१. यह ग्रंथ डा० ए० एस० गोपाणी द्वारा सम्पादित होकर सिंघी जैन ग्रंथ-माला, बंबई से सन् १९४५ में प्रकाशित हुआ है।

२. इसकी हस्तलिखित प्रति पाटन के भंडार में है।

सिद्धादेश :

'सिद्धादेश' नामक कृति संस्कृत भाषा मे ६ पत्रों मे है। इसकी प्रति पाटन के भडार में है। इसके कर्ता का नाम ज्ञात नहीं है। इसमे वृष्टि, वायु और बिजली के शुभाशुभ विषयों का विचार किया गया है।

उवस्सुइदार (उपश्रुतिद्वार) :

'उवस्सुइदार' नामक ३ पत्रो की प्राकृत भाषा की कृति पाटन के जैन ग्रंथ-भडार मे है। कर्ता का नाम निर्दिष्ट नहीं है। इसमें सुने गये शब्दों के आधार पर शुभाशुभ फलों का निर्णय किया गया है।

छायादार (छायाद्वार) :

किसी अज्ञातनामा विद्वान् द्वारा प्राकृत भाषा मे रची हुई 'छायादार' नामक २ पत्रो की १२३ गाथात्मक कृति अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। प्रति पाटन के जैन भडार में है। इसमें छाया के आधार पर शुभ अशुभ फलों का विचार किया गया है।

नाडीदार (नाडीद्वार) :

किसी अज्ञातनामा विद्वान् द्वारा रची हुई 'नाडीदार' नामक प्राकृत भाषा की ४ पत्रो की कृति पाटन के जैन भडार मे विद्यमान है। इसमे इडा, पिंगला और सुषुम्ना नाम की नाडियो के बारे मे विचार किया गया है।

निमित्तदार (निमित्तद्वार) :

'निमित्तदार' नामक प्राकृत भाषा की ४ पत्रो की कृति किसी अज्ञातनामा विद्वान् ने रची है। प्रति पाटन के ग्रंथ-भडार में है। इसमे निमित्तविषयक विवरण है।

रिट्ठदार (रिष्टद्वार) :

'रिट्ठदार' नामक प्राकृत भाषा की ७ पत्रो की कृति किसी अज्ञात विद्वान् द्वारा रची गई है। प्रति पाटन के भडार मे है। इसमे भविष्य में होनेवाली घटनाओं का—जीवन-मरण के फलादेश का निर्देश किया गया है।

पिपीलियानाण (पिपीलिकाज्ञान) :

किसी जैनाचार्य द्वारा रची हुई 'पिपीलियानाण' नाम की प्राकृतभाषा की ४ पत्रो की कृति पाटन के जैन भंडार मे है। इसमें किस रग की चीटिया किस

स्थान की ओर जाती है, यह देखकर भविष्य मे होनेवाली शुभाशुभ घटनाओं का वर्णन किया गया है।

प्रणष्टलाभादि :

'प्रणष्टलाभादि' नामक प्राकृत भाषा में रची हुई ५ पत्रों की प्रति पाटन के जैन ग्रंथ भडार में है। मगलाचरण मे 'सिद्धे, जिणे' आदि शब्दों का प्रयोग होने से इस कृति के जैनाचार्यरचित होने का निर्णय होता है। इसमें गतवस्तु-लाभ, बंध मुक्ति और रोगविषयक चर्चा है। जीवन और मरणसबधी विचार भी किया गया है।

नाडीवियार (नाडीविचार) :

किसी अज्ञात विद्वान् द्वारा प्राकृत भाषा में रची हुई 'नाडीविचार' नामक कृति पाटन के जैन भडार में है। इसमें किस कार्य में दायीं या बायीं नाडी शुभ किंवा अशुभ है, इसका विचार किया गया है।

मेघमाला :

अज्ञात ग्रथकार द्वारा प्राकृत भाषा में रची हुई ३२ गाथाओं की 'मेघ-माला' नाम की कृति पाटन के जैन ग्रथ-भडार में है। इसमें नक्षत्रों के आधार पर वर्षा के चिह्नों और उनके आधार पर शुभ अशुभ फलों की चर्चा है।

छींकविचार :

'छींकविचार' नामक कृति प्राकृत भाषा में है। लेखक का नाम निर्दिष्ट नहीं है। इसमें छींक के शुभ-अशुभ फलों के बारे में वर्णन है। इसकी प्रति पाटन के भडार में है।

प्रियकरनृपकथा (पृ० ६–७) में किसी प्राकृत ग्रथ का अवतरण देते हुए प्रत्येक दिशा और विदिशा में छींक का फल बताया गया है।

सिद्धपाहुड (सिद्धप्राभृत) :

जिस ग्रथ में अञ्जन, पादलेप, गुटिका आदि का वर्णन था वह 'सिद्धपाहुड' ग्रथ आज अप्राप्य है।

पादलिप्तसूरि और नागार्जुन पादलेप करके आकाशमार्ग से विचरण करते थे। आर्य सुस्थितसूरि के दो क्षुल्लक शिष्य आँखों में अजन लगाकर अदृश्य होकर दुष्काल में चद्रगुप्त राजा के साथ में बैठकर भोजन करते थे। 'समरा-

इच्चकहा' (भव ६, पत्र ५२१) मे चडरुद्र का कथानक आता है। वह 'परदिट्ठिमोहिणी' नामक चोरगुटिका को पानी मे घिस कर आखो में आजता था, जिससे लक्ष्मी अदृश्य हो जाती थी।

आर्य समितसूरि ने योगचूर्ण से नदी के प्रवाह को रोककर ब्रह्मद्वीप के पाच सौ तापसो को प्रतिबोध दिया था। ऐसे जो अजन, पादलेप और गुटिका के दृष्टात मिलते है वह 'सिद्धपाहुड' मे निर्दिष्ट बातो का प्रभाव था।

प्रश्नप्रकाश :

'प्रभावकचरित' (शृग ५, श्लो० ३४७) के कथनानुसार 'प्रश्नप्रकाश' नामक ग्रथ के कर्ता पादलिप्तसूरि थे। आगमो की चूर्णियो को देखने से मालूम होता है कि पादलिप्तसूरि ने 'कालज्ञान' नामक ग्रथ की रचना की थी।

आचार्य पादलिप्तसूरि ने 'गाहाजुअलेण' से शुरू होनेवाले 'वीरथय' की रचना की है और उसमे सुवर्णसिद्धि तथा व्योमसिद्धि (आकाशगामिनी विद्या) का विवरण गुप्त रीति से दिया है। यह स्तव प्रकाशित है।

पादलिप्तसूरि सगमसिंह के शिष्य वाचनाचार्य मंडनगणि के शिष्य थे। स्कदिलाचार्य के वे गुरु थे। 'कल्पचूर्णि' में इन्हें वाचक बताया गया है। हरिभद्रसूरि ने 'आवस्सयणिज्जुत्ति' (गा. ९४४) की टीका में वैनयिकी बुद्धि का उदाहरण देते हुए पादलिप्तसूरि का उल्लेख किया है।

वग्गकेवली (वर्गकेवली) :

वाराणसी-निवासी वासुकि नामक एक जैन श्रावक 'वग्गकेवली' नामक ग्रथ लेकर याकिनीधर्मसूनु आचार्य हरिभद्रसूरि के पास आया था। ग्रथ को लेकर आचार्यश्री ने उस पर टीका लिखी थी। बाद में ऐसे रहस्यमय ग्रथ का दुरुपयोग होने की संभावना से आचार्यश्री ने वह टीका-ग्रंथ नष्ट कर दिया, ऐसा उल्लेख 'कहावली' मे है।

नरपतिजयचर्या :

'नरपतिजयचर्या' के कर्ता धारानिवासी आम्रदेव के पुत्र जैन गृहस्थ नरपति हैं। इन्होने वि० स० १२३२ मे जब अणहिल्लपुर मे अजयपाल का शासन था तब यह कृति आशापल्ली मे बनाई।

कर्ता ने इस ग्रथ में मातृका आदि स्वरों के आधार पर शकुन देखने की और विशेषतः मान्त्रिक यंत्रों द्वारा युद्ध में विजय प्राप्त करने के हेतु शकुन देखने

की विधियों का वर्णन किया है। इसमें ब्रह्मयामल आदि सात यामलों का उल्लेख तथा उपयोग किया गया है। विषय का मर्म ८४ चक्रों के निदर्शन द्वारा सुस्पष्ट कर दिया गया है।

तान्त्रिकों में प्रचलित मारण, मोहन, उच्चाटन आदि षट्कर्मों तथा मन्त्रों का भी इसमें उल्लेख किया गया है।[1]

नरपतिजयचर्या-टीका :

हरिवंश नामक किसी जैनेतर विद्वान् ने 'नरपतिजयचर्या' पर संस्कृत में टीका रची है। कहीं-कहीं हिंदी भाषा और हिंदी पद्यों के अवतरण भी दिये हैं। यह टीका आधुनिक है। शायद ४०–५० वर्ष पहले लिखी गई होगी।

हस्तकांड :

'हस्तकाण्ड' नामक ग्रंथ की रचना आचार्य चन्द्रसूरि के शिष्य पार्श्वचन्द्र ने १०० पद्यों में की है। प्रारंभ में वर्धमान जिनेश्वर को नमस्कार करके उत्तर और अधर-संबंधी परिभाषा बताई है। इसके बाद लाभ-हानि, सुख-दुःख, जीवित-मरण, भूभंग (जमीन और छत्र का पतन), मनोगत विचार, वर्णों का धर्म, संन्यासी वगैरह का धर्म, दिशा, दिवस आदि का काल-निर्णय, अर्घकांड, गर्भस्थ संतान का निर्णय, गमनागमन, वृष्टि और शल्योद्धार आदि विषयों की चर्चा है। यह ग्रंथ अनेक ग्रंथों के आधार से रचा गया है।[2]

मेघमाला :

हेमप्रभसूरि ने 'मेघमाला' नामक ग्रंथ वि० सं० १३०५ के आस-पास में रचा है। इसमें दशगर्भ का बलविशोधक, जलमान, वातस्वरूप, विद्युत् आदि विषयों पर विवेचन है। कुल मिलाकर १९९ पद्य हैं।

ग्रंथ के अंत में कर्ता ने लिखा है :

> देवेन्द्रसूरिशिष्यैस्तु श्रीहेमप्रभसूरिभिः।
> मेघमालाभिधं चक्रे त्रिभुवनस्य दीपकम् ॥

यह ग्रंथ छपा नहीं है।

---

1. यह ग्रंथ वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई से प्रकाशित हुआ है।
2. श्रीचन्द्राचार्यशिष्येण पार्श्वचन्द्रेण धीमता।
   उद्धृत्यानेकशास्त्राणि हस्तकाण्डं विनिर्मितम् ॥१००॥

श्वानशकुनाध्याय :

संस्कृत भाषा मे रची हुई २२ पद्यो की 'श्वानशकुनाध्याय' नामक कृति ५ पत्रो मे है।[१] इसमे कर्ता का निर्देश नहीं है। इस ग्रथ मे कुत्ते की हलन-चलन और चेष्टाओ के आधार पर घर से निकलते हुए मनुष्य को प्राप्त होनेवाले शुभाशुभ फलो का निर्देश किया गया है।

नाडीविज्ञान :

'नाडीविज्ञान' नामक संस्कृत भाषा की ८ पत्रो की कृति ७८ पद्यो मे है। 'नत्वा वीर' ऐसा उल्लेख होने से प्रतीत होता है कि यह कृति किसी जैनाचार्य द्वारा रची गई है। इसमे देहस्थित नाडियो की गतिविधि के आधार पर शुभाशुभ फलो का विचार किया गया है।

---

१. यह प्रति पाटन के जैन भंडार में है।

बारहवां प्रकरण

स्वप्न

सुविणदार (स्वप्नद्वार):

प्राकृत भाषा की ६ पत्रो की 'सुविणदार' नाम की कृति पाटन के जैन भडार मे है। उसमे कर्ता का नाम नहीं है परतु अत मे 'पंचनमोक्कारमत-सरणाओ' ऐसा उल्लेख होने से इसके जैनाचार्य की कृति होने का निर्णय होता है। इसमे स्वप्नों के शुभाशुभ फलो का विचार किया गया है।

स्वप्नशास्त्र:

'स्वप्नशास्त्र' के कर्ता जैन गृहस्थ विद्वान् मत्री दुर्लभराज के पुत्र थे। दुर्लभराज और उनका पुत्र दोनो गुर्जरेश्वर कुमारपाल के मत्री थे।[1]

यह ग्रन्थ दो अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अधिकार में १५२ श्लोक शुभ स्वप्नो के विषय मे है और दूसरे अधिकार मे १५९ श्लोक अशुभ स्वप्नो के बारे में है। कुल मिलाकर ३११ श्लोको मे स्वप्नविषयक चर्चा की गई है।

सुमिणसत्तरिया (स्वप्नसप्ततिका):

किसी अज्ञात विद्वान् ने 'सुमिणसत्तरिया' नामक कृति प्राकृत भाषा मे ७० गाथाओ मे रची है। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

सुमिणसत्तरिया-वृत्ति:

'सुमिणसत्तरिया' पर खरतरगच्छीय सर्वदेवसूरिने वि० स० १२८७ मे जैसलमेर मे वृत्ति की रचना की है और उसमे स्वप्न-विषयक विशद विवेचन किया है। यह टीका ग्रथ भी अप्रकाशित है।

सुमिणवियार (स्वप्नविचार):

'सुमिणवियार' नामक ग्रन्थ जिनपालगणि ने प्राकृत मे ८७५ गाथाओ मे रचा है। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

---

१ श्रीमान् दुर्लभराजस्तदपत्य बुद्धिधामसुकवि.भूत्।
यं कुमारपालो महत्तमं क्षितिपति. कृतवान्॥

स्वप्नप्रदीप :

'स्वप्नप्रदीप' का दूसरा नाम 'स्वप्नविचार' है। इस ग्रन्थ की रुद्रपल्लीय-गच्छ के आचार्य वर्धमानसूरि ने रचना की है। कर्ता का समय ज्ञात नहीं है।

इस ग्रन्थ मे ४ उद्योत है : १. दैवतस्वप्नविचार श्लोक ४४, २. द्वासप्ततिमहास्वप्न श्लो० ४५ से ८०, ३. शुभस्वप्नविचार श्लो० ८१ से १२२ और ४. अशुभस्वप्नविचार श्लोक १२३ से १६२। ग्रन्थ अप्रकाशित है।

इनके अलावा स्वप्नचिंतामणि, स्वप्नलक्षण, स्वप्नसुभाषित, स्वप्नाधिकार, स्वप्नाध्याय, स्वप्नावली, स्वप्नाष्टक आदि ग्रन्थों के नाम भी मिलते हैं।

तेरहवां प्रकरण

चूडामणि

अर्हच्चूडामणिसार :

'अर्हच्चूडामणिसार' का दूसरा नाम है 'चूडामणिसार' या 'ज्ञानदीपक'।[1] इसमे कुल मिलाकर ७४ गाथाएँ है। इसके कर्ता भद्रबाहुस्वामी के होने का निर्देश किया गया है।

इस पर सस्कृत मे एक छोटी-सी टीका भी है।

चूडामणि :

'चूडामणि' नामक ग्रन्थ आज अनुपलब्ध है। गुणचन्द्रगणि ने 'कहारयणकोस' में चूडामणिशास्त्र का उल्लेख किया है। इसके आधार पर तीनों कालो का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता था।

'सुपासनाहचरिय' मे चपकमाला के अधिकार मे इस ग्रथ की महिमा बतायी गई है। चपकमाला 'चूडामणिशास्त्र' की विदुषी थी। उसका पति कौन होगा और उसे कितनी सतानें होगी, यह सब वह जानती थी।[2]

इस ग्रन्थ के आधार पर भद्रलक्षण ने 'चूडामणिसार' नामक ग्रंथ की रचना की है और पार्श्वचन्द्र मुनि ने भी इसी ग्रन्थ के आधार पर अपने 'हस्त-काण्ड' की रचना की है।

कहा जाता है कि द्रविड देश मे दुर्विनीत नामक राजा ने पाचवीं सदी मे ९६००० श्लोक-प्रमाण 'चूडामणि' नामक ग्रथ गद्य में रचा था।

---

१. यह ग्रंथ सिंघी सिरीज में प्रकाशित 'जयपाहुड' के परिशिष्ट के रूप में छपा है।

२. देखिए—लक्ष्मणगणिरचित सुपासनाहचरिय, प्रस्ताव २, सम्यक्त्वप्रशंसा-कथानक।

चन्द्रोन्मीलन :

'चन्द्रोन्मीलन' चूडामणि विषयक ग्रथ है। इसके कर्ता कौन थे और इसकी रचना कब हुई, यह ज्ञात नहीं हुआ है।

इस ग्रथ मे ५५ अधिकार हैं जिनमे मूलमत्रार्थसबध, वर्णवर्गपञ्च, स्वराक्षरानयन, प्रश्नोत्तर, अष्टक्षिप्रसमुद्धार, जीवित-मरण, जय-पराजय, धनागमनागमन, जीव धातु मूल, देवभेद, स्वरभेद, मनुष्ययोनि, पक्षिभेद, नारकभेद, चतुष्पदभेद, अपदभेद, कीटयोनि, घटितलोहभेद, धाम्याधम्ययोनि, मूलयोनि, चिन्तालकाश्चतुर्भेद, नामाक्षर स्वरवर्णप्रमाणसख्या, स्वरसख्या, अक्षरसख्या, गणचक्र, अभिघातप्रश्ने सिहावलोकितचक्र, धूमितप्रश्ने अश्वावलोकितचक्र, दग्धप्रश्ने मडूकप्लुतचक्र, वर्गानयन, अक्षरानयन, महाशास्त्रार्थविवशप्रकरण, शल्योद्धारनभश्चक्र, तस्करागमनप्रकरण, कालज्ञान, गमनागमन, गर्भागर्भप्रकरण, मैथुनाध्याय, भोजनाध्याय, छत्रभग, राष्ट्रनिर्णय, कोटभग, सुभिक्षवर्णन प्रावृट्कालजलदागम, कूपजलोद्देशप्रकरण, आरामप्रकरण, गृहप्रकरण, गुह्यज्ञानप्रकरण, पत्रलेखनज्ञान, पारधिप्रकरण, सधिशुद्धप्रकरण, विवाहप्रकरण, नष्ट-जातकप्रकरण, सफल निष्फल-विचार, मित्रभावप्रकरण, अन्ययोनिप्रकरण, ज्ञातनिर्णय, शिक्षाप्रकरण आदि का विचार किया गया है।[१]

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि :

'केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि' नामक शास्त्र के रचयिता आचार्य समन्तभद्र माने जाते हैं। इस ग्रथ के सपादक और अनुवादक प० नेमिचन्द्रजी ने बताया है कि ये समतभद्र 'आप्तमीमासा' के कर्ता से भिन्न हैं। उन्होने इनके 'अष्टाग-आयुर्वेद' और 'प्रतिष्ठातिलक' के कर्ता नेमिचन्द्र के भाई विजयप के पुत्र होने की सभावना की है।

अक्षरों के वर्गीकरण से इस ग्रथ का प्रारभ होता है। इसमे कार्य की सिद्धि, लाभालाभ, चुराई हुई वस्तु की प्राप्ति, प्रवासी का आगमन, रोगनिवारण, जय-पराजय आदि का विचार किया गया है। नष्ट जन्मपत्र बनाने की विधि भी इसमे बताई गई है। कहीं-कहीं तद्विषयक प्राकृत ग्रथों के उद्धरण भी मिलते हैं।[२]

---

१ इस ग्रथ की प्रति अहमदाबाद के ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामदिर में है।

२ यह ग्रथ भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से सन् १९५० में प्रकाशित हुआ है।

अक्षरचूडामणिशास्त्र .

'अक्षरचूडामणिशास्त्र' नामक ग्रन्थ का निर्माण किसने किया, यह ज्ञात नहीं है परंतु यह ग्रन्थ किसी जैनाचार्य का रचा हुआ है, यह ग्रन्थ के अंतरंग-निरीक्षण से स्पष्ट होता है। यह श्वेतांबराचार्यकृत है या दिगंबराचार्यकृत, यह कहा नहीं जा सकता। इस ग्रन्थ मे ३० पत्र हैं। भाषा संस्कृत है और कहीं-कहीं पर प्राकृत पद्य भी दिये गये हैं। ग्रंथ पूरा पद्य मे होने पर भी कहीं-कहीं कर्ता ने गद्य मे भी लिखा है। ग्रन्थ का प्रारंभ इस प्रकार है :

नमामि पूर्णचिद्रूपं नित्योदितमनावृतम्।
सर्वाकारा च भाषिण्याः सत्कालिङ्गितमीश्वरम् ॥
ज्ञानदीपकमालायाः वृत्तिं कृत्वा सदक्षरैः।
स्वरस्नेहेन संयोज्यं ज्वालयेदुत्तराधरैः ॥

इसमें द्वारगाथा इस प्रकार है :

अथातः संप्रवक्ष्यामि उत्तराधरमुत्तमम्।
येन विज्ञातमात्रेण त्रैलोक्यं दृश्यते स्फुटम् ॥

इस ग्रन्थ में उत्तराधरप्रकरण, लाभालाभप्रकरण, सुख दुःखप्रकरण, जीवितमरणप्रकरण, जयचक्र, जयाजयप्रकरण, दिनसंख्याप्रकरण, दिनवक्तव्यताप्रकरण, चिन्ताप्रकरण (मनुष्ययोनिप्रकरण, चतुष्पदयोनिप्रकरण, जीवयोनिप्रकरण, धाम्यधातुप्रकरण, धातुयोनिप्रकरण), नामबन्धप्रकरण, अकडमविवरण, स्थापना, सर्वतोभद्रचक्रविवरण, कचटादिवर्णाक्षरलक्षण, अहिवलये द्रव्यशल्याधिकार, इदाचक्र, पञ्चचक्रव्याख्या, वर्गचक्र, अर्घकाण्ड, जलयोग, नवोत्तर, जीव-धातु-मूलाक्षर, आलिंगितादिक्रम आदि विषयों का विवेचन है। ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।

चौदहवां प्रकरण

सामुद्रिक

अंगविज्जा (अङ्गविद्या) :

'अगविज्जा' एक अज्ञातकर्तृक रचना है। यह फलादेश का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रथ है, जो सास्कृतिक सामग्री से भरपूर है। 'अगविद्या' का उल्लेख अनेक प्राचीन ग्रन्थों मे मिलता है।[1] यह लोक प्रचलित विद्या थी, जिससे शरीर के लक्षणों को देखकर अथवा अन्य प्रकार के निमित्त या मनुष्य की विविध चेष्टाओ द्वारा शुभ-अशुभ फलों का विचार किया जाता था। 'अगविद्या' के अनुसार अग, स्वर, लक्षण, व्यञ्जन, स्वप्न, छींक, भौम और अतरिक्ष—ये आठ निमित्त के आधार है और इन आठ महानिमित्तो द्वारा भूत, भविष्य का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

यह 'अगविज्जा' पूर्वाचार्य द्वारा गद्य-पद्यमिश्रित प्राकृत भाषा मे प्रणीत है जो नवीं-दसवीं शताब्दी के पूर्व का ग्रन्थ है। इसमे ६० अध्याय है। आरभ मे अगविद्या की प्रशसा की गई है और उसके द्वारा सुख-दु:ख, लाभ-हानि, जय-पराजय, सुभिक्ष-दुर्भिक्ष, जीवन मरण आदि बातों का ज्ञान होना बताया गया है। ३० पटलो मे विभक्त आठवे अध्याय मे आसनो के अनेक भेद बताये गये है। नौवे अध्याय मे १८६८ गाथाऍ हैं, जिनमे २७० विषयो का निरूपण है। इन विषयो मे अनेक प्रकार की शय्या, आसन, यान, कुड्य, खभ, वृक्ष, वस्त्र, आभूषण, बर्तन, सिक्के आदि का वर्णन है। ग्यारहवे अध्याय मे स्थापत्यसबधी विषयो का महत्त्वपूर्ण वर्णन करते हुए तत्सबधी शब्दो की विस्तृत सूची दी गई है। उन्नीसवे अ[illegible]य मे राजोप-जीवी शिल्पी और उनके उपकरणों के सबध में उल्लेख है। इक्कीसवा अध्याय

---

१ 'पिडनिर्युक्ति-टीका' (४०८) में 'अगविज्जा' की निम्नलिखित गाथा उद्धृत है :

> इदिएहि दियत्थेहिं समाधान च अप्पणो।
> नाण पवत्तए जम्हा निमित्त तेण आहिय ॥

विजयद्वार नामक है जिसमे जय-पराजयसबधी कथन है। बाईसवे अध्याय में उत्तम फलों की सूची दी गई है। पच्चीसवें अध्याय मे गोत्रों का विस्तृत उल्लेख है। छब्बीसवे अध्याय मे नामो का वर्णन है। सत्ताईसवे अध्याय मे राजा, मन्त्री, नायक, भाण्डागारिक, आसनस्थ, महानसिक, गजाध्यक्ष आदि राजकीय अधिकारियों के पदो की सूची है। अट्ठाईसवे अध्याय में उद्योगी लोगों की महत्त्वपूर्ण सूची है। उनतीसवा अध्याय नगरविजय नाम का है, इसमे प्राचीन भारतीय नगरो के सबध मे बहुत-सी बातो का वर्णन है। तीसवे अध्याय मे आभूषणो का वर्णन है। बत्तीसवे अध्याय मे धान्य के नाम हैं। तैतीसवे अध्याय मे वाहनो के नाम दिये गये है। छत्तीसवे अध्याय मे दोहद-सबधी विचार है। सैतीसवे अध्याय मे १२ प्रकार के लक्षणों का प्रतिपादन किया गया है। चालीसवे अध्याय मे भोजनविषयक वर्णन है। इकतालीसवे अध्याय मे मूर्तिया, उनके प्रकार, आभूषण और अनेक प्रकार की क्रीडाओ का वर्णन है। तैंतालीसवे अध्याय मे यात्रासबधी वर्णन है। छियालीसवे अध्याय मे गृहप्रवेश-सम्बन्धी शुभ-अशुभफलों का वर्णन है। सैतालीसवे अध्याय मे राजाओ की सैन्ययात्रा सबधी शुभाशुभफलो का वर्णन है। चौवनवे अध्याय मे सार और असार वस्तुओं का विचार है। पचपनवे अध्याय में जमीन में गडी हुई धनराशि की खोज करने के सबध मे विचार है। अट्ठावनवे अध्याय में जैनधर्म मे निर्दिष्ट जीव और अजीव का विस्तार से वर्णन किया गया है। साठवे अध्याय मे पूर्वभव जानने की तरकीब सुझाई गई है।[1]

करलक्खण (करलक्षण) :

'करलक्खण' प्राकृत भाषा में रचा हुआ सामुद्रिक शास्त्रविषयक अज्ञातकर्तृक ग्रन्थ है। आद्य पद्य मे भगवान् महावीर को नमस्कार किया गया है। इसमें ६१ गाथाएँ हैं। इस कृति का दूसरा नाम 'सामुद्रिकशास्त्र' है।

इस ग्रन्थ मे हस्तरेखाओं का महत्त्व बताते हुए पुरुषो के लक्षण, पुरुषों का दाहिना और स्त्रियों का बाया हाथ देखकर भविष्य-कथन आदि विषयों का वर्णन किया गया है। विद्या, कुल, धन, रूप और आयु-सूचक पाच रेखाएँ होती है। हस्त रेखाओं से भाई-बहन, सतानों की सख्या का भी पता चलता है। कुछ रेखाएँ धन और व्रत-सूचक भी होती हैं। ६०वीं गाथा में वाचनाचार्य, उपा-

---

१ यह ग्रथ मुनि श्री पुण्यविजयजी द्वारा संपादित होकर प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, वाराणसी से सन् १९५७ में प्रकाशित हुआ है।

ध्याय और सूरिपद प्राप्त होने का 'यव' कहाँ होता है, यह बताया गया है। अंत मे मनुष्य की परीक्षा करके 'व्रत' देने की बात का स्पष्ट उल्लेख है।[1]

कर्ता ने अपने नाम का या रचना-समय का कोई उल्लेख नहीं किया है।

सामुद्रिक :

'सामुद्रिक' नाम की प्रस्तुत कृति सस्कृत भाषा मे है। पाटन के भडार मे विद्यमान इस कृति के ८ पत्रों मे पुरुष-लक्षण ३८ श्लोकों मे और स्त्री लक्षण भी ३८ पद्यो मे हैं। कर्ता का नामोल्लेख नहीं है परन्तु मगलाचरण मे 'आदिदेव प्रणम्यादौ' उल्लिखित होने से यह जैनाचार्य की रचना मालूम होती है। इसमे पुरुष और स्त्री की हस्तरेखा और शारीरिक गठन के आधार पर शुभाशुभ फलों का निर्देश किया गया है।

सामुद्रिकतिलक :

'सामुद्रिकतिलक' के कर्ता जैन गृहस्थ विद्वान् दुर्लभराज हैं। ये गुर्जरनृपति भीमदेव के अमात्य थे। इन्होंने १. गजप्रबध, २. गजपरीक्षा, ३. तुरगप्रबध, ४. पुरुष-स्त्रीलक्षण और ५. शकुनशास्त्र की रचना की थी, ऐसी मान्यता है। पुरुष-स्त्रीलक्षण को पूरी रचना नहीं हो सकी होगी इसलिये उनके पुत्र जगदेव ने उसका शेष भाग पूरा किया होगा, ऐसा अनुमान है।

इस ग्रन्थ मे पुरुषो और स्त्रियो के लक्षण ८०० आर्याओ मे दिये गये हैं। यह ग्रन्थ पाच अधिकारो मे विभक्त है जो क्रमश. २९८, ९९, ४६, १८८ और १४९ पद्यों मे हैं।

प्रारम्भ मे तीर्थंकर ऋषभदेव और ब्राह्मी की स्तुति करने के अनन्तर सामुद्रिकशास्त्र की उत्पत्ति बताते हुए क्रमश. कई ग्रन्थकारो के नामो का निर्देश किया गया है।

प्रथम अधिकार मे २९८ श्लोकों में पादतल से लेकर सिर के बाल तक का वर्णन और उनके फलों का निरूपण है।

---

१. यह ग्रंथ संस्कृत छाया, हिंदी अनुवाद, क्वचित् स्पष्टीकरण और पारिभाषिक शब्दो की अनुक्रमणिकापूर्वक प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी ने सपादित कर भारतीय ज्ञानपीठ, काशी से सन् १९५४ में दूसरा संस्करण प्रकाशित किया है। प्रथम सस्करण सन् १९४७ में प्रकाशित हुआ था।

द्वितीय अधिकार मे ९९ श्लोको मे क्षेत्रों की सहति, सार आदि आठ प्रकार और पुरुष के ३२ लक्षण निरूपित हैं।

तृतीय अधिकार में ४६ श्लोकों में आवर्त, गति, छाया, स्वर आदि विषयो की चर्चा है।

चतुर्थ अधिकार मे १४९ श्लोको मे स्त्रियों के व्यञ्जन, स्त्रियों की देव वगैरह बारह प्रकृतियाँ, पद्मिनी आदि के लक्षण इत्यादि विषय हैं।

अन्त मे १० पद्यों की प्रशस्ति है जो कवि जगदेव ने रची है। यह ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है।

सामुद्रिकशास्त्र :

अज्ञातकर्तृक 'सामुद्रिकशास्त्र' नामक कृति मे तीन अध्याय हैं जिनमे क्रमशः २४, १२७ और १२१ पद्य हैं। प्रारभ मे आदिनाथ तीर्थंकर को नमस्कार करके ३२ लक्षणों तथा नेत्र आदि का वर्णन करते हुए हस्तरेखा आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय मे शरीर के अवयवों का वर्णन है। तीसरे अध्याय मे स्त्रियों के लक्षण, कन्या कैसी पसन्द करनी चाहिये एव पद्मिनी आदि प्रकार वर्णित हैं।

१३ वीं शताब्दी में वायडगच्छीय जिनदत्तसूरिरचित 'विवेकविलास' के कई श्लोको से इस रचना के पद्य साम्य रखते हैं। यह ग्रथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

हस्तसंजीवन (सिद्धज्ञान) :

'हस्तसजीवन' अपर नाम 'सिद्धज्ञान' ग्रन्थ के कर्ता उपाध्याय मेघविजय-गणि हैं। इन्होंने वि० स० १७३५ में ५१९ पद्यों में सस्कृत मे इस ग्रन्थ की रचना की है। अष्टाग निमित्त को घटाने के उद्देश्य से समस्त ग्रन्थ को १. दर्शन, २. स्पर्शन, ३. रेखाविमर्शन और ४. विशेष—इन चार अधिकारों मे विभक्त किया है। अधिकारों के पद्यों की संख्या क्रमशः १७७, ५४, २४१ और ४७ है।

प्रारम्भ में शखेश्वर पार्श्वनाथ आदि को नमस्कार करके हस्त की प्रशसा हस्त-ज्ञानदर्शन, स्पर्शन और रेखाविमर्शन—इन तीन प्रकारों मे बताई है। हाथ की रेखाओं का ब्रह्मा द्वारा बनाई हुई अक्षय जन्मपत्री के रूप में उल्लेख किया गया है। हाथ में ३ तीर्थ और २४ तीर्थंकर हैं। पाँच अगुलियों के नाम, गुरु को हाथ बताने की विधि और प्रसगवश गुरु के लक्षण आदि बताये गये हैं।

उसके बाद तिथि, वार के ४७ चक्रों की जानकारी और हाथ के वर्ण आदि का वर्णन है।

दूसरे स्पर्शन अधिकार मे हाथ मे आठ निमित्त किस प्रकार घट सकते हैं, यह बताया गया है जिससे शकुन, शकुनशलाका, पाशककेवली आदि का विचार किया जाता है। चूडामणि शास्त्र का भी यहाँ उल्लेख है।

तीसरे अधिकार मे । .न-भिन्न रेखाओं का वर्णन है। आयुष्य, सतान, स्त्री, भाग्योदय, जीवन की मुख्य घटनाओ और सासारिक सुखो के बारे मे गवेषणापूर्वक ज्ञान कराया गया है।

चतुर्थ अधिकार मे विश्वा—लम्बाई, नाखून, आवर्तन के लक्षण, स्त्रियों की रेखाएँ, पुरुष के बाये हाथ का वर्णन आदि बातें है।[1]

हस्तसंजीवन-टीका :

'हस्तसजीवन' पर उपाध्याय मेघविजयजी ने वि० स० १७३५ में 'सामुद्रिक-लहरी' नाम से ३८०० श्लोक-प्रमाण स्वोपज्ञ टीका की रचना की है। कर्ता ने यह ग्रन्थ जीवराम कवि के आग्रह से रचा है।

इस टीकाग्रन्थ मे सामुद्रिक-भूषण, शैव-सामुद्रिक आदि ग्रन्थों का परिचय दिया है। इसमे खास करके ४२ ग्रन्थो की साक्षी है। हस्तबिम्ब, हस्तचिह्नसूत्र, कररेहापयरण, विवेकविलास आदि ग्रन्थो का उपयोग किया है।

अङ्गविद्याशास्त्र :

किसी अज्ञातनामा विद्वान् ने 'अगविद्याशास्त्र' नामक ग्रथ की रचना की है। ग्रथ अपूर्ण है। ४४ श्लोक तक ग्रन्थ प्राप्त हुआ है। इसकी टीका भी रची गई है परन्तु यह पता नहीं कि वह ग्रन्थकार की स्वोपज्ञ है या किसी अन्य विद्वान् द्वारा रचित है। ग्रथ जैनाचार्यरचित मालूम होता है। यह 'अगविज्जा' के अन्त मे सटीक छपा है।

इस ग्रन्थ मे अशुभस्थानप्रदर्शन, पुंसंज्ञक अग, स्त्रीसज्ञक अंग, भिन्न भिन्न फलनिर्देश, चौरज्ञान, अपहृत वस्तु का लाभालाभज्ञान, पीडित का मरणज्ञान, भोजनज्ञान, गर्भिणीज्ञान, गर्भग्रहण में कालज्ञान, गर्भिणी को किस नक्षत्र मे सन्तान का जन्म होगा—इन सब विषयों पर विवेचन है।

---

१. यह ग्रन्थ सटीक मोहनलालजी ग्रन्थमाला, इदौर से प्रकाशित हुआ है। मूल ग्रन्थ गुजराती अनुवाद के साथ साराभाई नवाब, अहमदाबाद ने भी प्रकाशित किया है।

पन्द्रहवां प्रकरण

रमल

पासों पर बिन्दु के आकार के कुछ चिह्न बने रहते हैं। पासे फेंकने पर उन चिह्नों की जो स्थिति होती है उसके अनुसार हरएक प्रश्न का उत्तर बताने की एक विद्या है। उसे पाशकविद्या या रमलशास्त्र कहते है।

'रमल' शब्द अरबी भाषा का है और इस समय संस्कृत मे जो ग्रन्थ इस विषय के प्राप्त होते हैं उनमें अरबी के ही पारिभाषिक शब्द व्यवहृत किये मिलते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि यह विद्या अरब के मुसलमानो से आयी है। अरबी ग्रन्थों के आधार पर संस्कृत में कई ग्रन्थ बने हैं, जिनके विषय में यहाँ कुछ जानकारी प्रस्तुत की जा रही है।

रमलशास्त्र :

'रमलशास्त्र' की रचना उपाध्याय मेघविजयजी ने वि० सं० १७३५ में की है। उन्होंने अपने 'मेघमहोदय' ग्रन्थ मे इसका उल्लेख किया है। अपने शिष्य मुनि मेरुविजयजी के लिये उपाध्यायजी ने इस कृति का निर्माण किया था।

यह ग्रंथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

रमलविद्या :

'रमलविद्या' नामक ग्रन्थ की रचना मुनि भोजसागर ने १८ वीं शताब्दी मे की है। इस ग्रन्थ में कर्ता ने निर्देश किया है कि आचार्य कालकसूरि इस विद्या को यवनदेश से भारत में लाये। यह ग्रन्थ अप्रकाशित है।

मुनि विजयदेव ने भी 'रमलविद्या' सम्बन्धी एक ग्रन्थ की रचना की थी, ऐसा उल्लेख मिलता है।

पाशककेवली :

'पाशककेवली' नामक ग्रथ की रचना गर्गाचार्य ने की है। इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है :

जैन आसीद् जगद्वन्द्यो गर्गनामा महामुनिः ।
तेन स्वयं निर्णीतं यत् सत्पाशाऽत्र केवली ॥
एतज्ज्ञानं महाज्ञानं जैनर्षिभिरुदाहृतम् ।
प्रकाश्य शुद्धशीलाय कुलीनाय महात्मभिः ॥

'मदनकामरत्न' ग्रथ मे भी ऐसा उल्लेख मिलता है। यह ग्रन्थ सस्कृत में था या प्राकृत मे, यह ज्ञात नहीं है। गर्ग मुनि कब हुए, यह भी अज्ञात है। ये अति प्राचीन समय में हुए होगे, ऐसा अनुमान है। इन्होंने एक 'सहिता' ग्रन्थ की भी रचना की थी।

पाशाकेवली :

अज्ञातकर्तृक 'पाशाकेवली' ग्रन्थ[1] मे सकेत के पारिभाषिक शब्द अदअ, अअय, अयय आदि के अक्षरो के कोष्ठक दिये गये हैं। उन कोष्ठकों के अ प्रकरण, व प्रकरण, य प्रकरण, द प्रकरण—इस प्रकार शीर्षक देकर शुभाशुभ फल सस्कृत भाषा में बताये गये हैं।

ग्रन्थ के प्रारम्भ मे इस प्रकार लिखा है :

संसारपाशछित्यर्थं नत्वा वीरं जिनेश्वरम् ।
आशापाशावने मुक्तः पाशाकेवलिः कथ्यते ॥

ग्रंथ अप्रकाशित है।

---

१. इसकी १० पत्रों की प्रति ला० द० भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद में है।

सोलहवां प्रकरण

लक्षण

लक्षणमाला :

आचार्य जिनभद्रसूरि ने 'लक्षणमाला' नामक ग्रथ की रचना की है। भाडारकर की रिपोर्ट मे इस ग्रथ का उल्लेख है।

लक्षणसंग्रह :

आचार्य रत्नशेखरसूरि ने 'लक्षणसग्रह' नामक ग्रथ की रचना की है।[1] रत्नशेखरसूरि १६ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध मे हुए है।

लक्ष्य-लक्षणविचार :

आचार्य हर्षकीर्तिसूरि ने 'लक्ष्य-लक्षणविचार' नामक ग्रथ की रचना की है।[2] हर्षकीर्तिसूरि १७ वीं सदी मे विद्यमान थे। इन्होने कई ग्रथ रचे है।

लक्षण :

किसी अज्ञातनामा मुनि ने 'लक्षण' नामक ग्रथ की रचना की है।[3]

लक्षण-अवचूरि :

'लक्षण' ग्रथ पर किसी अज्ञातनामा जैन मुनि ने 'अवचूरि' रची है।[4]

लक्षणपङ्क्तिकथा :

दिगबराचार्य श्रुतसागरसूरि ने 'लक्षणपक्तिकथा' नामक ग्रथ की रचना की है।[5]

---

१. इसका उल्लेख जैन ग्रंथावली, पृ० ९६ में है।

२ इस ग्रथ का उल्लेख सूरत-भंडार की सूची में है।

३. यह ग्रंथ बडौदा के हंसविजयजी ज्ञानमदिर में है।

४. बड़ौदा के हंसविजयजी ज्ञानमदिर में यह ग्रंथ है।

५. जिनरत्नकोश में इसका उल्लेख है।

सत्रहवां प्रकरण

आय

आयनाणतिलय (आयज्ञानतिलक) :

'आयनाणतिलय' प्रश्न-प्रणाली का ग्रंथ है। भट्ट वोसरि ने इस कृति को २५ प्रकरणो मे विभाजित कर कुल ७५० प्राकृत गाथाओं मे रचा है।

भट्ट वोसरि दिगम्बर जैनाचार्य दामनदि के शिष्य थे। मल्लिषेणसूरि ने, जो सन् १०४३ मे विद्यमान थे, 'आयज्ञानतिलक' का उल्लेख किया है। इससे भट्ट वोसरि उनसे पहिले हुए यह निश्चित है।

भाषा की दृष्टि से यह ग्रथ ई० १०वीं शताब्दी मे रचित मालूम होता है। प्रश्नशास्त्र की दृष्टि से यह कृति अतीव महत्त्वपूर्ण है। इसमें ध्वज, धूम, सिंह, गज, खर, स्वान, वृष और ध्वाक्ष—इन आठ आयों द्वारा प्रश्नफलो का रहस्यात्मक एव सुदर वर्णन किया है। ग्रथ के अंत मे इस प्रकार उल्लेख है : **इति दिगम्बराचार्यपण्डितदामनन्दिशिष्यभट्टवोसरिविरचिते...।**

यह ग्रथ अप्रकाशित है।[1]

'आयज्ञानतिलक' पर भट्ट वोसरि ने १२०० श्लोक-प्रमाण स्वोपज्ञ टीका लिखी है, जो इस विषय मे उनके विशद ज्ञान का परिचय देती है।

आयसद्भाव :

'आयसद्भाव' नामक सस्कृत ग्रथ की रचना दिगम्बराचार्य जिनसेनसूरि के शिष्य आचार्य मल्लिषेण ने की है। ग्रथकार सस्कृत, प्राकृत भाषा के उद्भट विद्वान् थे। वे धारवाड़ जिले के अतर्गत गदग तालुके के निवासी थे। उनका समय सन् १०४३ (वि० स० ११००) माना जाता है।

कर्ता ने प्रारभ मे ही सुग्रीव आदि मुनियों द्वारा 'आयसद्भाव' की रचना करने का उल्लेख इस प्रकार किया है :

---

१. इसकी वि० सं० १४४१ में लिखी गई हस्तलिखित प्रति मिलती है।

सुग्रीवादिमुनीन्द्रैः रचितं शास्त्रं यदायसद्भावम्।
तत् संप्रत्यर्थाभिर्विरच्यते मल्लिषेणेन ॥

इन्होने भट्ट वोसरि का भी उल्लेख किया है। उन ग्रथो से सार ग्रहण करके मल्लिषेण ने १९५ श्लोकों मे इस ग्रथ की रचना की है। यह ग्रथ २० प्रकरणो मे विभक्त है। कर्ता ने इसमे अष्ट-आय—१ ध्वज, २ धूम, ३. सिंह, ४. मण्डल, ५. वृष, ६. खर, ७. गज, ८. वायस—के स्वरूप और फलो का सुदर विवेचन किया है। आयो की अधिष्ठात्री पुलिन्दिनी देवी का इसमे स्मरण किया गया है।

ग्रंथ के अत मे कर्ता ने कहा है कि इस कृति से भूत, भविष्य और वर्तमान काल का ज्ञान होता है। अन्य व्यक्ति को विद्या नहीं देने के लिये भी अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया है:

अन्यस्य न दातव्यं मिथ्यादृष्टेस्तु विशेषतः।
शपथं च कारयित्वा जिनवरदेव्याः पुरः सम्यक्॥

यह ग्रथ प्रकाशित नहीं हुआ है।

आयसद्भाव-टीका :

'आयसद्भाव' पर १६०० श्लोक-प्रमाण अज्ञातकर्तृक टीका की रचना हुई है। यह टीका भी अप्रकाशित है।

———

अठारहवाँ प्रकरण

अर्घ

अग्घकंड (अर्घकाण्ड) :

आचार्य दुर्गदेव ने 'अग्घकंड' नामक ग्रंथ का ग्रहचार के आधार पर प्राकृत मे निर्माण किया है। इस ग्रन्थ से यह पता लगाया जा सकता है कि कौन-सी वस्तु खरीदने से और कौन-सी वस्तु बेचने से लाभ हो सकता है।[1]

'अग्घकंड' का उल्लेख 'विशेषनिशीथचूर्णि' मे मिलता है। ऐसी कोई प्राचीन कृति होगी जिसके आधार पर दुर्गदेव ने इस कृति का निर्माण किया है।

कई ज्योतिष-ग्रंथों मे 'अर्घ' का स्वतन्त्र प्रकरण रहता है किन्तु स्वतन्त्र कृति के रूप मे यही एक ग्रंथ प्राप्त हुआ है।

---

१ इमं दव्वं विक्कीणाहि, इम वा कीणाहि।

उन्नीसवाँ प्रकरण

कोष्ठक

कोष्ठकचिन्तामणि :

आगमगच्छीय आचार्य देवरत्नसूरि के शिष्य आचार्य शीलसिंहसूरि ने प्राकृत में १५० पद्यों मे 'कोष्ठकचिन्तामणि' नामक ग्रथ की रचना की है। सभवतः १३ वीं शताब्दी मे इसकी रचना की गई होगी, ऐसा प्रतीत होता है।

इस ग्रथ में ९, १६, २० आदि कोष्ठकों में जिन जिन अकों को रखने का विधान किया है उनको चारों ओर से गिनने पर जोड़ एक समान आता है। इस प्रकार पंदरिया, बीसा, चौतीसा आदि शताधिक यन्त्रों के बारे मे विवरण है।

यह ग्रथ अभी प्रकाशित नहीं हुआ है।

कोष्ठकचिन्तामणि-टीका :

शीलसिंहसूरि ने अपने 'कोष्ठकचिंतामणि' ग्रथ पर सस्कृत मे वृत्ति भी रची है।[1]

---
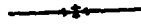
1. मूल ग्रन्थसहित इस टीका की १०१ पत्रों की करीब १६ वी शताब्दी मे लिखी गई प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद में है।

बीसवाँ प्रकरण

आयुर्वेद

सिद्धान्तरसायनकल्प :

दिगम्बराचार्य उग्रादित्य ने 'कल्याणकारक' नामक वैद्यकग्रथ की रचना की है। उसके बीसवें परिच्छेद (श्लो० ८६) मे समतभद्र ने 'सिद्धान्तरसायन-कल्प' की रचना की, ऐसा उल्लेख है। इस अनुपलब्ध ग्रन्थ के जो अवतरण यत्र-तत्र मिलते हैं वे यदि एकत्रित किये जायँ तो दो-तीन हजार श्लोक-प्रमाण हो जायँ। कई विद्वान् मानते हैं कि यह ग्रथ १८००० श्लोक-प्रमाण था। इसमें आयुर्वेद के आठ अङ्गो—काय, बल, ग्रह, ऊर्ध्वांग, शल्य, दंष्ट्रा, जरा और विष—के विषय मे विवेचन था जिसमें जैन पारिभाषिक शब्दों का ही उपयोग किया गया था। इन शब्दो के स्पष्टीकरण के लिये अमृतनदि ने एक कोश-ग्रन्थ की रचना भी की थी जो पूरा प्राप्त नहीं हुआ है।

पुष्पायुर्वेद :

आचार्य समतभद्र ने परागरहित १८००० प्रकार के पुष्पों के बारे में 'पुष्पायुर्वेद' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। वह ग्रन्थ आज नहीं मिलता है।

अष्टांगसंग्रह :

समतभद्राचार्य ने 'अष्टाङ्गसग्रह' नामक आयुर्वेद का विस्तृत ग्रथ रचा था, ऐसा 'कल्याणकारक' के कर्ता उग्रादित्य ने उल्लेख किया है। उन्होंने यह भी कहा है कि उस 'अष्टाङ्गसग्रह' का अनुसरण करके मैंने 'कल्याणकारक' ग्रन्थ सक्षेप मे रचा है।[1]

---

१. अष्टाङ्गमप्यखिलमत्र समन्तभद्रैः,
प्रोक्त सविस्तरमथो विभवैः विशेषात्।
संक्षेपतो निगदितं तदिहात्मशक्त्या,
कल्याणकारकमशेषपदार्थयुक्तम् ॥

निम्नोक्त ग्रन्थो और ग्रथकारो के नामो का उल्लेख कल्याणकारक-कार ने किया है :

१.	शालाक्यतत्र	—पूज्यपाद
२.	शल्यतत्र	—पात्रकेसरी
३	विष एव उग्रग्रहशमनविधि	—सिद्धसेन
४	काय-चिकित्सा	—दशरथ
५.	बाल-चिकित्सा	—मेघनाद
६	वैद्य, वृष्य तथा दिव्यामृत	—सिंहनाद

निदानमुक्तावली :

वैद्यक-विषयक 'निदानमुक्तावली' नामक ग्रन्थ मे १ कालारिष्ट और २. स्वस्थारिष्ट—ये दो निदान है। मगलाचरण में यह श्लोक है :

रिष्टं दोषं प्रवक्ष्यामि सर्वशास्त्रेषु सम्मतम् ।
सर्वप्राणिहितं दृष्टं कालारिष्टं च निर्णयम् ॥

ग्रन्थ मे पूज्यपाद का नाम नहीं है परन्तु प्रकरण-समाप्ति-सूचक वाक्य 'पूज्यपादविरचितम्' इस प्रकार है।[1]

मदनकामरत्न :

'मदनकामरत्न' नामक ग्रन्थ को कामशास्त्र का ग्रन्थ भी कह सकते हैं क्योंकि हस्तलिखित प्रति के ६४ पत्रों में से केवल १२ पत्र तक ही महापूर्ण चद्रोदय, लोह, अग्निकुमार, ज्वरबलफणिगरुड, कालकूट, रत्नाकर, उदयमार्तण्ड, सुवर्णमाल्य, प्रतापलकेश्वर, बालसूर्योदय और अन्य ज्वर आदि रोगों के विनाशक रसों का तथा कर्पूरगुण, मृगहारभेद, कस्तूरीभेद, कस्तूरीगुण, कस्तूर्यनुपान, कस्तूरी-परीक्षा आदि का वर्णन है। शेष पत्रो में कामदेव के पर्यायवाची शब्दो के उल्लेख के साथ ३४ प्रकार के कामेश्वररस का वर्णन है। साथ ही वाजीकरण, औषध, तेल, लिंगवर्धनलेप, पुरुषवश्यकारी औषध, स्त्रीवश्यभैषज, मधुरस्वरकारी औषध और गुटिका के निर्माण की विधि बताई गई है। कामसिद्धि के लिये छः मन्त्र भी दिये गये है।

समग्र ग्रथ पद्यबद्ध है। इसके कर्ता पूज्यपाद माने जाते हैं परन्तु वे देवनदि से भिन्न हो ऐसा प्रतीत होता है। ग्रन्थ अपूर्ण-सा दिखाई देता है।

---

१. इसकी हस्तलिखित ६ पत्रों की प्रति मद्रास के राजकीय पुस्तकालय में है।

नाडीपरीक्षा :

आचार्य पूज्यपाद ने 'नाडीपरीक्षा' नामक ग्रन्थ की रचना की है, ऐसा 'जिनरत्नकोश' पृ० २१० मे उल्लेख है। यह कृति उनके किसी वैद्यक ग्रन्थ के विभाग के रूप मे भी हो सकती है।

कल्याणकारक :

पूज्यपाद ने 'कल्याणकारक' नामक वैद्यक-ग्रथ की रचना की थी। यह ग्रथ अनुपलब्ध है। इसमे प्राणियों के देहज दोषो को नष्ट करने की विधि बतायी गई थी। ग्रन्थकार ने अपने ग्रथ मे जैन प्रक्रिया का ही अनुसरण किया था। जैन प्रक्रिया कुछ भिन्न है, जैसे—'सुत केसरिगन्धकं मृगनवासारद्रुमम्'—यह रस-सिन्दूर तैयार करने का पाठ है। इसमें जैन तीर्थकरो के भिन्न-भिन्न चिह्नों से परिभाषाएँ बतायी गई हैं। मृग से १६ का अर्थ लिया गया है क्योकि सोलहवें तीर्थंकर का लाञ्छन मृग है।

मेरुदण्डतन्त्र :

गुम्मटदेव मुनि ने 'मेरुदण्डतत्र' नामक वैद्यक-ग्रन्थ की रचना की है। इसमे उन्होने पूज्यपाद के नाम का आदरपूर्वक उल्लेख किया है।

योगरत्नमाला-वृत्ति :

नागार्जुन ने 'योगरत्नमाला' नामक वैद्यकग्रन्थ की रचना की है। उस पर गुणाकरसूरि ने वि० स० १२९६ में वृत्ति रची है, ऐसा पिटर्सन की रिपोर्ट[1] से ज्ञात होता है।

अष्टाङ्गहृदय-वृत्ति :

वाग्भट नामक विद्वान् ने 'अष्टाङ्गहृदय' नामक वैद्य-विषयक प्रामाणिक ग्रन्थ रचा है। उस पर आशाधर नामक दिगम्बर जैन गृहस्थ विद्वान् ने 'उद्द्योत' वृत्ति की रचना की है। यह टीका-ग्रन्थ करीब वि० स० १२९६ (सन् १२४०) मे लिखा गया है। पिटर्सन ने आशाधर के ग्रन्थों मे इसका भी उल्लेख किया है।

योगशत-वृत्ति :

वररुचि नामक विद्वान् ने 'योगशत' नामक वैद्यक-ग्रन्थ की रचना की है। उस पर पूर्णसेन ने वृत्ति रची है। इसमे सभी प्रकार के रोगो के औषध बताये गये है।

---

१ पिटर्सन : रिपोर्ट ३, एपेण्डिक्स, पृ० ३३० और रिपोर्ट ४, पृ० २६.

योगचिन्तामणि :

नागपुरीय तपागच्छ के आचार्य चन्द्रकीर्तिसूरि के शिष्य आचार्य हर्ष-कीर्तिसूरि ने 'योगचिन्तामणि' नामक वैद्यक-ग्रन्थ की रचना करीब वि० स० १६६० मे की है। यह कृति 'वैद्यकसारसग्रह' नाम से भी प्रसिद्ध है।

आत्रेय, चरक, वाग्भट, सुश्रुत, अश्वि, हारीतक,वृन्द, कलिक, भृगु, भेल आदि आयुर्वेद के ग्रथो का रहस्य प्राप्त कर इस ग्रथ का प्रणयन किया गया है, ऐसा ग्रन्थकार ने उल्लेख किया है।[1]

इस ग्रन्थ के सकलन मे ग्रन्थकार की उपकेशगच्छीय विद्यातिलक वाचक ने सहायता की थी।[2]

ग्रन्थ मे २९ प्रकरण हैं, जिनमे निम्नलिखित विषय हैं ·

१. पाकाधिकार, २. पुष्टिकारकयोग, ३. चूर्णाधिकार, ४ क्वाथाधिकार, ५ घृताधिकार, ६. तैलाधिकार, ७. मिश्रकाधिकार, ८. सखद्रावविधि, ९ गन्धकशोधन, १० शिलाजित्सत्त्ववर्णादिधातु-मारणाधिकार, ११ मडूरपाक, १२. अभ्रकमारण, १३ पारदमारणरादिको हिंगूलसे पारदसाधन, १४ हरतालमारण-नाग-ताम्राकाढणविधि, १५. सोवनमाषीमणशिलादिशोधन-लोकनाथ-रस, १६ आसवाधिकार, १७. कल्याणगुल-जवीरद्रवलेपाधिकार-केशकल्प-लेप-रोमशातन, १८. मलम-रुधिरस्राव, १९. वमन-विरेचनविधि, २० बफारो अधूलो नासिकाया मस्तकरोधबन्धन, २१. तक्रपानविधि, २२. ज्वरहरादि-साधारणयोग, २३ वर्धमान-हरीतकी-त्रिफलायोग-त्रिगडू-आसगन्ध, २४ काय-चिकित्सा-एरण्डतैल-हरीतकी-त्रिफलादिसाधारणयोग, २५. डभ-विषचिकित्सा-स्त्री-कुक्षिरोग चिकित्सा, २६. गर्भनिवारण-कर्मविपाक, २७ (वन्ध्या) स्त्री रोगा-धिकार सर्वरोग-सर्वदोषशान्तिकरण, २८. नाडीपरीक्षा-मूत्रपरीक्षा, २९. नेत्र-परीक्षा-जिह्वापरीक्षादि।

---

१ आत्रेयका चरक-वाग्भट-सुश्रुताश्वि-हारीत-वृन्द-कलिका-भृगु-भेड (ल)पूर्वाः।
येऽमी निदानयुतकर्मविपाकमुख्यास्तेषां मत समनुसृत्य मया कृतोऽयम्॥

२ श्रीमदुपकेशगच्छीयविद्यातिलकवाचका ।
किञ्चित् सकलितो योगवार्ता किञ्चित् कृतानि च॥

वैद्यवल्लभ :

मुनि हितरुचि[1] के शिष्य मुनि हस्तिरुचि ने वैद्यवल्लभ नामक आयुर्वेदविषयक ग्रन्थ की रचना की है। यह ग्रन्थ पद्य मे है तथा आठ अध्यायों मे विभक्त है। इनमे निम्नलिखित विषय हैं :

१ सर्वज्वरप्रतीकार (पद्य २८), २. सर्वस्त्रीरोगप्रतीकार (४१), ३ कास-क्षय-शोफ-फिरङ्ग-वायु-पामा-दद्रु-रक्त-पित्तप्रभृतिरोगप्रतीकार (३०), ४ धातु-प्रमेह-मूत्रकृच्छ्र-लिङ्गवर्धन-वीर्यवृद्धि-बहुमूत्रप्रभृतिरोगप्रतीकार (२६), ५. गुद-रोगप्रतीकार (२४), ६. कुष्टविष-बरहल्ले-मन्दाग्नि-कमलोदरप्रभृतिरोगप्रतीकार (२६), ७. शिरकर्णाक्षिरोगप्रतीकार (४२), ८. पाक-गुटिकाद्यधिकार-शेष-योगनिरूपण।

द्रव्यावली-निघण्टु :

मुनि महेन्द्र ने 'द्रव्यावली-निघण्टु' नामक ग्रथ की रचना की है। यह वनस्पतियो का कोशग्रन्थ मालूम पड़ता है। ग्रन्थ ९०० श्लोक-परिमाण है।

सिद्धयोगमाला :

सिद्धर्षि मुनि ने 'सिद्धयोगमाला' नामक वैद्यक-विषयक ग्रन्थ की रचना की है। यह कृति ५०० श्लोक-परिमाण है। 'उपमितिभवप्रपञ्चाकथा' के रचयिता सिद्धर्षि ही इस ग्रन्थ के कर्ता हो तो यह कृति १०वीं शताब्दी मे रची गई, ऐसा कह सकते है।

रसप्रयोग :

सोमप्रभाचार्य ने 'रसप्रयोग' नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसमे रसका निरूपण और पारे के १८ सस्कारो का वर्णन होगा, ऐसा मालूम होता है। ये सोमप्रभाचार्य कब हुए यह अज्ञात है।

रसचिन्तामणि :

अनन्तदेवसूरि ने 'रसचिन्तामणि' नामक ९०० श्लोक-परिमाण ग्रथ रचा है। ग्रथ देखने मे नहीं आया है।

---

१. तपागच्छ के विजयसिंहसूरि के शिष्य उदयरुचि के शिष्य का नाम भी हितरुचि था। ये वही हों तो इन्होंने 'षडावश्यक' पर वि० सं० १६९७ में व्याख्या लिखी है।

माघराजपद्धति :

माघचन्द्रदेव ने 'माघराजपद्धति' नामक १०००० श्लोक प्रमाण ग्रंथ रचा है। यह ग्रंथ भी देखने में नहीं आया है।

आयुर्वेदमहोदधि :

सुषेण नामक विद्वान् ने 'आयुर्वेदमहोदधि' नामक ११०० श्लोक प्रमाण ग्रंथ का निर्माण किया है। यह निघण्टु-कोशात्मक है।

चिकित्सोत्सव :

हंसराज नामक विद्वान् ने 'चिकित्सोत्सव' नामक १७०० श्लोक प्रमाण ग्रंथ का निर्माण किया है। यह ग्रन्थ देखने में नहीं आया है।

निघण्टुकोश :

आचार्य अमृतनंदि ने जैन दृष्टि से आयुर्वेद की परिभाषा बताने के लिये 'निघण्टुकोश' की रचना की है। इस कोश में २२००० शब्द हैं। यह मकार तक ही है। इसमें वनस्पतियों के नाम जैन परिभाषा के अनुसार दिये हैं।

कल्याणकारक :

आचार्य उग्रादित्य ने 'कल्याणकारक' नामक आयुर्वेदविषयक ग्रंथ की रचना की है, जो आज उपलब्ध है। ये श्रीनंदि के शिष्य थे। इन्होंने अपने ग्रंथ में पूज्यपाद, समंतभद्र, पात्रस्वामी, सिद्धसेन, दशरथगुरु, मेघनाद, सिंहसेन आदि आचार्यों का उल्लेख किया है। 'कल्याणकारक' की प्रस्तावना में ग्रंथकार का समय छठी शती से पूर्व होने का उल्लेख किया गया है परन्तु उग्रादित्य ने ग्रंथ के अन्त में अपने समय के राजा का उल्लेख इस प्रकार किया है : इत्यशेष-विशेषविशिष्टदुष्टपिशिताशिवैद्यशास्त्रेषु मांसनिराकरणार्थमुग्रादित्याचार्येण नृपतुङ्ग-वल्लभेन्द्रसभायामुद्घोषितं प्रकरणम्।

नृपतुङ्ग राष्ट्रकूट अमोघवर्ष का नाम था और वह नवीं शताब्दी में विद्यमान था। इसलिये उग्रादित्य का समय भी नवीं शती ही हो सकता है। परन्तु इस ग्रंथ में निरूपित विषय की दृष्टि आदि से उनका यह समय भी ठीक नहीं जँचता, क्योंकि रसयोग की चिकित्सा का व्यापक प्रचार ११ वीं शती के बाद ही मिलता है। इसलिये यह ग्रंथ कदाचित् १२ वीं शती से पूर्व का नहीं है।

उग्रादित्य ने प्रस्तुत कृति मे मधु, मद्य और मास के अनुपान को छोड़कर औषध विधि बतायी है। रोगक्रम या रोग-चिकित्सा का वर्णन जैनेतर आयुर्वेद के ग्रथो से भिन्न है। इसमे वात, पित्त और कफ की दृष्टि से रोगो का उल्लेख है। वातरोगो में वातसबधी सब रोग लिखने का यत्न किया है। पित्तरोगो मे ज्वर, अतिसार का उल्लेख किया है। इसी प्रकार कफरोगों मे कफ से सबधित रोग हैं। नेत्ररोग, शिरोरोग आदि का क्षुद्र-रोगाधिकार मे उल्लेख किया है। इस प्रकार ग्रथकार ने रोगवर्णन मे एक नया क्रम अपनाया है।

यह ग्रथ २५ अधिकारों मे विभक्त है : १ स्वास्थ्यरक्षणाधिकार, २ गर्भोत्पत्तिलक्षण, ३. सूत्रव्यावर्णन ४. धान्यादिगुणागुणविचार, ५. अन्नपानविधि, ६. रसायनविधि, ७. चिकित्सासूत्राधिकार, ८ वातरोगाधिकार, ९. पित्तरोगाधिकार, १०. कफरोगाधिकार, ११. महामायाधिकार, १२. वातरोगाधिकार, १३–१७. क्षुद्ररोगचिकित्सा, १८. बालग्रहभूततत्राधिकार, १९. विषरोगाधिकार, २०. शास्त्रसग्रहतत्रयुक्ति, २१ कर्मचिकित्साधिकार, २२ भेषजकर्मोपद्रवचिकित्साधिकार, २३. सर्वौषधकर्मव्यापच्चिकित्साधिकार, २४. रसरसायनाधिकार, २५. कल्पाधिकार, परिशिष्ट—रिष्टाध्याय, हिताहिताध्याय।[1]

नाडीविचार :

अज्ञातकर्तृक 'नाडीविचार' नामक कृति ७८ पद्यो मे है। पाटन के ज्ञानभडार मे इसकी प्रति विद्यमान है। इसका प्रारभ 'नत्वा वीर' से होता है अतः यह जैनाचार्य की कृति मालूम पड़ती है। सभवतः यह 'नाडीविज्ञान' से अभिन्न है।

नाडीचक्र तथा नाडीसंचारज्ञान :

'नाडीचक्र' और 'नाडीसचारज्ञान'—इन दोनो ग्रथो के कर्ताओ का कोई उल्लेख नहीं है। दूसरी कृति का उल्लेख 'बृहट्टिप्पणिका' मे है, इसलिये वह ग्रथ पाच सौ वर्ष पुराना अवश्य है।

नाडीनिर्णय :

अज्ञातकर्तृक 'नाडीनिर्णय' नामक ग्रथ की ५ पत्रो की हस्तलिखित प्रति मिलती है। वि०स० १८१२ में खरतरगच्छीय प० मानशेखर मुनि ने इस ग्रथ

---

१. यह ग्रन्थ हिंदी अनुवाद के साथ सेठ गोविंदजी रावजी दोशी, सखाराम नेमचंद ग्रन्थमाला, सोलापुर (अनु० वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री) ने सन् १९४० में प्रकाशित किया है।

की प्रतिलिपि की है। अन्त म 'नाडीनिर्णय' ऐसा नाम दिया है। समग्र ग्रथ पद्यात्मक है। ४१ पद्यो मे ग्रथ पूर्ण होता है। इसमें मूत्रपरीक्षा, तैलबिंदु की दोषपरीक्षा, नेत्रपरीक्षा, मुखपरीक्षा, जिह्वापरीक्षा, रोगों की सख्या, ज्वर के प्रकार आदि से सम्बन्धित विवेचन है।

जगत्सुन्दरीप्रयोगमाला :

'योनिप्राभृत' और 'जगत्सुन्दरीप्रयोगमाला'—इन दोनो ग्रथों की एक जीर्ण प्रति पूना के भाडारकर इन्स्टीट्यूट मे है। दोनों ग्रथ एक-दूसरे मे मिश्रित हो गये हैं।

'जगत्सुन्दरीप्रयोगमाला' ग्रन्थ पद्यात्मक प्राकृतभाषा मे है। बीच में कहीं-कहीं गद्य मे सस्कृत भाषा और कहीं पर तो तत्कालीन हिंदी भाषा का भी उपयोग हुआ दिखाई देता है। इसमे ४३ अधिकार हैं और करीब १५०० गाथाएँ हैं।

इस ग्रथ के कर्ता यशःकीर्ति मुनि हैं।[1] वे कब हुए और उन्होने अन्य कौन से ग्रन्थ रचे, इस विषय में जानकारी नहीं मिलती। पूना की हस्तलिखित प्रति के आधार पर कहा जा सकता है कि यश.कीर्ति वि० स० १५८२ के पहले कभी हुए हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ मे परिभाषाप्रकरण, ज्वराधिकार, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, अतिसार, ग्रहणी, पाण्डु, रक्तपित्त आदि विषयो पर विवेचन है। इसमे १५ यन्त्र भी हैं जिनके नाम इस प्रकार हैं: १. विद्याधरवापीयत्र, २ विद्याधरीयत्र, ३. वायुयत्र, ४ गगायत्र, ५. एरावणयत्र, ६ भेरुडयत्र, ७. राजाभ्युदययत्र, ८. गतप्रत्यागतयत्र, ९ बाणगगायत्र, १० जलदुर्गभयानकयत्र, ११. उरयागासे पक्खि० भ० महायत्र, १२. हसश्रवायत्र, १३ विद्याधरीनृत्ययत्र, १४. मेघनादभ्रमणवर्तयत्र, १५ पाण्डवामलीयत्र।[2]

इसमें जो मन्त्र हैं उनका एक नमूना इस प्रकार है

---

१. जसइत्तिणामधुणिणा भणिय णाऊण कलिसरूव च।
वाहिगहिड वि हु भव्वो जह मिच्छत्तेण सगिलइ ॥ १३ ॥

२. यह ग्रन्थ एस० के० कोटेचा ने धूलिया से प्रकाशित किया है। इसमें अशुद्धियाँ अधिक रह गई हैं।

ॐ नमो भगवते पार्श्वरुद्राय चद्रहासेन खड्गेन गर्दभस्य सिर छिन्दय छिन्दय, दुष्टव्रण हन हन, लूता हन हन, जालामर्दभ हन हन, गण्डमाला हन हन, विद्रधिं हन हन, विस्फोटकमर्वान् हन हन फट् स्वाहा ॥

ज्वरपराजय :

जयरत्नगणि ने 'ज्वरपराजय' नामक वैद्यक-ग्रन्थ की रचना की है। ग्रथ के प्रारम्भ मे ही इन्होने आत्रेय, चरक, सुश्रुत, भेल, वाग्भट, वृन्द, अगद, नागसिंह, पाराशर, सोढ्ल, हारीत, तिसट, माधव, पालकाप्य और अन्य ग्रथो को देखकर इस ग्रन्थ की रचना की है,[1] इस प्रकार का पूर्वज आचार्यों और ग्रथकारो का ऋण स्वीकार किया है।

इस ग्रन्थ मे ४३९ श्लोक है। मगलाचरण (श्लो० १ से ७), शिराप्रकरण (८–१६), दोपप्रकरण (१७–५१), ज्वरोत्पत्तिप्रकरण (५२–१२१), वात पित्त के लक्षण (१२२–१४८), अन्य ज्वरो के भेद (१४९–१५६), देश काल को देखकर चिकित्सा करने की विधि (१५७–२२४), वस्तिकर्माधिकार (२२५–३६९), पथ्याधिकार (३७०–३८९), सनिपात, रक्तष्टिवि आदि (३९०–४३१), पूर्णाहुति (४३२–४३९)—इस प्रकार विविध विषयों का निरूपण है।

ग्रथकार वैद्यक के जानकार और अनुभवी मालूम होते हैं।

जयरत्नगणि पूर्णिमापक्ष के आचार्य भावरत्न के शिष्य थे।[2] उन्होने त्रबावती (खभात) में इस प्रन्थ की रचना वि० स० १६६२ मे की थी।[3]

---

१ आत्रेय चरक सुश्रुतमयो भेजा (ला)भिध वाग्भट,
सद्वृन्दाङ्गद-नागसिंहमतुल पाराशर सोढ्लम्।
हारीतं तिसटं च माधवमहाश्रीपालकाप्याधिकान्,
सद्ग्रथानवलोक्य साधुविधिना चैतांस्तथाऽन्यानपि ॥

२ य श्वेताम्बरमौलिमण्डनमणि सत्पूर्णिमापक्षवान्,
यस्यास्ते वसति समृद्धनगरे त्र्यंबावतीनामके।
नत्वा श्रीगुरुभावरत्नचरणौ ज्ञानप्रकाशप्रदौ,
सद्बुद्धया जयरत्न आरचयति ग्रंथ भिषक्प्रीतये ॥ ६ ॥

३. श्रीविक्रमाद् द्वि-रस-षट्-शशिवत्सरेषु (१६६२),
यातेष्वथो नभसि मासि सिते च पक्षे।
तिथ्यामथ प्रतिपदि क्षितिसूनुवारे,
ग्रन्थोऽरचि ज्वरपराजय एष तेन ॥ ४३७ ॥

सारसंग्रह :

यह ग्रन्थ 'अकलंकसंहिता' नाम से प्रकाशित हुआ है। ग्रंथ का प्रारम्भ इस प्रकार है

नमः श्रीवर्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने।
कल्याणकारको ग्रन्थः पूज्यपादेन भाषितः॥
.. .. ।
सर्वं लोकोपकारार्थं कथ्यते सारसंग्रहः॥
श्रीमद् वाग्भट-सुश्रुतादिविमलश्रीवैद्यशास्त्रार्णवे,
भास्वत् ....सुसारसंग्रहमहावामान्विते सग्रहे।
मन्त्रज्ञैरुपलभ्य सद्विजयणोपाध्यायसन्निर्मिते,
ग्रन्थेऽस्मिन् मधुपाकसारनिचये पूर्णं भवेन्मङ्गलम्॥

ग्रंथगत इन पद्यों से तो इसका नाम 'सारसग्रह' प्रतीत होता है।

इसमें पृष्ठ १ से ५ तक समतभद्र के रस-सबधी कई पद्य, ६ से ३२ तक पूज्यपादोक्त रस, चूर्ण, गुटिका आदि कई उपयोगी प्रयोग और ३३ से गोम्मट-देव के 'मेरुदण्ड[illegible]' सम्बन्धी ग्रन्थ की नाडीपरीक्षा और ज्वरनिदान आदि कई भाग हैं। भिन्न-भिन्न प्रकरणों में सुश्रुत, वाग्भट, हरीतमुनि, रुद्रदेव आदि वैद्याचार्यों के मतों का सग्रह भी है।[१]

निबन्ध :

मत्री धनराज के पुत्र सिंह द्वारा वि० स० १५२८ की मार्गशीर्ष कृष्णा ५ के दिन[२] वैद्यकग्रन्थ की रचना करने का विधान श्री अगरचदजी नाहटा ने किया है।[३] श्री नाहटाजी को इस ग्रंथ के अतिम दो पत्र मिले हैं। उन पत्रों में १०९९ से ११२३ तक के पद्य हैं। अतिम चार पद्यों मे प्रशस्ति है। प्रशस्ति में इस ग्रथ को 'निबध' कहा है।[४] प्रस्तुत प्रति १७ वीं शताब्दी में लिखी गई है।

---

१. यह ग्रन्थ आरा के जैन सिद्धातभवन से प्रकाशित हुआ है।

२ वसु-कर शर-चन्द्रे (१५२८) वत्सरे राम-नन्द-
ज्वलन शशि (१३९३) मिते च श्रीशके मासि मार्गे।
असितदलतिथौ वा पञ्चमी.. .. . ..केऽर्के
गुरुमशुभदिनेऽसौ .. . . ॥११२२॥

३. देखिए—जैन सत्यप्रकाश, वर्ष १९, पृ ११.

४. यावन्मेरौ कनकं तिष्ठतु तावन्निबन्धोऽयम्॥ ११२३॥

ग्रन्थकार सिंह रणथभोर के शासक अलाउद्दीन खिलजी (सन् १५३१) के मुख्य मत्री पोरवाडज्ञातीय धनराज श्रेष्ठी का पुत्र था, यह इस ग्रथ की प्रशस्ति (श्लो० ११२१) से[१] तथा कृष्णर्षिगच्छीय आचार्य जयसिंहसूरि द्वारा धनराज मत्री के लिये रचित 'प्रबोधमाला' नामक कृति की प्रशस्ति से ज्ञात होता है। धनराज का दूसरा पुत्र श्रीपति था।[२] दोनों कुलदीपक, राजमान्य, दानी, गुणी और सघनायक थे,[३] ऐसा भी प्रशस्ति से मालूम होता है।

---

१ खलचिकुलमहीपश्रीमदल्लावदीनप्रबलभुजरक्षे श्रीरणस्तम्भदुर्गे।
सकलसचिवमुख्यश्रीधनेशस्य सूनु समकुरुत निबन्ध सिंहनामा प्रभुर्यः ॥११२१॥

२. धरमिणि-वाङ्कनाम्ना स्त्रीयुगल मन्त्रिधनराजस्य।
प्रथमोदरजौ सीहा-श्रीपतिपुत्रौ च विख्यातौ ॥ १० ॥

३. कुलदीपकौ द्वावपि राजमान्यौ सुदातृतालक्षणलक्षिताशयौ।
गुणाकरौ द्वावपि संघनायकौ धनाङ्गजौ भूवलयेन नन्दताम् ॥

इक्कीसवाँ प्रकरण

अर्थशास्त्र

संघदासगणि रचित 'वसुदेवहिंडी' के साथ जुड़ी हुई 'धम्मिल्लहिंडी' में 'भगवद्गीता', 'पोरागम' (पाकशास्त्र) और 'अर्थशास्त्र'—इन तीन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का उल्लेख है। 'अत्थसत्थे य भणिग्र' ऐसा कहकर 'विसेसेण मायाए सत्थेण य हंतव्वो अप्पणो विवड्ढमाणो सत्तु त्ति' (पृ० ४५) (अर्थशास्त्र में कहा गया है कि विशेषतः अपने बढते हुए शत्रु का कपट द्वारा तथा शस्त्र से नाश करना चाहिये।) यह उल्लेख किया गया है।

ऐसा दूसरा उल्लेख द्रोणाचार्यरचित 'ओघनिर्युक्तिवृत्ति' में है। 'चाणक्कए वि भणिय' ऐसा कह कर 'जइ काइय न वोसिरइ तो अदोसो त्ति' (पत्र १५२ आ) (यदि मल-मूत्र का त्याग नहीं करता है तो दोष नहीं है।) यह उल्लेख किया गया है।

तीसरा उल्लेख है पादलिप्ताचार्य की 'तरंगवतीकथा' के आधार पर रची गई नेमिचन्द्रगणिकृत 'तरंगलोला' में। उसमें अत्थसत्थ—अर्थशास्त्र के विषय मे निम्नलिखित निर्देश है:

तो भणइ अत्थसत्थम्मि वण्णियं सुयणु ! सत्थयारेहि।
दूतीपरिभव दूती न होइ कज्जस्स सिद्धकरी॥
एतो हु मन्तभेओ दूतीओ होज्ज कामनेमुक्का।
महिला मुंचरहस्सा रहस्सकाले न संठाइ॥
आभरणवेलायां नीणंति अवि य घेघति चिता।
होज्ज मंतभेओ गमणविघाओ अविव्वाणी॥

इन तीन उल्लेखों से यह सूचित होता है कि प्राचीन युग में प्राकृत भाषा मे रचा हुआ कोई अर्थशास्त्र था।

निशीथचूर्णिकार जिनदासगणि ने अपनी 'चूर्णि' में भाष्यगाथाओं के अनुसार सक्षेप मे 'धूर्ताख्यान' दिया है और आख्यान के अन्त में 'सेसं धुत्तक्खाण-

गाणुसारेण णेयमिति' ऐसा उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल में 'धूर्ताख्यान' नामक प्राकृत भाषा में रचित व्यंसक-कथा थी।

उसी कथा का आधार लेकर आचार्य हरिभद्रसूरि ने 'धूर्ताख्यान' नामक कथा-ग्रन्थ की रचना की है। उसमें खडपाणा को 'अर्थशास्त्र' की निर्मात्री बताई गई है, परन्तु उसका अर्थशास्त्र उपलब्ध नहीं हुआ है।

सम्भव है कि किसी जैनाचार्य ने 'अर्थशास्त्र' की प्राकृत में रचना की हो जो आज उपलब्ध नहीं है।

बाईसवाँ प्रकरण

नीतिशास्त्र

नीतिवाक्यामृत :

जिस तरह चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के लिये 'अर्थशास्त्र' की रचना की थी उसी प्रकार आचार्य सोमदेवसूरि ने 'नीतिवाक्यामृत' की रचना वि० सं० १०२५ में राजा महेन्द्र के लिये की थी। संस्कृत गद्य में सूत्रबद्ध शैली में रचित यह कृति ३२ समुद्देशों में विभक्त है . १. धर्मसमुद्देश, २. अर्थसमुद्देश, ३ कामसमुद्देश, ४ अरिषड्वर्ग, ५. विद्यावृद्ध, ६. आन्वीक्षिकी, ७. त्रयी, ८. वार्ता, ९. दण्डनीति, १०. मंत्री, ११. पुरोहित, १२. सेनापति, १३. दूत, १४. चार, १५. विचार, १६. व्यसन, १७ स्वामी, १८. अमात्य, १९. जनपद, २०. दुर्ग, २१. कोष, २२. बल, २३. मित्र, २४. राजरक्षा, २५. दिवसानुष्ठान, २६. सदाचार, २७. व्यवहार, २८ विवाद, २९. षाड्गुण्य, ३०. युद्ध, ३१. विवाह और ३२. प्रकीर्ण।

इस विषयसूची से यह मालूम पड़ता है कि इस ग्रन्थ में राजा और राज्य-शासन-व्यवस्थाविषयक प्रचुर सामग्री दी गई है। अनेक नीतिकारों और स्मृतिकारों के ग्रन्थों के आधार पर इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया है। आचार्य सोमदेव ने अपने ग्रन्थ में कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' का आधार लिया है और कई जगह समानता होते हुए भी कहीं भी कौटिल्य के नाम का उल्लेख नहीं किया है।

आचार्य सोमदेव की दृष्टि कई जगह कौटिल्य से भिन्न और विशिष्ट भी है। सोमदेव के ग्रन्थ में क्वचित् जैनधर्म का उपदेश भी दिखाई पड़ता है। कितने ही सूत्र सुभाषित जैसे हैं और कौटिल्य की रचना से अल्पाक्षरी और मनोरम हैं।

'नीतिवाक्यामृत' के कर्ता आचार्य सोमदेवसूरि देवसंघ के यशोदेव के शिष्य नेमिदेव के शिष्य थे। ये दार्शनिक और साहित्यकार भी थे। इन्होंने त्रिवर्ग-महेन्द्रमातलिसंजल्प, युक्तिचिंतामणि, षण्णवतिप्रकरण, स्याद्वादोपनिषत्, सूक्ति-

सचय आदि ग्रन्थ भी रचे है परन्तु इनमे से एक भी ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुआ है। 'यशस्तिलकचम्पू' जो वि० स० १०१६ मे इन्होने रचा वह उपलब्ध है। 'नीतिवाक्यामृत' की प्रशस्ति मे जिस 'यशोधरचरित' का उल्लेख है वही यह 'यशस्तिलकचम्पू' है। यह ग्रथ साहित्य-विषय मे उत्कृष्ट है। इसमे कई कवियो, वैयाकरणो, नीतिशास्त्र-प्रणेताओ के नामो का उल्लेख है, जिनका ग्रथकार ने अध्ययन-परिशीलन किया था।

नीतिशास्त्र के प्रणेताओ मे गुरु, शुक्र, विशालाक्ष, परीक्षित, पराशर, भीम, भीष्म, भारद्वाज आदि के उल्लेख हैं। यशोधर महाराजा का चरित्र-चित्रण करते हुए आचार्य ने राजनीति की बहुत ही विशद और विस्तृत चर्चा की है। 'यशस्तिलक' का तृतीय आश्वास राजनीति के तत्त्वो से भरा हुआ है।

सोमदेवसूरि अपने समय के विशिष्ट विद्वान् थे, यह उनके इन दो ग्रन्थों से स्पष्ट प्रतीत होता है।

नीतिवाक्यामृत-टीका :

'नीतिवाक्यामृत' पर हरिबल नामक विद्वान् ने वृत्ति की रचना की है। इसमे अनेक ग्रन्थो के उद्धरण देने से इसकी उपयोगिता बढ गई है। जिन कृतियों का इसमें उल्लेख है उनमे से कई आज उपलब्ध नहीं हैं। टीकाकार ने बहुश्रुत विद्वान् होने पर भी एक ही श्लोक को तीन-तीन आचार्यों के नाम से उद्धृत किया है।

उन्होंने 'काकतालीय' का विचित्र अर्थ किया है। 'स्ववधाय कृत्योत्थापनमिव ' इसमे 'कृत्योत्थापना' का भी विलक्षण अर्थ बताया है।[1]

सभवतः टीकाकार अजैन होने से कई परिभाषाओं से अनभिज्ञ थे, फलतः उन्होंने अपनी व्याख्या मे ऐसी कई त्रुटियाँ की है।[2]

लघु-अर्हन्नीति :

प्राकृत मे रचे गये 'बृहदर्हन्नीतिशास्त्र' के आधार पर आचार्य हेमचन्द्रसूरि ने कुमारपाल महाराजा के लिये इस छोटे-से 'लघु-अर्हन्नीति' ग्रंथ का सस्कृत पद्य मे प्रणयन किया था।

---

१. यह टीका-ग्रथ मूलसहित निर्णयसागर प्रेस, बंबई से प्रकाशित हुआ था। फिर माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला से दो भागों में वि० सं० १९७९ में प्रकाशित हुआ है।

२. देखिये—'जैन सिद्धांत-भास्कर' भाग १५, किरण १.

इस ग्रंथ मे धर्मानुसारी राजनीति का उपदेश दिया गया है। जैनागमो मे निर्दिष्ट हाक्कार, माक्कार आदि सात नीतियॉ और आठवॉं द्रव्यदण्ड आदि भेद प्रकाशित किये गये हैं।[1]

कामन्दकीय-नीतिसार :

उपाध्याय भानुचन्द्र के शिष्य सिद्धिचन्द्र ने 'कामन्दकीय-नीतिसार' नामक ग्रन्थ का सकलन किया है। इसकी २९ पत्रों की प्रति अहमदाबाद के देवसा के पाडे मे स्थित विमलगच्छ के भडार में है।

जिनसंहिता :

मुनि जिनसेन ने 'जिनसहिता' नामक नीतिविषयक ग्रन्थ रचा है।[2] इस ग्रन्थ में ६ अधिकार हैं : १. ऋणादान, २. दायभाग, ३. सीमानिर्णय, ४ क्षेत्रविषय, ५. निस्स्वामिवस्तुविषय और ६. साहस, स्तेय, भोजनादिकानुचित व्यवहार और सूतकाशौच।

राजनीति :

देवीदास नामक विद्वान् ने 'राजनीति' नामक ग्रथ की प्राकृत में रचना की है। यह ग्रन्थ पूना के भाडारकर इन्स्टीट्यूट में है।

---

१ यह ग्रथ गुजराती अनुवाद के साथ प्रकाशित हुआ है।

२ देखिए—कैटेलोग ऑफ सस्कृत एण्ड प्राकृत मेन्युस्क्रिप्ट्स इन सी० पी० एण्ड बरार, पृ० ६४४

तेईसवां प्रकरण

शिल्पशास्त्र

वास्तुसार :

श्रीमालवशीय ठक्कुर फेरू ने वि० स० १३७२ मे 'वास्तुसार' नामक वास्तु-शिल्प-शास्त्रविषयक ग्रथ की प्राकृत भाषा मे रचना की। वे कलश श्रेष्ठी के पौत्र और चद्र श्रावक के पुत्र थे। उनकी माता का नाम चद्रा था। वे धधकुल मे हुए थे और कन्नाणपुर मे रहते थे। दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन के वे खजाची थे।

इस ग्रथ के गृहवास्तुप्रकरण मे भूमिपरीक्षा, भूमिसाधना, भूमिलक्षण, मासफल, नींवनिवेशलग्न, गृहप्रवेशलग्न और सूर्यादिग्रहाष्टक का १५८ गाथाओं मे वर्णन है। ५४ गाथाओ मे बिम्बपरीक्षाप्रकरण और ६८ गाथाओ मे प्रासादप्रकरण है। इस तरह इसमे कुल २८० गाथाए हैं।[1]

शिल्पशास्त्र :

दिगबर जैन भट्टारक एकसधि ने 'शिल्पशास्त्र' नामक कृति की रचना की है, ऐसा जिनरत्नकोश, पृ० ३८३ मे उल्लेख है।

---

१ यह ग्रन्थ 'रत्नपरीक्षादि-सप्तग्रन्थसग्रह' में प्रकाशित है।

चोवीसवां प्रकरण

रत्नशास्त्र

प्राचीन भारत मे रत्नशास्त्र एक विज्ञान माना जाता था। उसमे बहुत सी बातें अनुश्रुतियों पर आधारित होती थीं। बाद के काल मे रत्नशास्त्र के लेखकों ने अपने अनुभवों का सम्मिलन करके उसे विशद बनाने का प्रयत्न किया है।

जैन आगमों मे 'प्रज्ञापनासूत्र' (पत्र ७७, ७८) मे वइूर, जग (अजण), पवाल, गोमेज्ज, रुयग, अक, फलिह, लोहियक्ख, मरगय, मसारगल्ल, भुयमोयग, इन्द्रनील, हसगब्भ, पुलक, सोगधिय, चद्रप्पह, वैडूर्य, जलकात, सूर्यकात आदि रत्नों के नाम आते हैं।

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के कोशप्रवेश्यप्रकरण (२-१० २९) मे रत्नों का वर्णन आता है। छठी शताब्दी के बाद होनेवाले अगस्ति ने रत्नो के बारे मे अपना मत 'अगस्तीय रत्नपरीक्षा' नाम से प्रकट किया है। ७ वीं-८ वीं शती के बुद्धभट्ट ने 'रत्नपरीक्षा' ग्रन्थ की रचना की है। 'गरुडपुराण' के ६८ से ७० अध्यायों में रत्नों का वर्णन है। 'मानसोल्लास' के भा० १ में कोशाध्याय मे रत्नों का वर्णन मिलता है। 'रत्नसग्रह', 'नवरत्नपरीक्षा' आदि कई ग्रथ रत्नों का वर्णन करते है। सग्रामसिंह सोनी द्वारा रचित 'बुद्धिसागर' नामक ग्रन्थ मे रत्नों की परीक्षा आदि विषय वर्णित है।

यहा जैन लेखकों द्वारा रचे हुए रत्नशास्त्रविषयक ग्रन्थों के विषय में परिचय दिया जा रहा है।

१. रत्नपरीक्षा :

श्रीमालवशीय ठक्कुर फेरू ने वि० स० १३७२ में 'रत्नपरीक्षा' नामक ग्रथ की रचना की है। रत्नों के विषय में सुरमिति, अगस्त्य और बुद्धभट्ट ने जो ग्रथ लिखे हैं उनको सामने रखकर फेरू ने अपने पुत्र हेमपाल के लिये १३२ गाथाओं में यह ग्रथ प्राकृत में रचा है।

इस ग्रथरचना मे प्राचीन ग्रन्थों का आधार लेने पर भी ग्रन्थकार ने चौदहवीं शताब्दी के रत्न-व्यवसाय पर काफी प्रकाश डाला है। रत्नों के सबध

में सुलतानयुग के किसी भी फारसी या अन्य ग्रन्थकार ने ठक्कुर फेरू जितने तथ्य नहीं दिये, इसलिये इस ग्रंथ का विशेष महत्त्व है। कई रत्नो के उत्पत्तिस्थान फेरू ने १४ वीं शती का आयात-निर्यात स्वयं देखकर निश्चित किये है। रत्नों के तौल और मूल्य भी प्राचीन शास्त्रो के आधार पर नहीं, बल्कि अपने समय मे प्रचलित व्यवहार के आधार पर बताये है।

इस ग्रंथ मे रत्नो के १. पद्मराग, २. मुक्ता, ३ विद्रुम, ४. मरकत, ५ पुखराज, ६ हीरा, ७ इन्द्रनील, ८ गोमेद और ९ वैडूर्य—ये नौ प्रकार गिनाए हैं (गाथा १४-१५)। इनके अतिरिक्त १० लहसुनिया, ११. स्फटिक, १२. कर्केतन और १३ भीष्म नामक रत्नो का भी उल्लेख किया है, १४. लाल, १५. अकीक और १६. फिरोजा—ये पारसी रत्न हैं। इस प्रकार रत्नो की संख्या १६ है। इनमें भी महारत्न और उपरत्न—इन दो प्रकारों का निर्देश किया गया है।

इन रत्नो का १ उत्पत्तिस्थान, २ आकर, ३ वर्ण—छाया, ४. जाति, ५ गुण-दोष, ६ फल और ७ मूल्य बताते हुए विजाति रत्नो का विस्तार से वर्णन किया है।

शूर्पारक, कलिंग, कोशल और महाराष्ट्र मे वज्र नामक रत्न, सिंहल और तुंबर आदि देशो मे मुक्ताफल और पद्मरागमणि, मलयपर्वत और बर्बर देश मे मरकतमणि, सिंहल मे इन्द्रनीलमणि, विंध्यपर्वत, चीन, महाचीन और नेपाल मे विद्रुम, नेपाल, कश्मीर और चीन आदि मे लहसुनिया, वैडूर्य और स्फटिक मिलते है।

अच्छे रत्न स्वास्थ्य, दीर्घजीवन, धन और गौरव देनेवाले होते है तथा सर्प, जंगली जानवर, पानी, आग, विद्युत्, घाव और बीमारी से मुक्त करते हैं। खराब रत्न दुःखदायक होते हैं।

सूर्यग्रह के लिये पद्मराग, चंद्रग्रह के लिये मोती, मंगलग्रह के लिये मूंगा, बुधग्रह के लिये पन्ना, गुरुग्रह के लिये पुखराज, शुक्रग्रह के लिये हीरा शनिग्रह के लिये नीलम, राहुग्रह के लिये गोमेद और केतुग्रह के लिये वैडूर्य—इस प्रकार ग्रहो के अनुसार रत्न धारण करने से ग्रह पीडा नहीं देते।

रत्नों के परीक्षक को मांडलिक कहा जाता था और ये लोग रत्नों का परस्पर मिलान करके उनकी परीक्षा करते थे।

पारसी रत्नों का विवरण तो फेरू का अपना मौलिक है। पद्मराग के प्राचीन भेद गिनाये है उसमे 'चुन्नी' का प्रयोग किया है, जिसका व्यवहार जौहरी

लोग आज भी करते हैं। इसी तरह घट्ट काले माणिक के लिये 'चिप्पडिया' (देश्य) शब्द का प्रयोग किया है। हीरे के लिये 'फार' शब्द का प्रयोग आज भी प्रचलित है।

मालूम होता है मालवा हीरों के व्यापार के लिये प्रसिद्ध था, क्योंकि फेरू ने शुद्ध हीरे के लिये 'मालवी' शब्द का प्रयोग किया है।

पन्ने के लिये बहुत-सी नयी बातें कही हैं। ठक्कुर फेरू के समय में नई और पुरानी खानों के पन्नों में भेद हो गया हो ऐसा मालूम होता है, क्योंकि फेरू ने गरुडोद्गार, कीडउठी, वासवती, मूगउनी और धूलिमराई—ऐसे तत्कालीन प्रचलित नामों का प्रयोग किया है।[1]

२. रत्नपरीक्षा :

सोम नामक किसी राजा ने 'रत्नपरीक्षा' नामक ग्रंथ[2] की रचना की है।

इसमें 'मौक्तिकपरीक्षा' के अंत में राजा के नाम का परिचायक श्लोक इस प्रकार है :

उत्पत्तिराकर-छाया-गुण-दोष-शुभाशुभम् ।
तोलनं मौल्यविन्यासः कथितः सोमभूभुजा ॥

ये सोम राजा कौन थे, कब हुए और किस देश के थे, यह ज्ञात नहीं हुआ है। ये जैन थे या अजैन, यह भी ज्ञात नहीं हो सका है। इनकी शैली अन्य रत्नपरीक्षा आदि ग्रंथों के समान ही है। प्रस्तुत ग्रंथ में १. रत्नपरीक्षा श्लोक २२, २. मौक्तिकपरीक्षा श्लोक ४८, ३. माणिक्यपरीक्षा श्लोक १७, ४. इन्द्रनील-परीक्षा श्लोक १५, ५. मरकतपरीक्षा श्लोक १२, ६. रत्नपरीक्षा श्लोक १७, ७ रत्नलक्षण श्लोक १५—इस प्रकार कुल मिलाकर १४६ अनुष्टुप् श्लोक हैं। यह छोटा होने पर भी अतीव उपयोगी ग्रंथ है। इसमें रत्नों की उत्पत्ति, खान, छाया, गुण, दोष, शुभ, अशुभ, तौल और मूल्य का वर्णन किया गया है।

समस्तरत्नपरीक्षा :

जैन ग्रंथावली, पृ० ३६३ में 'समस्तरत्नपरीक्षा' नामक कृति का उल्लेख है। इसके ६०० श्लोकप्रमाण होने का भी निर्देश है, कर्ता के नाम आदि का कुछ भी उल्लेख नहीं है।

---

१. यह ग्रंथ 'रत्नपरीक्षादि-सप्तग्रंथसंग्रह' में प्रकाशित है। प्रकाशक है—राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् १९६१.

२ इसकी हस्तलिखित प्रति पालीताना के विजयमोहनसूरीश्वरजी हस्तलिखित शास्त्रसंग्रह में है।

मणिकल्प :

आचार्य मानतुंगसूरि ने 'मणिकल्प' नामक ग्रंथ की रचना की है। इसमे १. रत्नपरीक्षा-वज्रपरीक्षा श्लोक २९, २. मुक्तापरीक्षा श्लोक ५६. ३. माणिक्य-लक्षण श्लोक २०, ४ इन्द्रनीललक्षण श्लोक १६, ५. मरकतलक्षण श्लोक १२, ६. स्फटिकलक्षण श्लोक १६, ७. पुष्परागलक्षण श्लोक १, ८. वैडूर्यलक्षण श्लोक १, ९. गोमेदलक्षण श्लोक १, १०. प्रवाललक्षण श्लोक २, ११. रत्नपरीक्षा श्लोक ८, १२. माणिक्यकरण श्लोक ७, १३. मुक्ताकरण श्लोक ३, १४. मणिलक्षणपरीक्षा आदि श्लोक ६१—इस प्रकार कुल मिलाकर २२५ श्लोक हैं।[1]

अन्त मे कर्ता ने अपना नामनिर्देश इस प्रकार किया है :

श्रीमानतुङ्गस्य तथापि धर्म श्रीवीतरागस्य स एव वेत्ति।

हीरकपरीक्षा :

किसी दिगंबर मुनि ने ९० श्लोकात्मक 'हीरकपरीक्षा' नामक ग्रंथ की रचना की है।[2]

---
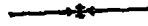
१. यह ग्रंथ हिंदी अनुवाद के साथ एस. के. कोटेचा, धूलिया से प्रकाशित हुआ है।

२. पिटर्सन की रिपोर्ट (न० ४) में इस कृति का उल्लेख है।

पच्चीसवाँ प्रकरण

मुद्राशास्त्र

द्रव्यपरीक्षा :

श्रीमालवंशीय ठक्कुर फेरू ने वि० सं० १३७५ में 'द्रव्यपरीक्षा' नामक ग्रंथ की अपने बन्धु और पुत्र के लिये प्राकृत भाषा में रचना की है।

'द्रव्यपरीक्षा' में ग्रन्थकार ने सिक्कों के मूल्य, तौल, द्रव्य, नाम और स्थान का विशद परिचय दिया है। पहले प्रकरण में चासनी का वर्णन है। दूसरे प्रकरण में स्वर्ण, रजत आदि मुद्राशास्त्रविषयक भिन्न-भिन्न धातुओं के शोधन का वर्णन किया है। इन दो प्रकरणों से ठक्कुर फेरू के रसायनशास्त्रसम्बन्धी गहरे ज्ञान का परिचय होता है। तीसरे प्रकरण में मूल्य का निर्देश है। चौथे प्रकरण में सब प्रकार की मुद्राओं का परिचय दिया हुआ है। इस ग्रन्थ में प्राकृत भाषा की १४९ गाथाओं में इन सभी विषयों का समावेश किया गया है।

भारत में मुद्राओं का प्रचलन अति प्राचीन काल से है। मुद्राओं और उनके विनिमय के बारे में साहित्यिक ग्रंथों, उनकी टीकाओं और जैन-बौद्ध अनुश्रुतियों में प्रसंगवशात् अनेक तथ्य प्राप्त होते हैं। मुस्लिम तवारीखों में कहीं-कहीं टकसालों का वर्णन प्राप्त होता है। परन्तु मुद्राशास्त्र के समस्त अंग-प्रत्यंगों पर अधिकारपूर्ण प्रकाश डालनेवाला सिवाय इसके कोई ग्रंथ अद्यावधि उपलब्ध नहीं हुआ है। इस दृष्टि से मुद्राविषयक ज्ञान के क्षेत्र में समग्र भारतीय साहित्य में एक मात्र कृति के रूप में यह ग्रन्थ मूर्धन्यकोटि में स्थान पाता है।

छः-सात सौ वर्ष पहले मुद्राशास्त्र-विषयक साधनों का सर्वथा अभाव था। उस समय फेरू ने इस विषय पर सर्वांगपूर्ण ग्रंथ लिख कर अपनी इतिहास-विषयक अभिरुचि का अच्छा परिचय दिया है।

ठक्कुर फेरू ने अपने ग्रंथ में सूचित किया है कि दिल्ली की टकसाल में स्थित सिक्कों का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्तकर तथा मुद्राओं की परीक्षा कर उनका

तौल, मूल्य, धातुगत परिमाण, सिक्कों के नाम और स्थानसूचन आदि आवश्यक विषयों का मैंने इस ग्रन्थ में निरूपण किया है।

यद्यपि 'द्रव्यपरीक्षा' में बहुत प्राचीन मुद्राओं की सूचना नहीं है तथापि मध्यकालीन मुद्राओं का ज्ञान प्राप्त करने में इससे पर्याप्त सहायता मिलती है। ग्रंथ में लगभग २०० मुद्राओं का परिचय दिया हुआ है। उदाहरणार्थ पूतली, खीमरी, कजानी, आदनी, रीणी, रूवाई, खुराजमी, वालिष्ट—इन मुद्राओं का तौल के साथ में वर्णन दिया हुआ है, लेकिन इनका सम्बन्ध किस राजवंश या देश से था यह जानना कठिन है। कई मुद्राओं के नाम राजवंशों से सम्बन्धित है, जैसे कुमरु-तिहुणगिरि।

इस प्रकार गुर्जर देश से सम्बन्धित मुद्राओं में कुमरपुरी, अजयपुरी, भीमपुरी, लाखापुरी, अर्जुनपुरी, विसलपुरी आदि नामवाली मुद्राएँ गुजरात के राजाओं—कुमारपाल वि० सं० ११९९ से १२२९, अजयपाल सं० १२२९ से १२३२, भीमदेव, लाखा राणा, अर्जुनदेव सं० १३१८ से १३३१, विसलदेव सं० १३०२ से १३१८—के नाम से प्रचलित मालूम होती है। प्रबन्ध ग्रन्थों में भीमप्रिय और विमलप्रिय नामक सिक्कों का उल्लेख मिलता है। मालवीमुद्रा, चदेरिकापुर-मुद्रा, जालधरीयमुद्रा, ढिल्लिकासरकमुद्रा, अश्वपतिमहानरेन्द्रपातसाही अलाउद्दीन-मुद्रा आदि कई मुद्राओं के नाम तौलमान के साथ बताये गये हैं। कुतुबुद्दीन बादशाह की स्वर्णमुद्रा, रूप्यमुद्रा और साहिमुद्रा का भी वर्णन किया गया है।[1]

जिन मुद्राओं का इस ग्रंथ में उल्लेख है वैसी कई मुद्राएँ संग्रहालयों में संगृहीत मिलती हैं, जैसे—लाहउरी, लगामी, समोसी, मसूदी, अब्दुली, कफुली, दीनार आदि। दीनार अलाउद्दीन का प्रधान सिक्का था।

जिन मुद्राओं का इस ग्रंथ में वर्णन है वैसी कई मुद्राओं का उल्लेख प्रसंगवश साहित्यिक ग्रन्थों में आता है, जैसे—केशरी का उल्लेख हेमचन्द्रसूरिकृत 'द्वयाश्रयमहाकाव्य' में, जइथल का उल्लेख 'युगप्रधानाचार्यगुर्वावली' में, द्रम्म का उल्लेख द्वयाश्रयमहाकाव्य, युगप्रधानाचार्यगुर्वावली आदि कई ग्रन्थों में आता है। दीनार का उल्लेख 'हरिवंशपुराण', 'प्रबन्धचिन्तामणि' आदि में आता है।

---

१ यह कृति 'रत्नपरीक्षादि-सप्तग्रंथसंग्रह' में प्रकाशित है। प्रकाशक है—राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, सन् १९६१

सत्ताईसवाँ प्रकरण

प्राणिविज्ञान

आयुर्वेद मे पशुपक्षियो की शरीररचना, स्वभाव, ऋतुचर्या, रोग और उनकी चिकित्सा के विषय मे काफी लिखा गया है। 'अग्निपुराण' मे गजायुर्वेद, गज-चिकित्सा, अश्वचिकित्सा आदि प्रकरण है। पालकाप्य नामक विद्वान् का 'हस्ति-आयुर्वेद' नामक एक प्राचीन ग्रन्थ है। नीलकंठ ने 'मातगलीला' मे हाथियो के लक्षण बड़ी अच्छी रीति से बताये हैं। जयदेव ने 'अश्ववैद्यक' नामक ग्रथ मे घोड़ो के लिये लिखा है। 'शालिहोत्र' नामक ग्रन्थ भी अश्वो के बारे मे अच्छी जानकारी देता है। कुर्माचल (कुमाऊ) के राजा रुद्रदेव ने 'श्यैनिकशास्त्र' नामक एक ग्रथ लिखा है, जिसमे बाज पक्षियो का वर्णन किया गया है और उनके द्वारा शिकार करने की रीति बताई गई है।

मृगपक्षिशास्त्र :

हंसदेव नामक जैन कवि (? यति) ने १३ वीं शताब्दी मे पशु-पक्षियो के प्रकार, स्वभाव इत्यादि पर प्रकाश डालनेवाले 'मृग-पक्षिशास्त्र' नामक सुंदर और विशिष्ट ग्रन्थ की रचना की है।' इसमे अनुष्टुप् छंद मे १७०० श्लोक है।

इस ग्रन्थ मे पशु-पक्षियो के ३६ वर्ग बताए है। उनके रूप-रंग, प्रकार, स्वभाव, बाल्यावस्था, संभोगकाल, गर्भधारण-काल, खान-पान, आयुष्य और अन्य कई विशेषताओ का वर्णन किया है। सत्त्व-गुण पशु-पक्षियो मे नहीं होता। उनमे रजोगुण और तमोगुण—ये दो ही गुण दीख पड़ते है। पशु-पक्षियों मे भी उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन प्रकार बताये हैं। सिंह, हाथी, घोड़ा,

---

१. मद्रास के श्री राघवाचार्य को सबसे पहले इस ग्रथ की हस्तलिखित प्रति मिली थी। उन्होंने उसे त्रावनकोर के महाराजा को भेंट किया। डा० के० सी० वुड उसकी प्रतिलिपि करके अमेरिका ले गये। सन् १९२५ में श्री सुन्दराचार्य ने उसका अंग्रेजी में अनुवाद प्रकाशित किया। मूल ग्रन्थ अभी छपा नहीं है, ऐसा मालूम होता है।

गाय, बैल, हस, सारस, कोयल, कबूतर वगैरह उत्तम प्रकार के राजस गुण वाले हैं। चीता, बकरा, मृग, बाज आदि मध्यम राजस गुण वाले हैं। रीछ, गैंडा, भैंस आदि मे अधम राजस गुण होता है। इसी प्रकार ऊँट, भेड़, कुत्ता, मुरगा आदि उत्तम तामस गुण वाले है। गिद्ध, तीतर वगैरह मध्यम तामस गुणयुक्त होते हैं। गधा, सूअर, बन्दर, गीदड़, बिल्ली, चूहा, कौआ वगैरह अधम तामस गुण वाले हैं।

पशु-पक्षियो की अधिकतम आयुष्य-मर्यादा इस प्रकार बताई गई है: हाथी १०० वर्ष, गैंडा २२, ऊँट ३०, घोडा २५, सिंह-भैंस गाय बैल वगैरह २०, चीता १६, गधा १२, बन्दर-कुत्ता-सूअर १०, बकरा ९, हस ७, मोर ६, कबूतर ३ और चूहा तथा खरगोश १½ वर्ष।

इस ग्रन्थ मे कई पशु पक्षियो का रोचक वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ सिंह का वर्णन इस प्रकार है -

सिंह छः प्रकार के होते है—१. सिंह, २. मृगेंद्र, ३. पचास्य, ४. हर्यक्ष, ५. केसरी और ६. हरि। उनके रूप-रग, आकार-प्रकार और काम मे कुछ भिन्नता होती है। कई घने जगलों मे तो कई ऊँची पहाडियो मे रहते हैं। उनमें स्वाभाविक बल होता है। जब उनकी ६–७ वर्ष की उम्र होती है तब उनको काम बहुत सताता है। वे मादा को देखकर उसका शरीर चाटते है, पूछ हिलाते हैं और कूद-कूद कर खूब जोरो से गर्जने हैं। सभोग का समय प्राय: आधी रात को होता है। गर्भावस्था में थोड़े समय तक नर और मादा साथ-साथ घूमते है। उस समय मादा की भूख कम हो जाती है। शरीर मे शिथिलता आने पर शिकार के प्रति रुचि कम हो जाती है। ९ से १२ महीने के बाद प्राय. वसत के अत में और ग्रीष्म ऋतु के आरभ मे प्रसव होता है। यदि शरद् ऋतु मे प्रसूति हो जाय तो बच्चे कमजोर रहते हैं। एक से लेकर पाच तक की सख्या मे बच्चो का जन्म होता है।

पहले तो वे माता के दूध पर पलते हैं। तीन-चार महीने के होते ही वे गर्जने लगते हैं और शिकार के पीछे दौड़ना शुरू करते हैं। चिकने और कोमल मास की ओर उनकी ज्यादा रुचि होती है। दूसरे-तीसरे वर्ष से उनकी किशोरा-वस्था का आरभ होता है। उस समय से उनके क्रोध की मात्रा बढती रहती है। वे भूख सहन नहीं कर सकते, भय तो वे जानते ही नहीं। इसी से तो वे पशुओं के राजा कहे जाते है।

इस प्रकार के साधारण वर्णन के बाद उनके छ: प्रकारो मे से प्रत्येक की विशेषता बताई गई है:

१. सिंह की गरदन के बाल खूब घने होते है, रग सुनहरी किन्तु पिछली ओर कुछ श्वेत होता है। वह शर की तरह खूब तेजी से दौड़ता है।

२. मृगेन्द्र की गति मद और गभीर होती है, उसकी ऑखे सुनहरी और मूछे खूब बड़ी होती है, उसके शरीर पर भॉति-भॉति के कई चकत्ते होते है।

३. पचास्य उछल-उछल कर चलता है, उसकी जीभ मुँह से बाहर लटकती ही रहती है, उसे नींद खूब आती है, जब कभी देखिए वह निद्रा मे ही दिखाई देता है।

४ हर्यक्ष को हर समय पसीना ही छूटता रहता है।

५ केसरी का रग लाल होता है जिसमे धारियॉ पड़ी हुई दीख पड़ती है।

६ हरि का शरीर बहुत छोटा होता है।

अत मे ग्रन्थकार ने बताया है कि पशुओ का पालन करने से और उनकी रक्षा करने से बड़ा पुण्य होता है। वे मनुष्य की सदा सहायता करते रहते हैं। गाय की रक्षा करने से पुण्य प्राप्त होता है।

पुस्तक के दूसरे भाग मे पक्षियो का वर्णन है। प्रारभ मे ही बताया गया है कि प्राणी को अपने कर्मानुसार ही अडज योनि प्राप्त होती है। पक्षी बडे चतुर होते है। अडो को कब फोड़ना चाहिये, इस विषय मे उनका ज्ञान देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। पक्षी जगल और घर का श्रृगार है। पशुओ की तरह वे भी कई प्रकार से मनुष्यो के सहायक होते हैं।

ऋषियो ने बताया है कि जो पक्षियो को प्रेम से नहीं पालते और उनकी रक्षा नहीं करते वे इस पृथ्वी पर रहने योग्य नहीं है।

इसके बाद हस, चक्रवाक, सारग, गरुड, कौआ, बगुला, तोता, मोर, कबूतर वगैरह के कई प्रकार के भेदो का सुन्दर और रोचक वर्णन किया गया है।

इस ग्रन्थ मे कुल मिलाकर करीब २२५ पशु-पक्षियो का वर्णन है।

तुरंगप्रबन्ध :

मत्री दुर्लभराज ने 'तुरगप्रबन्ध' नामक कृति की रचना की है किन्तु यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसमे अश्वो के गुणों का वर्णन होगा। रचना-समय वि० स० १२१५ के लगभग है।

हस्तिपरीक्षा :

जैन गृहस्थ विद्वान् दुर्लभराज (वि० स० १२१५ के आसपास) ने हस्तिपरीक्षा अपरनाम गजप्रबन्ध या गजपरीक्षा नामक ग्रन्थ की रचना १५०० श्लोक-प्रमाण की है। जैन ग्रन्थावली, पृ० ३६१ में इसका उल्लेख है।

१. सिंह की गरदन के बाल खूब घने होते हैं, रंग सुनहरी किन्तु पिछली ओर कुछ श्वेत होता है। वह शर की तरह खूब तेजी से दौड़ता है।

२. मृगेन्द्र की गति मंद और गंभीर होती है, उसकी आँखें सुनहरी और मूछें खूब बड़ी होती हैं, उसके शरीर पर भाँति-भाँति के कई चकत्ते होते हैं।

३. पचास्य उछल-उछल कर चलता है, उसकी जीभ मुँह से बाहर लटकती ही रहती है, उसे नींद खूब आती है, जब कभी देखिए वह निद्रा में ही दिखाई देता है।

४ हर्यक्ष को हर समय पसीना ही छूटता रहता है।

५ केसरी का रंग लाल होता है जिसमें धारियाँ पड़ी हुई दीख पड़ती हैं।

६. हरि का शरीर बहुत छोटा होता है।

अंत में ग्रन्थकार ने बताया है कि पशुओं का पालन करने से और उनकी रक्षा करने से बड़ा पुण्य होता है। वे मनुष्य की सदा सहायता करते रहते हैं। गाय की रक्षा करने से पुण्य प्राप्त होता है।

पुस्तक के दूसरे भाग में पक्षियों का वर्णन है। प्रारंभ में ही बताया गया है कि प्राणी को अपने कर्मानुसार ही अंडज योनि प्राप्त होती है। पक्षी बड़े चतुर होते हैं। अंडों को कब फोड़ना चाहिये, इस विषय में उनका ज्ञान देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। पक्षी जंगल और घर का शृंगार है। पशुओं की तरह वे भी कई प्रकार से मनुष्यों के सहायक होते हैं।

ऋषियों ने बताया है कि जो पक्षियों को प्रेम से नहीं पालते और उनकी रक्षा नहीं करते वे इस पृथ्वी पर रहने योग्य नहीं हैं।

इसके बाद हंस, चक्रवाक, सारंग, गरुड, कौआ, बगुला, तोता, मोर, कबूतर वगैरह के कई प्रकार के भेदों का सुन्दर और रोचक वर्णन किया गया है।

इस ग्रन्थ में कुल मिलाकर करीब २२५ पशु-पक्षियों का वर्णन है।

तुरंगप्रबन्ध :

मंत्री दुर्लभराज ने 'तुरंगप्रबन्ध' नामक कृति की रचना की है किन्तु यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसमें अश्वों के गुणों का वर्णन होगा। रचना-समय वि० सं० १२१५ के लगभग है।

हस्तिपरीक्षा :

जैन गृहस्थ विद्वान् दुर्लभराज (वि० सं० १२१५ के आसपास) ने हस्तिपरीक्षा अपरनाम गजप्रबन्ध या गजपरीक्षा नामक ग्रन्थ की रचना १५०० श्लोक-प्रमाण की है। जैन ग्रन्थावली, पृ० ३६१ में इसका उल्लेख है।

१. सिंह की गरदन के बाल खूब घने होते हैं, रंग सुनहरी किन्तु पिछली ओर कुछ श्वेत होता है। वह शर की तरह खूब तेजी से दौड़ता है।

२. मृगेन्द्र की गति मंद और गभीर होती है, उसकी आँखें सुनहरी और मूछें खूब बड़ी होती हैं, उसके शरीर पर भाँति भाँति के कई चकत्ते होते हैं।

३. पचास्य उछल-उछल कर चलता है, उसकी जीभ मुँह से बाहर लटकती ही रहती है, उसे नींद खूब आती है, जब कभी देखिए वह निद्रा मे ही दिखाई देता है।

४. हर्यक्ष को हर समय पसीना ही छूटता रहता है।

५ केसरी का रंग लाल होता है जिसमे धारियाँ पड़ी हुई दीख पड़ती है।

६. हरि का शरीर बहुत छोटा होता है।

अत मे ग्रन्थकार ने बताया है कि पशुओं का पालन करने से और उनकी रक्षा करने से बड़ा पुण्य होता है। वे मनुष्य की सदा सहायता करते रहते हैं। गाय की रक्षा करने से पुण्य प्राप्त होता है।

पुस्तक के दूसरे भाग मे पक्षियो का वर्णन है। प्रारभ में ही बताया गया है कि प्राणी को अपने कर्मानुसार ही अडज योनि प्राप्त होती है। पक्षी बडे चतुर होते है। अडो को कब फोड़ना चाहिये, इस विषय मे उनका ज्ञान देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। पक्षी जगल और घर का शृगार है। पशुओ की तरह वे भी कई प्रकार से मनुष्यो के सहायक होते है।

ऋषियो ने बताया है कि जो पक्षियो को प्रेम से नहीं पालते और उनकी रक्षा नहीं करते वे इस पृथ्वी पर रहने योग्य नहीं हैं।

इसके बाद हस, चक्रवाक, सारस, गरुड, कौआ, बगुला, तोता, मोर, कबूतर वगैरह के कई प्रकार के भेदो का सुन्दर और रोचक वर्णन किया गया है।

इस ग्रन्थ मे कुल मिलाकर करीब २२५ पशु-पक्षियो का वर्णन है।

तुरंगप्रबन्ध :

मत्री दुर्लभराज ने 'तुरगप्रबन्ध' नामक कृति की रचना की है किन्तु यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसमे अश्वो के गुणों का वर्णन होगा। रचना-समय वि० स० १२१५ के लगभग है।

हस्तिपरीक्षा :

जैन गृहस्थ विद्वान् दुर्लभराज (वि० स० १२१५ के आसपास) ने हस्तिपरीक्षा अपरनाम गजप्रबन्ध या गजपरीक्षा नामक ग्रन्थ की रचना १५०० श्लोक-प्रमाण की है। जैन ग्रन्थावली, पृ० ३६१ मे इसका उल्लेख है।

१. सिंह की गरदन के बाल खूब घने होते है, रग सुनहरी किन्तु पिछली ओर कुछ श्वेत होता है। वह शर की तरह खूब तेजी से दौड़ता है।

२. मृगेन्द्र की गति मद और गभीर होती है, उसकी आँखें सुनहरी और मूछें खूब बड़ी होती हैं, उसके शरीर पर भाँति भाँति के कई चकत्ते होते हैं।

३. पचास्य उछल-उछल कर चलता है, उसकी जीभ मुँह से बाहर लटकती ही रहती है, उसे नींद खूब आती है, जब कभी देखिए वह निद्रा म ही दिखाई देता है।

४. हर्यक्ष को हर समय पसीना ही छूटता रहता है।

५ केसरी का रग लाल होता है जिसमे धारियाँ पड़ी हुई दीख पड़ती है।

६. हरि का शरीर बहुत छोटा होता है।

अत मे ग्रन्थकार ने बताया है कि पशुओ का पालन करने से और उनकी रक्षा करने से बड़ा पुण्य होता है। वे मनुष्य की सदा सहायता करते रहते है। गाय की रक्षा करने से पुण्य प्राप्त होता है।

पुस्तक के दूसरे भाग मे पक्षियो का वर्णन है। प्रारभ में ही बताया गया है कि प्राणी को अपने कर्मानुसार ही अडज योनि प्राप्त होती है। पक्षी बडे चतुर होते है। अडो को कब फोड़ना चाहिये, इस विषय मे उनका ज्ञान देखकर बड़ा आश्चर्य होता है। पक्षी जगल और घर का शृगार है। पशुओ की तरह वे भी कई प्रकार से मनुष्यो के सहायक होते है।

ऋषियो ने बताया है कि जो पक्षियो को प्रेम से नहीं पालते और उनकी रक्षा नहीं करते वे इस पृथ्वी पर रहने योग्य नहीं है।

इसके बाद हस, चक्रवाक, सारग, गरुड, कौआ, बगुला, तोता, मोर, कबूतर वगैरह के कई प्रकार के भेदो का सुन्दर और रोचक वर्णन किया गया है।

इस ग्रन्थ मे कुल मिलाकर करीब २२५ पशु-पक्षियो का वर्णन है।

तुरंगप्रबन्ध :

मत्री दुर्लभराज ने 'तुरगप्रबन्ध' नामक कृति की रचना की है किन्तु यह ग्रन्थ अभी तक प्राप्त नहीं हुआ है। इसमे अश्वो के गुणों का वर्णन होगा। रचना-समय वि० स० १२१५ के लगभग है।

हस्तिपरीक्षा :

जैन गृहस्थ विद्वान् दुर्लभराज (वि० स० १२१५ के आसपास) ने हस्तिपरीक्षा अपरनाम गजप्रबन्ध या गजपरीक्षा नामक ग्रन्थ की रचना १५०० श्लोक-प्रमाण की है। जैन ग्रन्थावली, पृ० ३६१ में इसका उल्लेख है।

अनुक्रमणिका

छ

सहायक ग्रंथों की सूची

अनेकांत (मासिक)—स० जुगलकिशोर मुख्तार—वीरसेवा-मन्दिर, दरियागज, दिल्ली.

आगमोनुं दिग्दर्शन—हीरालाल र० कापड़िया—विनयचद्र गुलाबचद शाह, भावनगर, सन् १९४८.

आवश्यकनिर्युक्ति—आगमोदय समिति, बम्बई, सन् १९२८.

आवश्यकवृत्ति—हरिभद्रसूरि—आगमोदय समिति, मेहसाना, सन् १९१६.

कथासरित्सागर—सोमदेव—स० दुर्गाप्रसाद—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९३०.

काव्यमीमांसा—राजशेखर—स० सी० डी० दलाल तथा आर० अनन्तकृष्ण शास्त्री—गायकवाड़ ओरियंटल सिरीज, बड़ौदा, सन् १९१६.

गुर्वावली—मुनिसुन्दरसूरि—यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, सन् १९०५.

ग्रन्थभंडार-सूची—छाणी (हस्तलिखित).

जयदामन्—वेलणकर—हरितोषमाला ग्रन्थावली, बम्बई, सन् १९४९.

जिनरत्नकोश—हरि दामोदर वेलणकर—भाडारकर प्राच्यविद्या सशोधन मन्दिर, पूना, सन् १९४४.

जैन गूर्जर कविओ—मोहनलाल द० देसाई—जैन श्वेताम्बर कान्फरेन्स, बम्बई, सन् १९२६

जैन ग्रन्थावली—जैन श्वेतांबर कान्फरेन्स, बम्बई, वि० सं० १९६५.

जैन संस्कृत साहित्यनो इतिहास—हीरालाल र० कापड़िया—मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, बड़ौदा, सन् १९५६.

जैन सत्यप्रकाश (मासिक)—प्रका० चीमनलाल गो० शाह—अहमदाबाद

जैन साहित्य और इतिहास—नाथूराम प्रेमी–हिन्दी ग्रन्थरत्न कार्यालय, बम्बई, सन् १९४२.

जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास—मोहनलाल दलीचद देसाई–जैन श्वेताम्बर कान्फरेन्स, बम्बई, सन् १९३३.

जैन साहित्य संशोधक (त्रैमासिक)—जिनविजयजी–भारत जैन विद्यालय, पूना, सन् १९२४.

जैन सिद्धांत भास्कर (षाण्मासिक)—जैन सिद्धात भवन, आरा.

जैसलमेर-जैन-भांडागारीयग्रन्थानां सूचीपत्रम्—स० सी० डी० दलाल तथा प० लालचन्द्र भ० गांधी–गायकवाड़ ओरियटल सिरीज, बड़ौदा, सन् १९२३

जैसलमेर-ज्ञानभंडार-सूची—मुनि पुण्यविजयजी (अप्रकाशित).

डेला-ग्रन्थभंडार-सूची—हस्तलिखित.

निबन्धनिचय—कल्याणविजयजी–कल्याणविजय शास्त्रसग्रह समिति, जालोर, सन् १९६५.

पत्तनस्थ प्राच्य जैन भाण्डागारीय ग्रन्थसूची—सी० डी० दलाल तथा ला० भ० गाधी–गायकवाड़ ओरियटल सिरीज, बड़ौदा, सन् १९३७.

पाइयभाषाओ अने साहित्य—हीरालाल र० कापडिया–सूरत.

पुरातत्त्व (त्रैमासिक)—गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद.

प्रबन्धचिन्तामणि—मेरुतुङ्गसूरि–सिंघी जैन ग्रथमाला, कलकत्ता, सन् १९३३.

प्रबन्धपारिजात—कल्याणविजयजी–कल्याणविजय शास्त्र सग्रह समिति, जालोर, सन् १९६६.

प्रभावकचरित—प्रभाचन्द्रसूरि–सिंघी जैन ग्रथमाला, अहमदाबाद, सन् १९४०.

प्रमालक्ष्म—जिनेश्वरसूरि—तत्त्वविवेचक सभा, अहमदाबाद.

प्रमेयकमलमार्तण्ड—प्रभाचन्द्रसूरि–स० महेन्द्रकुमार शास्त्री—निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९४१.

प्रशस्तिसंग्रह—भुजबली शास्त्री–जैन सिद्धान्त भवन, आरा, सन् १९४२.

प्राकृत साहित्य का इतिहास—जगदीशचन्द्र जैन–चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, सन् १९६१.

प्राचीन जैन लेखसंग्रह—जिनविजयजी–आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर, सन् १९२१.

भारतीय ज्योतिष्—नेमिचन्द्र शास्त्री–भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् १९५२.

भारतीय विद्या (त्रैमासिक)—भारतीय विद्याभवन, बम्बई.

भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान—हीरालाल जैन–मध्यप्रदेश शासन साहित्य-परिषद्, भोपाल, सन् १९६२.

राजस्थान के जैन शास्त्रभंडारों की ग्रन्थसूची—कस्तूरचन्द कासलीवाल–दि० जै० अतिशय क्षेत्र, जयपुर, सन् १९५४.

लावडीस्थ हस्तलिखित जैन ज्ञानभंडार-सूचीपत्र—मुनि चतुरविजयजी–आगमोदय समिति, बम्बई, सन् १९२८.

शब्दानुशासन—मलयगिरि–स० बेचरदास दोशी–ला० द० भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद, सन् १९६७.

संस्कृत व्याकरणशास्त्र का इतिहास—युधिष्ठिर मीमांसक–वैदिक साधनाश्रम, देहरादून, वि० स० २००७

सरस्वतीकंठाभरण—भोजदेव–स० केदारनाथ शर्मा तथा वा० ल० पणशीकर–निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, सन् १९६४.

Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute—Poona, 1931-32

Bhandarkar Mss. Reports—Poona, 1879-80 to 1887-91.

Bhandarkar Oriental Research Institute Catalogues—Poona.

Catalogue of Manuscripts in Punjab Jain Bhandars—Lahore.

Catalogue of Sanskrit and Prakrit Manuscripts—L. D. Bharatiya Sanskriti Vidyamandir, Ahmedabad.

Epigraphia Indica—Delhi.

History of Classical Literature—Krishnamachary—Madras.

Indian Historical Quarterly—Calcutta.

Peterson Reports—Royal Asiatic Society, 1882 to 1898, Bombay.

Systems of Sanskrit Grammar—S. K. Belvalkar—Poona, 1915.

कातन्त्रव्याकरण :

'कातन्त्रव्याकरण' की भी एक परम्परा है। इसकी रचना में अनेक विशेषताएँ हैं और परिभाषाएँ भी पाणिनि से बहुत कुछ स्वतंत्र हैं। यह 'कातन्त्र व्याकरण' पूर्वार्ध और उत्तरार्ध इस प्रकार दो भागों मे रचा गया है। तद्धित तक का भाग पूर्वार्ध और कृदन्त प्रकरणरूप भाग उत्तरार्ध है। पूर्वभाग के कर्ता सर्ववर्मन्-थे ऐसा विद्वानो का मन्तव्य है, वस्तुतः सर्ववर्मन् उसकी बृहद्वृत्ति के कर्ता थे। अनुश्रुतियो के अनुसार तो 'कातंत्र' की रचना महाराजा सातवाहन के समय में हुई थी।[1] परतु यह व्याकरण उससे भी प्राचीन है ऐसा युधिष्ठिर मीमासक का मतव्य है।[2] 'कातन्त्र-वृत्ति' के कर्ता दुर्गसिंह के कथनानुसार कृदन्त भाग के कर्ता कात्यायन थे।

सोमदेव के 'कथासरित्सागर' के अनुसार सर्ववर्मन् अजैन सिद्ध होते हैं परतु भावसेन त्रैविद्य 'रूपमाला' मे इनको जैन बताते है। इस विषय मे शोध करना आवश्यक है।

इस व्याकरण मे ८८५ सूत्र हैं, कृदन्त के सूत्रो के साथ कुल १४०० सूत्र हैं। ग्रन्थ का प्रयोजन बताते हुए इस प्रकार कहा गया है :

'छान्दसः स्वल्पमतयः शब्दान्तररताश्च ये।
ईश्वरा व्याधिनिरतास्तथाऽऽलस्ययुताश्च ये॥
वणिक्-सस्यादिसंसक्ता लोकयात्रादिषु स्थिताः।
तेषां क्षिप्रप्रबोधार्थं................ ..॥

यह प्रतिज्ञा यथार्थ मालूम होती है। इतना छोटा, सरल और जल्दी से कठस्थ हो सके ऐसा व्याकरण लोकप्रिय बने इसमें आश्चर्य नहीं है। बौद्ध साधुओं ने इसका खूब उपयोग किया, इससे इसका प्रचार भारत के बाहर भी हुआ। 'कातंत्र' का धातुपाठ तिब्बती भाषा में आज भी सुलभ है।

आजकल इसका पठन-पाठन बंगाल तक ही सीमित है। इसका अपर नाम 'कलाप' और 'कौमार' भी है। 'अग्निपुराण' और 'गरुडपुराण' मे इसे कुमार—

१ Katantra must have been written during the close of the Andhras in 3rd century A. D.—Mythic Journal, Jan. 1928.

२. 'कल्याण' हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० ६५९.

स्कन्द-प्रोक्त कहा है। इसकी सबसे प्राचीन टीका दुर्गसिंह की मिलती है। 'काशिका' वृत्ति से यह प्राचीन है, चूँकि काशिका में 'दुर्गवृत्ति' का खंडन किया है। इस व्याकरण पर अनेक वैयाकरणो ने टीकाएँ लिखी हैं। जैनाचार्यों ने भी बहुत-सी वृत्तियों का निर्माण किया है।

दुर्गपदप्रबोध-टीका :

'कातन्त्रव्याकरण' पर आचार्य जिनप्रबोधसूरि ने वि० सं० १३२८ में 'दुर्गपद-प्रबोध' नामक टीकाग्रंथ की रचना की है। जैसलमेर और पाटन के भंडार में इस ग्रन्थ की प्रतियाँ हैं।

'खरतरगच्छपट्टावली' से ज्ञात होता है कि इस ग्रंथ के कर्ता का जन्म वि० सं० १२८५, दीक्षा सं० १२९६, सूरिपद सं० १३३१ (३३), स्वर्गगमन सं० १३४१ में हुआ था। वे आचार्य जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे।

दीक्षा के समय उनका नाम प्रबोधमूर्ति रखा गया था, इसलिये ग्रन्थ के रचना-समय का प्रबोधमूर्ति नाम उल्लिखित है परंतु आचार्य होने के बाद जिन-प्रबोधसूरि नाम रखा गया था। पाटन की प्रति के अन्त में इसका स्पष्टीकरण किया गया है।[1] वि० सं० १३३३ के गिरनार के शिलालेख में जिनप्रबोधसूरि नाम है। वि० सं० १३३४ में विवेकसमुद्रगणि-रचित 'पुण्यसारकथा' का आचार्य जिन-प्रबोधसूरि ने संशोधन किया था। वि० सं० १३५१ में प्रह्लादनपुर में प्रतिष्ठित की हुई इस आचार्य की प्रतिमा स्तंभतीर्थ में है।

दौर्गसिंही-वृत्ति :

'कातन्त्र-व्याकरण' पर रची गई दुर्गसिंह की वृत्ति पर आचार्य प्रद्युम्नसूरि ने ३००० श्लोक-प्रमाण 'दौर्गसिंही-वृत्ति' की रचना वि० सं० १३६९ में की है। इसकी प्रति बीकानेर के भंडार में है।

कातन्त्रोत्तरव्याकरण :

कातन्त्र-व्याकरण की महत्ता बढ़ाने के लिये विजयानन्द नामक विद्वान् ने 'कातन्त्रोत्तरव्याकरण' की रचना की है, जिसका दूसरा नाम है विद्यानन्द।[2] इसकी रचना वि० सं० १२०८ से पूर्व हुई है।

---

१. सामान्यावस्थायां प्रबोधमूर्तिगणिनामधेयैः श्रीजिनेश्वरसूरिपट्टालङ्कारैः श्री-जिनप्रबोधसूरिभिर्विरचितो दुर्गपदप्रबोधः संपूर्णः।

२. देखिए—संस्कृत व्याकरण-साहित्य का इतिहास, भा० १, पृ० ४०६.

'जिनरत्नकोश' (पृ० ८४) मे कातन्त्रोत्तर के सिद्धानन्द, विजयानन्द और विद्यानन्द—ये तीन नाम दिये गये है। इसके कर्ता विजयानन्द अपर नाम विद्यानन्दसूरि का उल्लेख है। यह व्याकरण समास-प्रकरण तक ही मिलता है। पिटर्सन की चौथी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि इस व्याकरण की ताड़पत्रीय प्रतिया जैसलमेर-भंडार मे हैं।

'जैनपुस्तकप्रशस्तिसग्रह' (पृ० १०६) में इस व्याकरण का उल्लेख इस प्रकार है : **इति विजयानन्दविरचिते कातन्त्रोत्तरे विद्यानन्दापरनाम्नि तद्धित-प्रकरणं समाप्तम्, सं० १२०८।**

कातन्त्रविस्तर :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर रचे गये 'कातन्त्रविस्तर' ग्रन्थ के कर्ता वर्धमान हैं। आरा के विद्याभवन में इसकी अपूर्ण हस्तलिखित प्रति है, जो मूड-बिद्री के जैनमठ के ग्रथ-भडार की एकमात्र तालपत्रीय प्रति से नकल की गई है। इसकी रचना वि० स० १४५८ से पूर्व मानी जाती है।

स्व० बाबू पूर्णचन्द्रजी नाहर ने 'जैन सिद्धात-भास्कर' भा० २ मे 'धार्मिक उदारता' शीर्षक अपने लेख मे इन वर्धमान को श्वेताम्बर बताया है। यह किस आधार से लिखा है, इसका निर्देश उन्होने नहीं किया।

गुजरात के राजा कर्णदेव के पुरोहित के एक शिष्य का नाम वर्धमान था, जिन्होने केदार भट्ट के 'वृत्तरत्नाकर' पर टीका ग्रन्थ की रचना की थी। ग्रन्थ की समाप्ति मे इस प्रकार लिखा है : **'इति श्रीमत्कर्णदेवोपाध्यायश्रीवर्धमान-विरचिते कातन्त्रविस्तरे' . . .'।**

चुरु के यति ऋद्धिकरणजी के भडार मे इसकी प्रति है।

बालबोध-व्याकरण :

'जैन ग्रन्थावली' (पृ० २९७) के अनुसार अञ्चलगच्छीय मेरुतुंगसूरि ने कातन्त्र-सूत्रो पर इस 'बालबोधव्याकरण' की रचना वि० स० १४४४ मे ८ अध्यायो मे २७५ श्लोक-प्रमाण की है। इसमे कहा गया है कि वि० १५ वीं शती मे विद्यमान मेरुतुग ने ४८० और ५७९ श्लोक-प्रमाण एक-एक वृत्ति की रचना की है। उनमे प्रथम वृत्ति छः पादात्मक है। उन्होने २११८ श्लोक-प्रमाण 'चतुष्क-टिप्पण' और ७६७ श्लोक-प्रमाण 'कृद्वृत्ति-टिप्पण' की रचना भी की है। तदुपरात १७३४ श्लोक-प्रमाण 'आख्यातवृत्ति-ढुंढिका' और २२९ श्लोक-प्रमाण 'प्राकृत-वृत्ति' की रचना की है। इन सातो ग्रन्थो की हस्तलिखित प्रतिया पाटन के भडार में विद्यमान है।

ातन्त्रदीपक-वृत्ति :

'कातन्त्रव्याकरण' पर मुनीश्वरसूरि के शिष्य हर्षचन्द्र ने 'कातन्त्रदीपक' ाम से वृत्ति की रचना की है। मंगलाचरण जैन है, कर्ता हर्षचन्द्र है या अन्य ोई यह निश्चित रूप से जानने में नहीं आया। इसकी हस्तलिखित प्रति ीकानेर स्टेट लायब्रेरी में है।

ातन्त्रभूषण :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर आचार्य धर्मघोषसूरि ने २४००० श्लोक माण 'कातन्त्रभूषण' नामक व्याकरणग्रन्थ की रचना की है, ऐसा 'बृहट्टिपणिका' उल्लेख है।

ृत्तित्रयनिबंध :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर आचार्य राजशेखरसूरि ने 'वृत्तित्रयनिबंध' ामक ग्रन्थ की रचना की है, ऐसा उल्लेख 'बृहट्टिप्पणिका' में है।

ातन्त्रवृत्ति-पञ्जिका :

'कातन्त्रव्याकरण' की 'कातन्त्रवृत्ति' पर आचार्य जिनेश्वरसूरि के शिष्य ोमकीर्ति ने पञ्जिका की रचना की है। इसकी प्रति जैसलमेर के भंडार में है।

ातन्त्ररूपमाला :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर दिगम्बर भावसेन त्रैविद्य ने 'कातन्त्र-रूपमाला' की रचना की है।[1]

ातन्त्ररूपमाला-लघुवृत्ति :

'कातन्त्रव्याकरण' के आधार पर रची गई 'कातन्त्र-रूपमाला' पर 'लघु-ृत्ति' की रचना किसी दिगंबर मुनि ने की है। इसका उल्लेख 'दिगंबर जैन न्यकर्ता और उनके ग्रन्थ' पृ० ३० में है।

पृथ्वीचंद्रसूरि नामक किसी जैनाचार्य ने भी इस पर टीका का निर्माण िया है। इनके बारे में अधिक ज्ञात नहीं हुआ है।

. कातन्त्रविभ्रम-टीका :

'हेमविभ्रम' में छपी हुई मूल २१ कारिकाओं पर आचार्य जिनप्रभसूरि ने ोगिनीपुर (देहली) में कायस्थ खेतल की विनती से इस टीका की रचना ि० सं० १३५२ में की है।

---

[1] यह ग्रंथ जैन सिद्धांतभवन, आरा से प्रकाशित है।